महावीर ग्रंथ अकादमी–छठा पुष्प

कविवर बुलाखीचन्द बुलाकीदास एवं हेमराज

[१७वीं–१८वीं शताब्दि के छह प्रतिनिधि कवियो—
बुलाखीचन्द बुलाकीदास, पाण्डे हेमराज, हेमराज गोदीका
मुनि हेमराज एव हेमराज के जीवन व्यक्तित्व एव कृतित्व
के साथ उनकी महत्त्वपूर्ण कृतियों के मूल पाठो का सग्रह]

लेखक एवं सम्पादक
डा कस्तूरचन्द कासलीवाल

तिजारा (राजस्थान) मे आयोजित पञ्चकल्याण महोत्सव के अवसर पर दिनाक २२ मार्च, १९८३ को विशाल एव भव्य समारोह मे परमादरणीय महामहिम राष्ट्रपति श्री ज्ञानी जैलसिह जी द्वारा प्रस्तुत पुस्तक का विमोचन किया गया।

श्री महावीर ग्रंथ अकादमी, जयपुर

प्रथम सस्करण मार्च १९८३ मूल्य ४० ००

सम्पादक मण्डल—श्री रावत सारस्वत, जयपुर
डा. हरीन्द्रभूषण जैन, उज्जैन
श्रीमती शशिकला बाकलीवाल, एम. ए. जयपुर

निदेशक मण्डल—

परम सरक्षक— स्वस्ति श्री भट्टारक चारुकीर्त्तिजी महाराज मूडबिद्री

सरक्षक— साहू अशोककुमार जैन, देहली
पूनमचन्द जैन, झरिया (बिहार)
रमेशचन्द जैन (पी एस जैन) देहली
डॉ. वीरेन्द्र हेगडे, धर्मस्थल
निर्मलकुमार सेठी, लखनऊ
महावीरप्रसाद सेठी, सरिया (बिहार)
कमलचन्द कासलीवाल, जयपुर
डा. (श्रीमती) सरयू वी. दोशी, बम्बई
पन्नालाल सेठी, डीमापुर

अध्यक्ष— कन्हैयालाल जैन, मद्रास

कार्याध्यक्ष— रतनलाल गगवाल, कलकत्ता, पूरणचन्द गोदीका, जयपुर

उपाध्यक्ष— गुलाबचन्द गगवाल रेनवाल, अजितप्रसाद जैन ठेकेदार, देहली
कन्हैयालाल सेठी जयपुर, पदमचन्द तोतूका जयपुर
रतनलाल विनायक्या डीमापुर, त्रिलोकचन्द कोठारी कोटा
महावीर प्रसाद नृपत्या जयपुर, चिंतामणी जैन बम्बई
रामचन्द्र रारा गया, लेखचन्द बाकलीवाल जयपुर
रतनलाल बिनायक्या भागलपुर, सम्पतकुमार जैन कटक
पदमकुमार जैन नेपालगंज, ताराचन्द बख्शी जयपुर
डालचन्द जैन सागर, रतनचन्द पंसारी जयपुर

निदेशक एव प्रधान
सम्पादक— डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल, जयपुर

प्रकाशक— **श्री महावीर ग्रंथ अकादमी**
८६७-अमृत कलश, बरकत कालोनी,
किसान मार्ग, टोंक रोड, जयपुर-३०२०१५

प्रतियां : ११०० मूल्य : ४०.००

मुद्रक— **मनोज प्रिन्टर्स**
७९६, गोदीकों का रास्ता,
किशनपोल बाजार, जयपुर-३०२००३

श्री महावीर ग्रंथ अकादमी–प्रगति रिपोर्ट

श्री महावीर ग्रंथ अकादमी की स्थापना समस्त हिन्दी जैन साहित्य को २० भागो मे प्रकाशित करने के उद्देश्य के साथ साथ जैन साहित्य का प्रकाशन, नव साहित्य निर्माण एव जैन साहित्य, कला, इतिहास, पुरातत्व जैसे विषयों पर शोध करने वाले विद्यार्थियो को दिशा निर्देशन के उद्देश्य को लेकर की गई थी। इन उद्देश्यो मे अकादमी निरन्तर आगे बढ रही है। हिन्दी जैन कवियो पर प्रकाशित होने वाले भागो मे छट्ठा पुष्प पाठको एव माननीय सदस्यो के सामने प्रस्तुत किया जा रहा है। अब तक प्रस्तुत भाग सहित निम्न भाग प्रकाशित किये जा चुके हैं।

१. महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एव भट्टारक त्रिभुवनकीर्त्ति
२. कविवर बूचराज एव उनके समकालीन कवि
३ महाकवि ब्रह्म जिनदास – व्यक्तित्व एव कृतित्व
४ भट्टारक रत्नकीर्ति एवं कुमुदचन्द्र
५ आचार्य सोमकीर्ति एव ब्रह्म यशोधर
६. कविवर बुलाखीचन्द, बुलाकीदास एवं हेमराज

अकादमी के सप्तम पुष्प की सामग्री भी सकलित की जा रही है तथा उसे अक्टूबर तक अथवा वर्ष समाप्ति के पूर्व ही प्रकाशित कर दिया जायेगा।

जैन कवियो के द्वारा विशाल हिन्दी साहित्य की संरचना की गयी थी। इसलिये उनकी सम्पूर्ण कृतियो को २० भागों मे प्रकाशित करना तो संभव नहीं हो सकेगा क्योंकि ब्रह्म जिनदास एव पाण्डे हेमराज जैसे बीसो कवि हैं जिनकी कृतियो के मूल पाठ प्रकाशित करने के लिए एक नही अनेक भाग चाहिये। फिर भी यह प्रसन्नता का विषय है कि अकादमी की ओर से अब तक बूचराज, छीहल, ठक्कुरसी, गारवदास, सोमकीर्ति, ब्रह्म यशोधर सांगु, गुणकीर्ति, यशःकीर्ति जैसे कुछ कवियों की तो सम्पूर्ण रचनायें प्रकाशित की जा चुकी है तथा शेष कवियो ब्रह्म रायमल्ल

त्रिभुवनकीर्ति, ब्र. जिनदास, बुलाखीचन्द्र, बुलाकीदास एवं हेमराज की रचनाओं के प्रमुख पाठो को प्रकाशित किया गया है। जिससे विद्वान गण उनकी काव्यगत महानता की जानकारी प्राप्त कर सकें और चाहे तो उनकी रचनाओ का भी अध्ययन कर सकें।

अकादमी द्वारा २० भाग प्रकाशित होने के पश्चात् हिन्दी जगत् में है जैन कवियो के प्रति जो उपेक्षा एव हीन भावना व्याप्त हैं वे पूर्ण रूप से दूर होगी और उन्हे साहित्यिक जगत् मे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होगा और उनका साहित्य साधारण पाठको को स्वाध्याय के लिये उपलब्ध हो सकेगा ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है।

सहयोग

अकादमी को समाज का जितना सहयोग अपेक्षित है यद्यपि उतना सहयोग अभी तक नही मिल सका है फिर भी योजना के क्रियान्वय के लिये विशेष कठिनाई नही हो रही है लेकिन हमे भविष्य मे और भी अधिक सहयोग प्राप्त होगा। जिससे प्रकाशन कार्य मे और भी अधिक तेजी लायी जासके। मैं उन सभी महानुभावो का जिनका हमे परम सरक्षक, सरक्षक, अध्यक्ष, कार्याध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सम्माननीय सदस्य एव विशिष्ट सदस्य के रूप मे सहयोग मिला है हम उनके पूर्ण आभारी हैं। अकादमी के परम सरक्षक स्वास्ति श्री पडिताचार्य भट्टारक चारुकीर्ति जी महाराज मूडबिद्री स्वय विद्वान है, हजारो ताडपत्रीय ग्रथो के व्यवस्थापक है। साहित्य प्रकाशन की महत्ता से वे स्वय परिचित हैं। हम उनके सहयोग के लिये आभारी है।

नये सदस्यों का स्वागत

पञ्चम भाग के पश्चात् डा (श्रीमती) सरयू दोशी बम्बई एव श्रीमान् पन्नालाल जी सेठी डीमापुरने अकादमी का सरक्षक बनना स्वीकार किया है। डा श्रीमती दोशी जैन चित्र कला की ख्याति प्राप्त विदुषी है। मार्ग जैसी कला प्रधान पत्रिका की सम्पादिका है। सारे देश के जैन भण्डारो मे उपलब्ध चित्रित पांडुलिपियो का गहरा अध्ययन किया है। Homage to Shravan belgola जैसी पुस्तक की लेखिका है। इसी तरह माननीय श्री पन्नालाल जो सेठी डीमापुर समाज के सम्माननीय सदस्य है। उदार हृदय एव सेवा भावी सज्जन हैं। साधु भक्ति मे जीवन समर्पित किये हुए है तथा प्रतिवर्ष हजारो साधर्मी बन्धुओ को जिमा कर आनन्द का अनुभव करते है। हम दोनो ही महानुभावो का हार्दिक स्वागत करते हैं।

इसी तरह निदेशक मडल मे श्रीमान् माननीय डालचन्द जो सा सागर एव श्रीमान् रतन चन्द जी सा पसारी जयपुर ने उपाध्यक्ष के रूप मे अकादमी को

सहयोग प्रदान किया है । हम दोनों ही महानुभावो का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं । श्री डालचन्द जी सा. सागर से सारा जैन समाज परिचित है । अ. भा दि जैन परिषद के वे अध्यक्ष हैं । आपकी लोकप्रियता एवं सेवाभावी जीवन सारे मध्यप्रदेश मे प्रसिद्ध है , इसी तरह श्री पसारी सा रत्नो के व्यवसायी हैं तथा जयपुर जैन समाज अत्यधिक सम्माननीय सज्जन हैं ।

अकादमी के सम्माननीय सदस्यो मे जयपुर के डा. राजमलजी सा. कासलीवाल देहली के श्री नरेशकुमार जी मादीपुरिया, मेरठ के श्री शिखरचन्द जी जैन, सागर के श्री खेमचन्द जी मोतीलाल जी, एव डीमापुर के श्री किशनचन्द जी सेठी एव कटक के श्री निहालचन्द शान्ती कुमार का भी हम हार्दिक स्वागत करते हैं । सभी महानुभाव समाज के प्रतिष्ठित एव सेवाभावी व्यक्ति है । डा. राजमलजी तो नेताजी सुभाष चन्द्र बोस के विश्वस्त साथी रह चुके हैं ।

सस्थाओं द्वारा सहयोग

दिसम्बर ८२ मे श्री दि जैन सिद्ध सेक आहार जी मे अ. भा दि जैन विद्वत परिषद के नैमित्तिक अधिवेशन मे अकादमी की साहित्य प्रकाशन योजना की प्रशसा करते हुए सम ज से अकादमी का सदस्य बनने एव उसे पूर्ण आर्थिक सहयोग देने के लिए जा प्रस्ताव पारित किया गया उसके लिए हम विद्वत् परिषद् के पूर्ण आभारी हैं । इसी तरह आहारजी मे ही अ भा. दि जैन महासभा के अध्यक्ष आदरणीय श्री निर्मल कुमार जी सा सेठी ने अपने अध्यक्षीय भाषण मे अकादमी के कार्यों की जिस रूप म प्रश ा की तथा उसे सहयोग देने का आश्वासन दिया उसके लिए हम उनक भी पूर्ण आभारी है । माननीय सेठी सा ता अकादमी के पहिले ही सम्माननीय सरक्षक है ।

विद्वानो का सहयोग

अकादमी को हिन्दी साहित्य के मनीषियो का बराबर सहयोग मिलता रहता है । अब तक डा सत्येन्द्र जी जयपुर, डा हीरालाल माहेश्वरी जयपुर, डा. नरेन्द्र भानावत जयपुर, डा नेमीचन्द्र जैन इन्दौर एव डा महेन्द्र कुमार प्रचडिया अलीगढ ने सपादकीय लिखकर एव प अनूपचन्द्रजी न्यायतीर्थ, प मिलापचन्द जी शास्त्री, श्रीमती डा कोकिला सेठी, श्रीमती सुशीला बाकलीवाल, डा भागचन्द भागेन्दु जैसे विद्वानो का सम्पादन मे हमे सहयोग मिलता रहा है । प्रस्तुत भाग के सपादक हैं सर्व श्री रावत सारस्वत जयपुर, डा हरीन्द्र भूषण उज्जैन एव श्रीमती शशिकला जयपुर । माननीय श्री रावत सारस्वत राजस्थानी भाषा के प्रमुख विद्वान है तथा

'राजस्थानी भाषा प्रचार सभा' के निदेशक हैं। आपने प्रस्तुत भाग पर जो महत्वपूर्ण सपादकीय लिखा है वह आपकी गहन विद्वता का परिचायक है। डा. हरीन्द्र भूषण जी जैन साहित्य के शीर्षस्थ विद्वान् है तथा कितने ही पुस्तको के लेखक हैं। विक्रम विश्वविद्यालय मे सस्कृत विभाग के रीडर पद से अभी अभी रिटायर हुए हैं। अकादमी लिये के आप विशेष प्रेरणा स्रोत हैं। श्रीमती शशिकला बाकलीवाल जयपुर उदीयमान विदुषी है। हम तीनो के प्रति अत्यधिक आभारी है।

विशेष आभार

वैसे तो हम पूरे समाज के आभारी हैं जिसके मगल अशीर्वाद से अकादमी अपनी साहित्यिक योजना में सतत आगे बढ रही है। विशेषत. पूज्य क्षुल्लकरत्न श्री सिद्ध सागर जी महाराज लाडनू वाले, प. अनूपचन्दजी न्यायतीर्थ जयपुर, ब्र. श्री कपिल कोटडिया हिम्मतनगर, के भी आभारी है जिनका अकादमी को पूर्ण अशीर्वाद एव सहयोग मिलता रहता है।

८६७ अमृत कलश
बरकत कालोनी, किसान मार्ग
टोक फाटक, जयपुर-३०२०१५

डा. कस्तूर चन्द कासलीवाल
निदेशक एव प्रधान सपादक

संरक्षक के दो शब्द

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी के षष्टम पुष्प 'कविवर बुलाखीचन्द बुलाकीदास एवं हेमराज' को पाठकों को हाथों में देते हुये मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है। सम्पूर्ण हिन्दी जैन साहित्य को २० भागों में प्रकाशित करने के उद्देश्य से संस्थापित यह अकादमी निरन्तर अपने उद्देश्य में आगे बढ़ रही है। प्रस्तुत भाग में १७-१८ वीं शताब्दि के तीन प्रमुख कवि बुलाखीचन्द, बुलाकीदास एवं हेमराज के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है। तीनों ही कवि आगरा के थे तथा अपने समय के समर्थ कवि थे। महाकवि बनारसीदास ने आगरा में जो साहित्यिक चेतना जागृत की थी उसीके फलस्वरूप आगरा में एक के पीछे दूसरे कवि होते गये और देश एवं समाज को नयी-नयी एवं मौलिक कृतियां भेंट करते रहे। इस भाग के प्रकाशन के साथ ही डा० कासलीवालजी ऐसे २६ जैन प्रमुख हिन्दी कवियों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डाल चुके हैं, जिनकी सभी कृतियां हिन्दी साहित्य की बेजोड़ निधियां हैं। इन कवियों में ब्रह्म रायमल्ल, बूचराज, छीहल, गारवदास, ठक्कुरसी, ब्रह्म जिनदास, भ० रत्नकीर्ति, कुमुदचन्द्र, आचार्य सोमकीर्ति, सागु, ब्रह्मयशोधर, बुलाखीचन्द, बुलाकीदास, हेमराज पांडे एवं हेमराज गोदीका के नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। इन सभी कवियों ने हिन्दी साहित्य को अपनी कृतियों से गौरवान्वित किया है।

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि प्रस्तुत भाग में कविरत्न बुलाखीचन्द ऐसे कवि है जिनका परिचय साहित्यिक जगत को प्रथम बार प्राप्त हो रहा है। डा० कासलीवालजी की साहित्यिक खोज एवं शोध सचमुच प्रशंसनीय है, जो अकादमी के प्रत्येक पुष्प में किसी न किसी अचर्चित एवं अज्ञात कवि को साहित्यिक जगत के समक्ष प्रस्तुत करते रहते हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि डा. साहब की लेखनी से अब तक उपेक्षित सैंकड़ों हिन्दी जैन कवि एवं मनीषी तथा उनका विशाल साहित्य प्रकाश में आ सकेगा।

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी की स्थापना एवं उसका संचालन डा० कासली-वाल की साहित्यिक निष्ठा का सुफल है। दो वर्ष पूर्व जब मुझे मेरे घनिष्ठ मित्र

एव सामाजिक कार्यों मे सहयोगी तथा प्रसिद्ध सगीतज्ञ श्री ताराचन्दजी प्रेमी ने अकादमी के सम्बन्ध मे चर्चा की तथा उसका संरक्षक सदस्य बनने के लिए कहा, तो मैंने तत्काल अपनी स्वीकृति दे दी। मैं इसके लिए श्री प्रेमी जी का आभारी हू। ऐसी साहित्यिक सस्था को सहयोग देने मे मुझे ही नही, सभी साहित्यिक प्रेमियो को प्रसन्नता होगी।

अकादमी को निरन्तर लोकप्रियता प्राप्त हो रही है, जिसकी मुझे अतीव प्रसन्नता है। इसके पचम भाग का विमोचन बम्बई महानगरी मे परम पूज्य आचार्यश्री विमलसागरजी महाराज की पुण्य जन्म जयन्ती महोत्सव के अवसर उन्हीं के सानिध्य में मूडबिद्री के भट्टारक स्वरित श्री चारूकीर्तिजी महाराज ने किया था। भट्टारकजी महाराज अकादमी के परम सरक्षक भी हैं। इस अवसर पर स्वयं आचार्यश्री जी ने डा० कासलीवाल जी को साहित्यिक क्षेत्र मे सतत् आगे बढते रहने का शुभाशीर्वाद दिया था। पचम भाग के प्रकाशन के पश्चात् डा० (श्रीमती) सरयू दोशी बम्बई एव श्री पन्नालाल सेठी डीमापुर ने अकादमी का सरक्षक सदस्य बनने की महती कृपा की है। इसके लिए हम उनके आभारी है। डा० (श्रीमती दोशी जैन चित्रकला की शीर्षस्थ विदुषी है, तथा अपना समस्त जीवन जैन कला के महत्व को प्रस्तुत करने मे समर्पित कर रखा है। उनका Homage to shrawan belgola अपने ढग की अनूठी कृति है। इसी तरह माननीय श्री पन्नालाल जी सेठी एक प्रमुख व्यवसायी है तथा अपनी उदारता, दानशीलता एव साधु भक्ति के लिए सर्वत्र प्रसिद्ध है। हम दोनो का हार्दिक स्वागत करते है। उक्त दोनो के अतिरिक्त सागर के प्रसिद्ध उद्योगपति एव लोकप्रिय समाज सेवी श्री डालचन्द जी जैन, जो वर्तमान मे अखिल भारतीय दि० जैन परिषद के अध्यक्ष है, अकादमी को उपाध्यक्ष के रूप मे सहयोग देकर मध्यप्रदेश मे अकादमी के कार्य क्षेत्र मे वृद्धि की है। इसी तरह जयपुर मे रत्नो के व्यवसायी श्री रतनचन्दजी पसारी ने भी उपाध्यक्ष सदस्य बनने की स्वीकृति प्रदान की है। श्री पसारी जी जयपुर जैन समाज के लोकप्रिय समाज सेवी है तथा नगर की कितनी ही सस्थाओ को अपना सहयोग प्रदान करते रहते हैं। हम दोनो महानुभावो का उनके सहयोग के लिये हार्दिक स्वागत करते हैं।

मुझे यह भी लिखते हुये प्रसन्नता है कि अकादमी को साहित्यिक संस्था के रूप मे सर्वथा मान्यता मिल रही है। अभी गत वर्ष दिसम्बर ८२ मे श्री आहारजी सिद्ध क्षेत्र पर आयोजित अ० भा० दि० जैन विद्वत् परिषद ने एक प्रस्ताव द्वारा श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी के कार्यों की भूरि २ प्रशसा की है तथा समाज से अकादमी के लिए पूर्ण सहयोग देने की अपील की है। ऐसे उपयोगी प्रस्ताव पारित करने के लिए हम विद्वत परिषद के अध्यक्ष एव मत्री दोनो के पूर्ण आभारी हैं।

अन्त मे मैं समाज के सभी महानुभावो से प्रार्थना करता हू कि वे अकादमी के अधिक से अधिक सख्या मे सदस्य बनकर जैन साहित्य के प्रकाशन मे अपना पूर्ण योगदान देने का कष्ट करें।

रमेशचन्द जैन

७-ए, राजपुर रोड
देहली-५४

सम्पादकीय

भारतीय भाषाओ और उनके साहित्य मे एतद्देशीय जैन वाङ्मय का बड़ा प्रशसनीय सहयोग रहा है। राजस्थानी और हिन्दी के विगत प्रायः एक हजार वर्षों के इतिहास मे इस सहयोग के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए जा चुके हैं। इससे पूर्व की भी, सस्कृत, अर्द्धमागधी, प्राकृत अपभ्रश आदि तद्दकालीन भाषाओ मे रचित, बहुसख्यक जैन रचनाओ के विवरण प्रकाशित हुए हैं। जैन धर्माचार्यों ने अपने उपदेशो को जनसाधारण के लिए बोधगम्य बनाने के उद्देश्य से लोकभाषा को माध्यम बनाया। यद्यपि वे पाण्डित्य पूर्ण विशिष्ट रचनायें मान्य साहित्यिक भाषाओ मे करते रहे, पर लोककल्याण की भावना से प्रेरित उनका विपुल साहित्य देशभाषाओ मे ही रचा गया। यह अतिरिक्त हर्ष का विषय है कि जैन समाज ने अपने धर्माचार्यों की इस धरोहर को यत्नपूर्वक सुरक्षित रखा है, जिसके फलस्वरूप सैकडो वर्ष बीत जाने पर भी वे कृतिया अनुसंधित्सुओ को प्राप्य हो सकी है। श्रद्धालु जैन समाज के श्रावको ने आचार्यों की इस थाती से लाभान्वित होकर स्वय भी उनके अनुकरण पर बहुसख्यक रचनायें की हैं। ऐसी अनेक रचनाओ ने जैन वाङ्मय मे अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। दिगम्बर सम्प्रदाय के अनुयायियो मे इस प्रवृत्ति का विशेष बाहुल्य रहा है। ब्रजभाषा, बुन्देली और पश्चिमी हिन्दी से सटे राजस्थान के पूर्वी और पूर्वी दक्षिणी अचलो मे ऐसी रचनायें अधिक रची गई।

इस धर्म प्रधान साहित्यिक जागरण को उस अखण्ड ज्ञान चेतना से अङ्गीभूत रूप मे ही देखा जा सकता है जो शताब्दियो से उत्तरप्रदेश, राजस्थान, पजाब और मध्यप्रदेश के विशाल भू भागो को जैन सस्कृति की देन के रूप मे आलोकित करती रही है। प्रस्तुत शोधग्रथ मे जैन समाज के ऐसे ही तीन सुकवियो की रचनायें सकलित की गई हैं।

इस सकलन की विशिष्टता न केवल इन रचनाओ का अज्ञात होना है अपितु इनकी भाषागत एव साहित्यिक वैशिष्ट्य की पाडित्यपूर्ण विशद विवेचना

भी है जो जैन वाङ्मय के लब्धप्रतिष्ठ अधिकारी विद्वान डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल द्वारा की गई है। डा. कासलीवाल को ऐसे बीसों कवियों को प्रकाश में लाते हुए, इसी प्रकार के कई विद्वतापूर्ण संकलन संपादित करने का श्रेय है। ये सभी ग्रंथ विद्वत्समाज में चर्चित और समादृत हुए हैं। श्री महावीर ग्रंथ अकादमी के छठे 'पुष्प' के रूप मे प्रकाशित इस संकलन की शृङ्खला को आगे बढ़ाने मे सतत प्रयत्नशील, डा कासलीवाल की यह नि स्वार्थ सेवा सभी साहित्य प्रेमियो के द्वारा अभिनंदनीय और अनुकरणीय है।

विषयवस्तु की दृष्टि से जैन रचनाओ को समग्र भाषा-साहित्य से पृथक् करके देखने की जो प्रवृत्ति कही-कही दिखाई देती है, उसे भाषा और साहित्य का सामान्य हित चाहने वाले लोग संकुचित और एकागी ही कहेगे। भाषा के ऐतिहासिक विकास क्रम का अध्ययन करने वाले विद्वानो ने इन रचनाओ की उपादेयता को स्वीकार किया है। जिस काल विशेष की अन्यान्य अजैन रचनाये दुष्प्राप्य हैं सके लिए तो ये ही रचनायेंहमारा एक मात्र आधार बनी हुई है। इन्हीं रचनाओं मे प्रसगवश समकालीन इतर साहित्यकारो के प्रकीर्णक छंद भी उद्धृत मिलते हैं जिनसे साहित्य का इतिहास नवीन तथ्यो से समृद्ध बनता है। प्रबन्ध चिन्तामणि, पुरातन प्रबन्ध संग्रह प्रबन्ध कोश, पुरातन पद्य प्रबन्ध आदि ग्रथो मे सकलित उत्तर अपभ्रंश कालीन प्रबधो मे दिए गए ऐसे उदाहरण देशभाषाओ के उद्‌भव को समझने मे बडे सहायक सिद्ध हुए है।

भाषा के सबध मे दूसरी विशेषता जैन कवियो द्वारा प्रयुक्त वह मनोरम शब्दावली है जो लोक मे सतत व्यवहार के कारण बडी आर्द्र, स्निग्ध और सस्कार संपन्न हो गई है। यह शब्दावली, परिनिष्ठित साहित्यिक शब्द प्रयोगो की रूढिगत कृत्रिमता और शुष्क वाग्जाल से आकुञ्चित न होकर, लोकमानस मे प्रवहमान मानवीय भावनाओ की सरसता और अपनत्व से ओत प्रोत है। इसमे मस्तिष्क को बोझिल और सारग्राहिणी बुद्धि को कुण्ठित करने के उपक्रम के स्थान पर सीधे हृदय से दो-दो बाते करने का अबाधित और अनायास सपक है। इस दृष्टिकोण से लोकभाषाओ की स्थानीय रंगत मे रगे जैन काव्यो का अध्ययन अभीष्ट है।

जैन प्रबध रचनाओ मे सांस्कृतिक सामग्री की जो विशदता, विपुलता और सर्वांगीणता मिलती है वह सस्कृतेतर भाषाओं के अन्यान्य साहित्य मे तुलनात्मक रूप से अति विरल ही कही जाएगी। हमारे विस्मृत एवं लुप्तप्राय: ज्ञानकोश के पुनर्निर्माण के लिए जैन साहित्य का महत्व सर्वोपरि माना जाना चाहिए। साहित्यिक

वर्णनो की जो परम्परा जैन ग्रंथो में उपलब्ध है उनसे अनेक उलझे सूत्र सुलझाने मे बडी सहायता मिली है। इस वर्णक सम्मुचय को हम तत्कालीन काव्य पाठ-शालाओ के पाठयक्रम का एक अंग ही मान सकते हे। वर्णनों की इस परिपाटी ने प्राचीन भारतीय सस्कृति को सुरक्षित करने मे बडा योगदान दिया है। प्रस्तुत सकलन मे आई ऐसी सास्कृतिक सामग्री पर डा. कासलीवाल ने अपनी विद्वत्तापूर्ण भूमिका मे अच्छा प्रकाश डाला है।

जब से विद्वानो का ध्यान जैन रचनाओ की इस सांस्कृतिक समृद्धि की ओर गया है, अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रथो के सौंस्कृतिक अध्ययन प्रस्तुत किए गए हैं। हरिवंश पुराण, कुवलयमाला, उपमितिभव प्रपचकथा, प्रद्युम्नचरित, जिनदत्तचरित निशीथ चूर्णि प्रभृति ग्रथो के ऐसे अध्ययनो ने सास्कृतिक विषयो मे रुचि रखने वाले अध्येताओ का ध्यान इस ओर आकर्षित किया है। सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि के ग्रथो मे प्राप्त प्रभूत सांस्कृतिक सदर्भो के अनुकरण पर प्राप्य भाषा-काव्यो मे भी ऐसी सामग्री का अभाव नही है। कविवर बनारसीदास की आत्मकथा 'अर्द्ध कथानक' का ऐसा ही एक अध्ययन हाल ही मे किया भी गया है। इस शैली पर, विषयो की और गहराई मे उतरते हुए, सास्कृतिक शब्दो का खुलासा किया जाना अपेक्षित है। शब्दो के व्युत्पत्ति जन्य एव पारपरिक अर्थों की समीचीनता को उद्-घाटित करने के कारण ही 'श्री अभिधान राजेन्द्र कोष' जैसे प्रामाणिक ग्रथ विश्व भर मे समादृत हुए हैं।

सस्कृति के पक्ष से ही अविच्छिन रूप से जुडा हुआ राज और समाज का प्रश्न भी है। ऐतिहासिक उल्लेखो की जो प्रामाणिकता जैन विद्वानो की रचनाओ से सिद्ध हुई है उसकी तुलना मे हमारा दूसरा पारम्परिक साहित्य नही ठहरता। इसका मुख्य कारण तो यही हो सकता है, कि जैनधर्माचार्य निरन्तर विहार करते रहने के कारण हरेक स्थान से सबधित घटनाओ के विश्वस्त तथ्यो से परिचित हो सकते थे। इसी निजी सपर्क से लोक व्यवहार एव सामाजिक रीति-नीति का भी निकटतम और सहज अध्ययन संभव था। निरन्तर जन सम्पर्क मे आते रहने से लोक मानस के अन्तराल का वैज्ञानिक अध्ययन एव मनोवृत्तियो का सम्पर्क विश्लेषण भी उनके लिए सहज बन गया था। किसी भी साहित्यकार के लिए देश-देशातर का इस प्रकार का निरीक्षण अत्यन्त श्रेयस्कर है। पर अनेक कारणो से ऐसा करना विरले ही लोगो के बश की बात है। जैनाचार्यों ने चूंकि इसे जीवन का एक अति आवश्यक अग बना लिया था, अत. उनके लिए यह साहित्यिक सामर्थ्य का एक कारण भी बन गया है। इस प्रकार के चतुर्दिक मे रहने के कारण

ही जैन रचनाओं में राज, समाज और संस्कृति की अमूल्य सामग्री समाहित हो सकी है।

प्रस्तुत संकलन मे आए हुए कवियों की रचनाओ का सामाजिक और सांस्कृतिक अध्ययन मध्यकालीन समाज और संस्कृति के अनेक अज्ञात अथवा अल्पज्ञात पक्षों को उजागर कर सकता है। यह हर्ष का विषय है कि डा. कासलीवाल ने इस दिशा मे संकेत करते हुए अपने सपादकीय आलेखो मे यह शुभारम्भ कर दिया है। आधुनिक विश्वविद्यालयो मे शोधरत छात्रों द्वारा ऐसे लघुशोध प्रबंध तैयार करवाये जाकर इस प्रयत्न को आगे बढाया जा सकता है। कालान्तर मे ऐसे ही प्रयासो से 'विशाल भारतीय सस्कृतिकोश' का निर्माण संभव हो सकेगा -

प्रस्तुत सकलन के संपादन व प्रकाशन के लिए श्री महावीर ग्रथ अकादमी से संबद्ध सभी सुधीजन, विशेषतः डा. कासलीवाल, सभी साहित्य प्रेमियो के साधुवाद के पात्र हैं।

डी २८२, मीरां मार्ग बनीपार्क,
जयपुर।

रावत सारस्वत

लेखक की ओर से

"कविवर बुलाखीचन्द, बुलाकीदास एव हेमराज" पुस्तक को पाठको के हाथो मे देते हुये मुझे अत्यधिक प्रसन्नता है। विशाल हिन्दी जैन साहित्य के प्रमुख कवियो मे उक्त तीनो ही कवियो का प्रमुख स्थान है। ये १७ वी १८ वी शताब्दि के चमकते हुये प्रतिभा सम्पन्न कवि थे जिन्होने अपनी महत्त्वपूर्ण कृतियो से तत्कालीन समाज एव स्वाध्याय प्रेमियो को गौरवान्वित किया था। यह भी प्रसन्नता की बात है कि तीनो ही कवियो का आगरा से विशेष सम्बन्ध था जहाँ महाकवि बनारसीदास जैसे कवि उनके पूर्व हो चुके थे।

उक्त तीन कवियो मे बुलाखीचन्द का नाम हिन्दी जगत के लिये एक दम अनजाना है। आज तक किसी भी विद्वान् ने उनके नाम का उल्लेख नही किया इसलिये ऐसे अचर्चित कवि को हिन्दी जगत् के सामने प्रस्तुत करने मे और भी प्रसन्नता होती है। बुलाखीचन्द की एक मात्र कृति 'वचन कोश' की अभी तक उपलब्धि हो सकी है किन्तु यही एक मात्र कृति उनके व्यक्तित्व को जानने/परखने के लिये पर्याप्त है। कवि ने अपनी पद्यात्मक कृतियो मे बीच २ मे हिन्दी गद्य का प्रयोग करके उस समय के चर्चित गद्य का भी हमे दर्शन करा दिया है। हिन्दी गद्य साहित्य के विकास को जानने के लिये भी 'वचन कोश' एक महत्त्वपूर्ण कृति है। लगता है कवि साहित्यिक होने के साथ इतिहास प्रेमी भी थे इसलिये उन्होने अपने इस कोश मे अग्रवाल जैन जाति की उत्पत्ति, काष्ठा सघ का इतिहास, जैसवाल जैन जाति की उत्पत्ति का इतिहास, भगवान महावीर के समवसरण का जैसलमेर मे आगमन जम्बू स्वामी का कैवल्य एव निर्वाण जैसी ऐतिहासिक बातो का अच्छा वर्णन किया है। प्रस्तुत भाग मे हम वचन कोश के पूरे पाठ नही दे पाये हैं कुछ प्रमुख पाठ देकर ही हमे सन्तोष करना पडा है।

इस भाग के दूसरे कवि **बुलाकीदास** है जिनका पाण्डवपुराण अत्यधिक लोक-प्रिय ग्रंथ माना जाता है। बुलाकीदास ने पाण्डवपुराण एवं प्रश्नोत्तरश्रावकाचार-दोनो ही ग्रन्थो का निर्माण अपनी माता जैनुलदे की प्रेरणा मे किया था। सारे साहित्यिक जगत् मे पडिता जैनुलदे जैसी आदर्श एवं स्वाध्यायशीला महिला का मिलना कठिन है। बुलाकीदास का पाण्डवपुराण काव्य की दृष्टि से भी एक सुन्दर कृति है जिसमे महाभारत के पात्रो का बहुत ही उत्तम रीति से वर्णन हुआ है। एक जैन कवि के द्वारा युद्ध का इतना सागोपाग वर्णन अन्य काव्यों मे मिलना कठिन है।

इस भाग के तीसरे कवि है पाण्डे **हेमराज**। लेकिन हेमराज एक कवि ही नही है। एक समय मे हेमराज नामके चार कवि मिलते हैं जिनमे दो तो बहुत उच्चश्रेणी के कवि है। हेमराज पाण्डे का नाम हम सब जानते अवश्य हैं लेकिन उनके काव्यो की महत्ता एव कला से अनभिज्ञ रहे है। हेमराज आचार्य कुन्द-कुन्द के बडे भारी भक्त थे इसलिये उन्होने प्रवचनसार, नियमसार, पचास्तिकाय जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो पर हिन्दी गद्य मे टीका लिखी और फिर समयसार एव प्रवचनसार को छन्दो मे लिखकर हिन्दी जगत् को अध्यात्म साहित्य को स्वाध्याय के लिये सुलभ बनाया। पाण्डे हेमराज के ग्रन्थो का गद्य भाग भाषा के अध्ययन की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है किस प्रकार जैन विद्वानो ने हिन्दी भाषा की अपूर्व सेवा की थी इस सबसे इन ग्रन्थो के अध्ययन के पश्चात् अच्छी तरह परिचित हो सकते हैं। वास्तव मे हेमराज अपने समय के जबरदस्त विद्वान् थे तथा समाज द्वारा समादृत कवि माने जाते थे।

पाण्डे हेमराज के अतिरिक्त एक दूसरे कवि थे **हेमराज** गोदीका। वे मूलत: सागानेर थे लेकिन कामा जाकर रहने लगे थे। ये भी आध्यात्मिक कवि थे कुन्द-कुन्द के प्रवचनसार पर उनकी अगाध श्रद्धा थी। इसलिये उन्होने भी इसे हिन्दी पद्यो मे गूंथ दिया। उनकी दूसरी रचना उपदेश दोहा शतक है। जिसका पूरा पाठ इस भाग मे दिया गया है। हेमराज गोदीका अपने समय के सम्मानित कवि थे। इसी तरह उसी शताब्दि मे दो और हेमराज नाम के कवि हुए जिन्होने भी अपनी लघु रचनाओ से हिन्दी जगत को उपकृत किया।

प्रस्तुत भाग मे बुलाखीचन्द के वचनकोश बुलाकीदास के पाण्डवपुराण, हेमराज पाण्डे का प्रवचनसार (पद्य), हेमराज गोदीका के उपदेश

दोहाशतक (पूरी कृति) एवं प्रवचनसार (हिन्दी पद्य) के कुछ प्रमुख पाठो को दिया गया है। आशा है पाठक गण उनके अध्ययन के पश्चात् कवियो की काव्य प्रतिभा का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

सम्पादक मंडल

प्रस्तुत भाग के सम्पादन मे माननीय रावत सारस्वत जयपुर, डा० हरीन्द्र भूषण जैन उज्जैन एवं श्रीमती शशिकला बाकलीवाल जयपुर का जो सहयोग मिला है उसके लिये मैं उनका पूर्ण आभारी हूँ। श्री रावत सास्वत ने जो सम्पादकीय लिखा है वह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है तथा हिन्दी जैन साहित्य के महत्त्व एव उसकी उपयोगिता पर विस्तृत प्रकाश डालने वाला है।

आभार

मैं श्री दि० जैन बडा तेरहपथी मन्दिर जयपुर के शास्त्र भण्डार के व्यवस्थापक श्री कपूरचन्दजी सा० पापडीवाल, पाण्डे लूणकरणजी के मन्दिर के शास्त्र भण्डार के व्यवस्थापक श्री मिलापचन्दजी बागायतवाले एव दि० जैन मन्दिरजी ठोलियान ने व्यवस्थापक श्री नरेन्द्र मोहनजी डडिया का आभारी हूँ जिन्होने अपने २ शास्त्र भण्डारो मे से वाछित पाण्डुलिपिया सपादन के लिये देने की कृपा की। आशा है भविष्य मे भी आप सबका इसी प्रकार का सहयोग प्राप्त होता रहेगा।

मैं आदरणीय श्री रमेशचन्दजी सा० जैन देहली का भी आभारी हूँ जिन्होने प्रस्तुत पुस्तक के लिये दो शब्द लिखने की कृपा की है। जैन सा० का अकादमी को विशेष सहयोग मिलता रहता है।

अन्त मे मैं मनोज प्रिन्टर्स के व्यवस्थापक श्री रमेशचन्दजी जैन का भी आभारी हूँ जिन्होने पुस्तक के मुद्रण मे पूरी तत्परता दिखाई है तथा उसे सुन्दर बनाने मे योग दिया है।

जयपुर

१ मार्च १९८३ **डा० कस्तूर चन्द कासलीवाल**

विषय-सूची

□ [ ]

पूर्व पीठिका

विक्रम की १७वीं शताब्दि समाप्त होने के साथ ही देश में हिन्दी कवियों की बाढ सी आगयी। एक ही समय मे बीसों कवि होने लगे। प्राकृत, संस्कृत, एवं अपभ्रंश में रचनायें करना बन्द सा हो गया। जन-साधारण भी हिन्दी कृतियों को पढने में सर्वाधिक रुचि दिखलाने लगा। भाषा कवियो का आदर बढ गया। कबीर, मीरा, सूरदास एवं तुलसी का नाम उत्तर भारत मे श्रद्धा के साथ लिया जाने लगा एव उनकी रचनाओ ने धार्मिक रचनाओ का स्थान ले लिया। जैन कवि तो आरम्भ से ही अपभ्रंश के साथ-साथ राजस्थानी, व्रज एव हिन्दी मे रचनाये निबद्ध करने मे आगे थे। १७वी शताब्दि के पूर्व कविवर सधारू, राजसिंह, ब्रह्म जिनदास, भ ज्ञानभूषण, आचार्य सोमकीर्त्ति, बूचराज, ब्र. यशोधर, छीहल, ठक्कुरसी, ब्रह्म रायमल्ल, भ रत्नकीर्त्ति, कुमुदचन्द, बनारसीदास, रूपचन्द जैसे प्रभावी जैन कवि हो चुके थे जिन्होने राजस्थानी एव हिन्दी मे काव्य निर्माण का मार्ग प्रशस्त कर दिया था तथा जन-मानस मे हिन्दी रचनाओ के प्रति गहरी श्रद्धा उत्पन्न कर दी थी। पाठको की इस श्रद्धा से हिन्दी कवियो को अत्यधिक बल मिला और उन्होंने विविध संज्ञा परक रचनाओ के निबद्ध करने मे अपने आपको समर्पित कर दिया।

१६वी, १७वी एव १८वी शताब्दि मे एक ओर गुजरात एवं बागड प्रदेश हिन्दी एवं राजस्थानी कवियो का केन्द्र बना रहा तो दूसरी ओर आगरा नगर जैन कवियों के लिये तीर्थ बनने लगा। गुजरात एव बागड प्रदेश मे भट्टारको एव उनके शिष्य प्रशिष्यो का जोर था। वे चरित, रास, वेलि, कथा एवं भक्ति परक रचनाओं को निबद्ध करने मे लगे हुए थे तो दूसरी ओर आगरा जैसे नगर में अध्यात्मवादी कवियों का जोर था और वे समयसार नाटक एवं आध्यात्मिक कृतियो के लिखने मे झूम रहे थे। आत्म तत्व के प्रेमी ये कवि देश मे एक नयी लहर फैलाने मे लगे हुए थे। इसलिये कविवर बनारसीदास एव उनकी मडली के कवि रूपचन्द, कौरपाल जैसे कवियो ने दिन-रात एक करके पचासों आध्यात्मिक रचनायें लिखने मे सफलता प्राप्त की जिनका देश के सभी भागो मे जोर का स्वागत हुआ। बनारसी-

दास तो उत्तरी भारत मे स्वाध्याय प्रेमियो के लिये आदर्श बन गये। उत्तर मे मुलतान एव दक्षिण मे राजस्थान, मध्यप्रदेश, देहली आदि सभी स्वाध्याय केन्द्रों पर समयसार नाटक, बनारसी विलास जैसी कृतियो की स्वाध्याय एव चर्चा होने लगी।

यहां यह उल्लेखनीय है कि अधिकाश कवियो के संरक्षक विभिन्न भट्टारक थे जो अपने समय के सर्वाधिक प्रतिष्ठित जैन सन्त के रूप मे समादृत थे। राजस्थान मे आमेर, सागानेर, अजमेर, नागौर जैसे नगर इनके केन्द्र थे जहाँ पचासो पडित साहित्य सेवा मे लगे रहते थे। लेकिन आगरा केन्द्र से सम्बन्धित कवि भट्टारको के अधिक सम्पर्क मे नही थे। बनारसीदास ऐसे कवियो के आदर्श थे। इसलिये सवत् १७०१ से १७५० तक के काल को बनारसीदास का उत्तरवर्ती काल के नाम से सम्बोधित किया जा सकता है। इस अवधि मे आगरा, कामां, सागानेर, आमेर, टोडारायसिह जैसे नगर हिन्दी कवियो के प्रमुख केन्द्र थे। हमारे तीनो चर्चित कवि बुलाखीचन्द, बुलाकीदास एव हेमराज इसी अवधि मे होने वाले कवि थे जिनका प्रस्तुत भाग मे विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। इन पचास वर्षों मे मनोहरलाल, हीरानन्द, खडगसेन, अचलकीर्त्ति, रामचन्द्र, जगतराम, जोधराज, नेमिचन्द्र, भैया भगवतीदास, आनन्दघन जैसे पचासो कवि हुए जिन्होने अपनी सैकडो रचनाओ से हिन्दी के भण्डार को समृद्ध बनाने मे सफलता प्राप्त की। इन सभी कवियो का विशेष अध्ययन अकादमी के आगे के भागो मे किया जावेगा।

कविवर बुलाखीचन्द

बुलाखीचन्द हिन्दी विद्वानो के लिये एक दम नया नाम हैं। क्या जैन एवं क्या जैनेतर विद्वानो मे से किसी ने भी कविवर बुलाखीचन्द के विषय मे अभी तक नही लिखा है। इसलिये अकादमी के प्रस्तुत भाग मे एक अज्ञात कवि का परिचय देते हुए हमे भी अत्यधिक प्रसन्नता है। इसके पूर्व भी अकादमी के दूसरे भाग में गारवदास, चतुर्थ भाग मे आचार्य जयकीर्त्ति, राधव, कल्याण सागर तथा पंचम भाग मे ब्रह्म गुणकीर्त्ति जैसे अज्ञात कवियो का परिचय दिया जा चुका है लेकिन बुलाखीचन्द उन सबसे विशिष्ट कवि थे तथा अपने समय के प्रतिनिधि कवि थे।

जीवन परिचय :

कविवर बुलाखीचन्द जैसवाल जाति के श्रावक थे। जैसवाल जाति की उपरोतिया एव तिरोतिया इन दो शाखाओ मे से बुलाखीचन्द तिरोतिया शाखा मे उत्पन्न हुये थे। उनके पितामह का नाम पूरणमल एव पितामह का नाम प्रताप था। वे राजाखेडा के चौधरी थे तथा उनकी आगरा तक धाक् थी।[1] प्रताप जैसवाल के पाच पुत्र थे जिनमे सबसे छोटे लालचन्द थे।

लालचन्द के पुत्र का नाम जिनचन्द था लेकिन सभी परिवार वाले उसे बुलाखीचन्द के नाम से पुकारते थे।[2] लेकिन वे कौनसे सवत मे पैदा हुए, माता का नाम

---

१. कारज गाम गोत परनए इहि विधि जैसवाल बरनए।
उपरोतिया गोत छत्तीस, तिरोतिया गनि छह चालीस।।७४।।
तिरोतिया तिनि मे एक जानि, पूरण अंश प्रताप सुव जानि।
राजाखेरा को चउधरी, अग्गलपुर को आनु जु धरी।।७५।।

२. ताके पांच पुत्र अभिराम, अनुज लालचन्द तसु नाम।
ता सुत हीमे प्रीति जिनचन्द, सब कोऊ कहै बुलाखीचन्द।। ७७।।

क्या था तथा उनका बचपन एवं युवावस्था किस प्रकार व्यतीत हुई इस सम्बन्ध मे कोई जानकारी नही मिलती। लेकिन इतना अवश्य है कि आगरा से विशेष सम्बन्ध होने के कारण कवि को अच्छी शिक्षा मिली होगी। प्राकृत, संस्कृत एव हिन्दी भाषा का उन्हे अच्छा ज्ञान था तथा काव्य रचना मे उनकी रुचि थी। उनका कवि हृदय था।

संवत् १७३७ के पूर्व उनके हृदय मे एक ऐसे ग्रथ निर्माण करने का भाव आया जिसमे जिन कथा दी हुई हो। कवि के वृन्दावन एव सागरमल ये दो मित्र थे। जब कवि को काव्य रचना की इच्छा हुई तो उसने अपने इन दोनो मित्रो से चर्चा की और उन दोनो की आज्ञा लेकर बचनकोश को रचना कर डाली।[1] दोनों मित्र जिनधर्मी एव परम पवित्र थे। सभी उनका सम्मान करते थे। दोनो को जैन-धर्म का अच्छा ज्ञान था। ग्रथ पूरा होने पर उसका नाम बचनकोश रखा गया। कवि ने लिखा है कि बचनकोश नाम ही अत्यधिक उज्वल माना गया।[2]

रचना काल एवं रचना स्थान

बचनकोश की रचना संवत् १७३७ वर्ष मे वैशाख सुदी अष्टमी के शुभ दिन समाप्त हुई थी। उस दिन सोमवार था। कवि ने सोमवार का 'नीस' नाम दिया है। रचना स्थान वर्द्धनपुर था जो उस समय एक सुन्दर नगर था तथा वहाँ के निवासियों मे अपनी बुद्धि पर गर्व था।

> संवत सत्रहसे वरस ऊपरि सप्त अरु तीस।
> बैशाख अंधेरी अष्टमी, बार बरनउ नीस ॥ ८३ ॥
> वर्द्धनपुर नगरी सुभग, तहाँ बुद्धि को जोस।
> रच्यो बुलाखी चन्द ने, भाषा बचन जुकोश ॥ ८४ ॥

---

१ तासु हिरदै उपजी वह भ्रांति, कीजे क्यों जिन कथा बखान।
वृन्दावन सागरमल मित्र जिनधरमी अरु परम पवित्र ॥ ७८ ॥

२ तिनकी आज्ञा ले सिर धरी, बचनकोश की रचना करी।
भाषा ग्रंथ भयौ अति भलो, बचनकोश नाम जु उजलो ॥ ७९ ॥

वर्द्धनपुर कौनसा नगर था तथा वर्तमान में उसका क्या नाम है यह खोज का विषय है किन्तु हमारे विचार में यह नगर मथुरा के पास होना चाहिये क्योंकि जैसवाल जैन समाज त्रिभुवनगिरी को छोड़ कर मथुरा आ चुका था। यही पर जम्बू स्वामी को कैवल्य एवं निर्वाण की प्राप्ति हुई थी इसलिये वृन्दावन का नाम ही बर्धनपुर होना चाहिये। वृन्दावन मथुरा के समीप ही है और कभी वहाँ जैसवाल जैन समाज की अच्छी सख्या रही होगी।[1]

बचनकोश का महात्म्य

कवि के अनुसार बचनकोश कोई साधारण रचना नही है किन्तु यह एक ऐसा ग्रंथ है जिसको पढ़ने से मिथ्याज्ञान दूर हो जाता है तथा जिनवाणी के अतिरिक्त अन्य किसी की बात अच्छी नही लगती। इसकी स्वाध्याय से सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। जो स्त्री पुरुष इसका रुचि पूर्वक श्रवन करते हैं उनके घर मे लक्ष्मी का निवास हो जाता है। जो इसका मनन करते है उनके किसी प्रकार का भी रोग नहीं आता। बचनकोश की तो इतनी अधिक महिमा है जिसका वर्णन करना भी कवि के लिए संभव नही है। क्योकि उसके पठन पाठन एव श्रवण मात्र से भी बुद्धि एव बल दोनो की वृद्धि होती है तथा उसे मान सम्मान भी मिलता है।[2]

बचनकोश विलास सदृश रचना है जिसमे गद्य पद्य वाली रचनाओ का संग्रह रहता है। लेकिन बचनकोश की एक यह विशेषता है कि इसमे कवि ने कोश के

---

१ छांडि तिहुवन गिरी उठि धाइयौ, जैसवाल वाल आनियो।
प्रभु वरसन लइए नविहंड, दुरमति करि मारि सत खंड ॥ ७१ ॥
जम्बू स्वामि भयो निरवान, पाई पचम गति भगवान।
जेसवाल रहे तिही ठाम, मन मान्यो जु करइ कांम ॥ ७३ ॥

२. जिनसे तासु पठत मिथ्यात, सांची लगे न परमत बात।
क्षयोपशम को कारण यही, बचनकोश प्रगट्यो यह मही ॥ ८० ॥
श्रवन करें रुचि सं नरनारि, लक्ष्मी होइ शुभग निरधार।
लखनी होइ, न रोग आकुलौ, याके पढ़ें होइ अति जु भलौ ॥८१ ॥
जिनवानी की करिति घनी, कहां लौ वरनि सके नहीं मनी।
सुन तासु न पावें पार, मांनि सकति जु बुधि बलसार ॥ ८२ ॥

रूप मे रचानायें लिखी है। उसने अपनी रचना मे अपने दो मित्रों के नामो के अतिरिक्त अपने पूर्ववर्ती अथवा समकलीन कवियो का नामोल्लेख तक नही किया। इससे वह स्पष्ट लगता है कि कवि अन्य कवियो के सम्पर्क मे नही थे तथा स्वय ही अपनी ही धुन मे काव्य रचना किया करते थे।

बचनकोश किमी सर्ग अथवा अध्याय मे विभक्त नही है लेकिन जब किसी का वर्णन समाप्त होता है तो उस विषय की समाप्ति लिख दी गयी है। यही उसकी विभाजन रेखा है। वैसे कवि ने तो विषय का इस प्रकार प्रतिपादन किया है कि उससे बिना सर्ग अथवा अध्याय के भी काम चल जाता है।

बचनकोश का अध्ययन

वचनकोश का प्रारम्भ मगलाचरण से किया गया है। जिसमे पचपरमेष्ठी रूपी समयसार के चरणो की वन्दना की गयी है। पच परमेष्ठियो मे सिद्ध परमेष्ठी को देव शब्द से अभिहित किया गया है तथा अर्हन्त, आचार्य, उपाध्याय एव सर्व साधु को गुरु के रूप मे स्मरण किया गया है। सिद्ध परमेष्ठी पच ज्ञान के धारी है। वे वर्ण, गध एवं शरीर से रहित हैं। अविनाशी है, विकार रहित हैं तथा लघु गुण रहित हैं। अर्हंत परमेष्टी अनन्त गुणो के धारक हैं, परम गुरु है तथा तीनो लोको के इन्द्रो द्वारा पूजित है।[3] इसी तरह आचार्य, उपाध्याय एव साधु परमेष्टी का गुणानवाद किया है

ऋषभदेव की स्तुति

पंचपरमेष्टी को नमन करने के पश्चात् कवि ने २४ तीर्थंकरो की स्तुति की है। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव थे जिनके नाभिराय एवं मरुदेवी पिता एव माता थे। उनका शरीर पाचसो योजना था। उनका देह स्वर्ण के समान था। वे इक्ष्वाकु वश मे उत्पन्न हुये थे। चैत्र कृष्णा नवमी जिनकी जन्म तिथि है

---

१. समयसार के पय नमु, एक देव गुरु च्यारि।
परमेष्टि तिनिस्यौं कहैं, पच ज्ञान गुण धार ॥ १ ॥

२ बरण गंध काया नहीं, अविनाशी अविकार।
गुरु लघु गुण विनु देव यह, नमो सिद्ध अवतार ॥ २ ॥

३ श्री जिनराज अनन्त गुण, जगत परम गुरु एव।
अध ऊरध मधि लोक के, इन्द्र करे शत सेव ॥ ३ ॥

ऋषभदेव को तीर्थंकर के रूप में जन्म लेने के लिये ११ भवों तक साधना करनी पड़ी थी। चैत्र सुदी को नवमी को उन्होने गृह त्याग किया था। साधु अवस्था में सर्व प्रथम उन्हे एक वर्ष तक निराहार रहना पड़ा और फिर हस्तिनापुर के राजा श्रेयांस के यहाँ सर्व प्रथम इक्षु रस का आहार लिया था। वट वृक्ष के नीचे उन्होने केश लोंच किया तथा फागुण बुदी ग्यारस के दिन प्रातः उन्हें कैवल्य हो गया। उनका समवसरण १२ योजन विस्तार वाला था जिसकी रचना इन्द्रो ने की थी। ऋषभदेव के ८४ गणधर थे। अन्त मे माघ सुदी १४ को पद्मासन से उन्हे निर्वाण की प्राप्ति हुई और सदा सदा के लिये जन्म मरण के बन्धन से मुक्ति प्राप्त की। कवि ने अन्त मे यह भी कहा है कि जो व्यक्ति इस दिन का उपवास करता है उसे पुनः मनुष्य भव की प्राप्ति होकर अन्त मे निर्वाण पद प्राप्त हो सकता है। ऋषभदेव की पूरी स्तुति १० पद्यो में समाप्त होती है।

२ अजित नाथ की स्तुति

अजितनाथ दूसरे तीर्थंकर थे जो ऋषभदेव के लाखों वर्ष पश्चात् हुए थे। अयोध्या उनका जन्म स्थान था। राजा जितरिपु उनके पिता एवं विजया उनकी माता थी। हाथी उनका लाछन था। वे भी इश्वाकु वश मे पैदा हुये थे। माघ सुदी नवमी उनका जन्म दिन था। चैत्र शुक्ला पचमी को उन्होने गृह त्याग कर साधु दीक्षा ली। तीन दिन निराहार रहने के पश्चात् ब्रह्मदत्त राजा के यहाँ गाय के दुग्ध का उनका आहार हुआ। जम्बु वृक्ष के नीचे उन्होने तप करना प्रारम्भ किया। और अन्त मे माघ शुक्ला दशमी के दिन सध्या समय उन्हे कैवल्य प्राप्त हुआ। उन्होने सम्मेदशिखर पर खडे रहकर तप साधना की और अन्त मे उसी पर्वत से पोष सुदी एकम के दिन उन्होने निर्वाण प्राप्त किया।[1]

---

१. सागर लाख करोरि पचास, बीते अजितनाथ परगास।
जितरिपु राजा विजया मात, गज लाछन हाटक समगात ॥१॥
पुरी अजोध्या जनम कल्याण, तीनि भवातर तें भयो जान।
धनक चारिसे साठे काय, लाख बहत्तर पूरव आयु ॥२॥
वंश इषाक नवे गिनि धार, तीन दिवस अंतर आहार।
धेनु खीर पीयौ मुनि देह, ब्रह्मदत्त नृप वनिता गेह ॥३॥

शेष पृष्ठ ८ पर

३ संभवनाथ

तीसरे तीर्थंकर संभवनाथ थे जो अजितनाथ के निर्वाण के लाखों वर्ष पश्चात् हुए। साविंत्री नगरी के राजा जितारथ के यहां फागुण सुदी पूर्णिमा के दिन उनका जन्म हुआ। उनका वंश भी इक्ष्वाकु वश था। उनका शरीर हेम वर्ण का था जो ४०० धनुष ऊंचा था। पर्याप्त समय तक राज्य सुख भोगने के पश्चात् चैत्र शुक्ला षष्टी को वैराग्य ले लिया। शाल वृक्ष के नीचे वे तपस्या करने लगे और अन्त में कार्तिक की पूर्णिमा को मध्याह्न मे कैवल्य हो गया। कार्तिक बुदी चतुर्थी को सम्मेदाचल से निर्वाण प्राप्त किया। निर्वाण प्राप्ति के समय वे खड्गासन अवस्था मे थे। सभवनाथ का चिह्न घोड़ा है जो कवि के शब्दो मे "तुरंग पवन गति ध्वज आकार" है।

४ अभिनन्दन नाथ

अभिनन्दन नाथ चतुर्थ तीर्थंकर हैं जिनका जन्म अयोध्या मे इक्ष्वाकु वश के राजा समरराय के यहां हुआ। उनकी देह स्वर्ण के समान थी। माघ शुक्ला द्वादशी

जंबु वृक्ष तलें तपु लियो, रत्नत्रय व्रत निर्मल कियो।
समोसरण श्री जिनबर तनौं, जोजन साढे ग्यारह भणौं ॥४॥
बरननि सको अलप मोहि ज्ञान, सांझ समे भयौ केवलज्ञान।
बहुविधि राज विभूति बिलास, ताहि त्यागी पाई सुख रासि ॥५॥

सोरठा

ठाडे जोगाभ्यास कियो सिद्ध सम्मेद पर।
पहुचे अविचल बास सकल करम वन दहन के ॥६॥

दोहा

जेष्ठ वदि मावस गरभ, जनम माघ सुदि नौमि।
चैत्र सुदि पांचें सु तप, ध्यान अगनि कर्म होमि ॥७॥
माघ महीना शुकल पक्ष, दशमी तिथि को ज्ञान।
पूस उज्यारी प्रतिपदा, ता दिन प्रभु निर्वाण ॥८॥

के दिन उनका जन्म हुआ और उसी तिथि को घोर तप साधना के पश्चात् कैवल्य हुआ। अन्त मे पोष शुक्ला चतुर्दशी को सम्मेदाचल से मोक्ष प्राप्त किया। अभिनन्दन स्वामी का चिह्न बन्दर है।

५ सुमितनाथ

कवि ने अभिनन्दन नाथ की स्तुति के पश्चात् पाचवे तीर्थंकर सुमतिनाथ की स्तुति की है सुमति नाथ का प्रादुर्भाव जैन सन्तो को प्रतिबोध देने के लिये हुआ था। उनका जन्म कौशल देश के राजा मेघराय के यहाँ हुआ था। मंगला उनकी माता का नाम था। जिनका इश्वाकु वंश था। वे सुवर्ण वर्ग की देह वाले थे। वैशाख शुक्ला नवमी के दिन उनका जन्म हुआ था। चैत्र शुक्ला एकादशी को उन्होंने राजा सम्पदा परिवार स्त्री एव पुत्र को छोड कर साधु दीक्षा ले ली। घोर तपः साधना एव विहार के पश्चात् उन्हे कैवल्य हो गया। वे सर्वज्ञ बन गये। देवो ने समवसरण की रचना की जहाँ से सुमतिनाथ ने जगत् को सुख शान्ति का सन्देश दिया और अन्त मे कायोत्सर्ग अवस्था मे निर्वाण प्राप्त किया।

६ पद्मप्रभु

ये छट्ठे तीर्थंकर थे जो सुमति के निर्वाण के पश्चात् हुए। इनके पिता कोशाम्बी के राजा थे जिनका नाम घुर था। रानी सुसीमा उनकी माता थी। कमल पद्मप्रभु का निशान है। फागुण कृष्णा चतुर्थी के दिन उनका जन्म हुआ। पदमप्रभु भी अपनी राज्य सम्पदा को छोड कर कार्तिक बुदी तेरस के दिन मुनि दीक्षा धारण करली। वे दिगम्बर बन गये और घोर तपस्या करने लगे। पद्मप्रभु ने सर्व प्रथम प्रियगु वृक्ष के नीचे तपस्या की थी। मगलपुर के राजा सोमदत्त के यहाँ आपका सर्व प्रथम आहार हुआ। बहुत वर्षो तक तप करने के पश्चात् कार्तिक सुदी तेरस के दिन ही कैवल्य हो गया। उस समय गोधूलि का समय था। सम्मेदाचल से खड्गासन अवस्था मे आपने निर्वाण प्राप्त किया।

७. सुपार्श्वनाथ

सुपार्श्वनाथ सातवे तीर्थंकर थे जिनका स्मरण मात्र ही दु:खों एवं अशान्ति का विनाशक है। वाराणसी नगरी के राजा के यहाँ जन्म हुआ। स्वस्तिक आपका लाछन है। आपकी देह नील वर्ण की थी। जन्म से ही वे तीन ज्ञान के धारी थे।

स्वस्तिक उनका निशान है। साधु बनने के पश्चात् उन्होंने काफी समय तक तपस्या की थी और अन्त मे उन्हें कैवल्य हो गया। अपने समवसरण से उन्होने शान्ति का सबको सन्देश सुनाया। फागुण बदी षष्टी के शुभ दिन सम्मेदाचल से उन्हें निर्वाण प्राप्त हुआ।

८. चन्द्रप्रभ

आठवे तीर्थंकर चन्द्रप्रभ हैं जिनकी स्तुति करते हुये कवि ने लिखा है कि चन्द्रप्रभ का जन्म पौष बदि ग्यारस के दिन चन्द्रपुरी के राजा महासेन एवं रानी लछमा के यहाँ हुआ। उनके पिता भी इश्वाकु वशी राजा थे। चन्द्रप्रभ को तीर्थंकर अवस्था पूर्व के सात जन्मो की लगातार तपः साधना के पश्चात् प्राप्त हुई थी। तीर्थंकर चन्द्रप्रभ को राज्यवैभव, परिवार एव सम्पदा अच्छी नही लगी इसलिये फागुण बुदी सप्तमी के दिन उन्होने वैराग्य धारण कर लिया। नाग वृक्ष के नीचे बैठकर वे ध्यान करने लगे। सर्व प्रथम चन्द्रदत्त के यहाँ आहार हुआ। लम्बे समय तक तपः साधना के पश्चात् उन्हे पहिले कैवल्य हुआ और फिर निर्वाण प्राप्त किया।

९. पुष्पदन्त

चन्द्रप्रभ के पश्चात् पुष्पदन्त हुये। जिनका जन्म पौष सुदी एकम को हुआ। उनका जन्म स्थान काकन्दी नगर था। सुग्रीव पिता एव रामा माता का नाम था। उनका लाछन मगर है। उनके देह की आकृति चन्द्रमा के समान है। भादवा सुदी अष्टमी को पुष्पदन्त ने घर बार छोड कर वैराग्य धारण कर लिया तथा सर्व प्रथम गोरस का आहार लिया। तप साधना के पश्चात् उन्हें अगहन सुदी प्रतिपदा के दिन संध्या समय कैवल्य हुआ। उनके ८० गणधर थे जो उनके सन्देश की व्याख्या करते थे। उनके समोसरण की लम्बाई आठ योजन प्रमाण थी। अन्त मे सम्मेदाचल से कार्त्तिक सुदी द्वितीया के दिन निर्वाण प्राप्त किया।

१०. शीतलनाथ

दसवे तीर्थंकर शीतलनाथ स्वामी थे जिनका जन्म भागलपुर के राजा हृढरथ के यहाँ हुआ था। शीतलनाथ का शरीर नब्बें धनुष का था। पर्याप्त समय तक उनका मन सांसारिक कार्यों मे नहीं लगा और आसोज सुदी अष्टमी को दिगम्बर

दीक्षा धारण कर ली । कैवल्य प्राप्ति के पश्चात् इन्हें पौष बुदी चतुर्दशी को सम्मेदाचल से निर्वाण की प्राप्ति हुई और सदा के लिये जन्म मरण के चक्कर से छूट गये । राज्य शासन करते हुए इन्हे वैराग्य उत्पन्न हुआ था । शीतलनाथ का वर्णन ६ पद्यों में समाप्त होता है ।

११. श्रेयान्स नाथ

एक लम्बे अन्तराल के पश्चात् भारत देश के आर्य खण्ड में सिंघपुरी के राजा विभव के यहाँ श्रेयान्सनाथ का जन्म हुआ । उस दिन फागुण बुदी एकादशी थी । इनकी देह का रंग स्वर्ण के समान था । पहिले इन्होंने राज्य सुख भोगा और फिर श्रावण सुदी पूर्णिमा के दिन घर बार त्याग करके दिगम्बरी दीक्षा धारण कर ली । सर्व प्रथम ये तेदूं वृक्ष की सघन छाया मे बैठकर ध्यानासन्न हुये और अन्त मे फागुण सुदी एकादशी की प्रभात वेला मगल वेला मे सर्वज्ञता प्राप्त की । सम्मेदाचल पर ये ध्यानास्थ हुये और माघ बुदी अमावस के दिन मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त किया ।

१२ वासुपूज्य स्वामी

वासुपूज्य स्वामी १२ वें तीर्थंकर थे । उनका जन्म चंपापुरी नगरी मे हुआ था । फागुण बदि चतुर्दशी उनकी जन्म तिथि मानी जाती है । उनकी माता का नाम जयादेवी था । पर्याप्त समय तक गृहस्थाश्रम मे रहने के पश्चात् भादवा सुदी चौदश को उन्होने गृह त्याग दिया । उसी समय केश लोंच किया मुनि दीक्षा धारण कर ली । सिद्धार्थ पुरी के राजा सुन्दर के यहाँ गाय के दूध का आहार किया । कोशाम्बी नगर मे वासुपूज्य स्वामी को कैवल्य प्राप्त हुआ । कैवल्य के पश्चात् उनका देश के विविध भागो मे विहार हुआ और अन्त मे माघ सुदी पचमी को निर्वाण प्राप्त किया । वासुपूज्य तीर्थंकर का भैंसा चिह्न माना गया है ।

१३ विमलनाथ

कपिलापुरी मे जन्म लेने वाले विमलनाथ १३ वें तीर्थंकर हैं । उनके पिता राजा कृतवर्मा एव रानी श्यामा माता थी । वे इक्ष्वाकु वंशीय क्षत्रिय थे । विमल नाथ का शरीर स्वर्ण के समान था । विमल नाथ भी राज्य सुख से घृणा करने लगे और तपस्या के लिये घर बार छोड़ दिया और जंबु वृक्ष के नीचे तप: साधना

करने लगे। पाटन के वीर राजा के यहाँ उनका प्रथम आहार हुआ। जब उन्हें कैवल्य हुआ तो उस समय संध्या काल था। देवों द्वारा उनका समवसरण लगाया गया। अन्त मे उन्होने सम्मेदशिखर से महानिर्वाण प्राप्त किया। उस समय वे खड्गासन अवस्था मे तपः लीन थे। उस दिन चैत्र बुदी अमावस्या थी। विमल नाथ का लांछन सुअर है।

१४ अनन्तनाथ

अनन्तनाथ १४ वें तीर्थंकर थे जो विमल नाथ के पश्चात् माघ शुक्ला तेरस के शुभ दिन पैदा हुए थे। वे इश्वाकु वंशीय क्षत्रिय थे। जन्म मे ही तीन ज्ञान के धारी थे उन्हे राज्य सम्पदा अच्छी नहीं लगी इसलिये वैराग्य लेने का निश्चय किया। चैत्र बदी अमावस्या के दिन गृह त्याग कर निर्ग्रन्थ साधु बन गये। घोर तपस्या के पश्चात् ज्येष्ठ कृष्णा एकादशी को कैवल्य हो गया। उनके गणधरो की संख्या ५४ थी। सम्मेदशिखर से उन्होने निर्वाण प्राप्त किया।

१५ धर्मनाथ

धर्मनाथ १५वें तीर्थकर थे। रतनपुरी के राजा भानु के घर माघ शुक्ला १३ के दिन उनका जन्म हुआ। वे कुंभ वंशीय क्षत्रिय थे। जन्म मे ही तीन विशिष्ट ज्ञान के धारी थे। उनके जन्म के दिन माघ शुक्ला तेरस थी। वे भी योग धारण कर वन में घोर तपस्या करने लगे। जब उन्हे कैवल्य हुआ तो उनके गणधरो की संख्या ४० थी। अन्त मे सम्मेदशिखर से उन्होने निर्वाण प्राप्त किया।

१६ शान्तिनाथ

इस युग के १६ वें तीर्थंकर शान्तिनाथ थे। उनका जन्म गजपुर के राजा विश्वसेन के यहाँ जेठ बुदी १४ को हुआ। उनकी माता का नाम ऐरादेवी था। वे कुरुवंशी क्षत्रिय थे। उनका शरीर स्वर्ण के समान चमकता था। जब वे राज्य सम्पदा से ऊब गये तो सब को छोड कर दिगम्बर साधु बन गये। जेष्ठ बदी १३ के दिन उन्हे कैवल्य हो गया। वे सर्वज्ञ बन गये। उस समय संध्या काल था। उनके गणधरो की संख्या ३६ थी। अन्त मे सम्मेदाचल से जेठ बुदी १४ के दिन निर्वाण प्राप्त किया।

१७ कुंथनाथ

कुंथनाथ १७ वें तीर्थंकर थे। जिन्होंने सम्मेदाचल से निर्वाण प्राप्त किया। बकरी इनका लांछन माना जाता है।

१८ अर नाथ

कुंथ नाथ के पश्चात् अरनाथ तीर्थंकर हुए। राजा सुदर्शन इनके पिता एवं देवी इनकी माता थी। स्वस्तिक इनका लांछन है। चैत्र शुक्ला पूर्णिमा को कैवल्य एव अगहन सुदी प्रतिपदा को इन्हें मोक्ष की प्राप्ति हुई।

१९ मल्लिनाथ

मल्लिनाथ १९ वें तीर्थंकर थे। मिथिला पुरी के राजा कुंभ एवं रानी प्रभावती के पुत्र के रूप मे इनका जन्म हुआ। इनकी काया स्वर्ण के समान निर्मल थी। कुमारकाल के पश्चात् इन्हे जाति स्मरण होने से वैराग्य हो गया। और अशोक वृक्ष के नीचे इन्होने दीक्षा धारण कर ली। ये जीवन पर्यंत अविवाहित रहे। कहापुर के राजा नन्दिसेन को मल्लिनाथ को आहार देने का सर्व प्रथम सौभाग्य प्राप्त हुआ। इनको जन्म, तप और केवल्य एक ही तिथि पौष बदी २ को प्राप्त हुआ। अन्त में फागुण सुदी पचमी को इन्होने सम्मेदाचल से निर्वाण प्राप्त किया।

२० मुनिसुव्रत नाथ

मल्लिनाथ के पश्चात् २० वें तीर्थंकर मुनि सुव्रत नाथ हुये जिनकी कवि ने वन्दना की है। राजग्रही नगरी के राजा सुमतिराय इनके पिता थे तथा उनकी रानी पद्मावती माता थी। मुनि दीक्षा लेने के पश्चात् सर्व प्रथम मिथिला के राजा विश्वसेन के यहाँ इनका आहार हुआ। वैशाख बुदी ९ के शुभ दिन उन्हे कैवल्य हुआ और फागुण बदी एकादशी के दिन सम्मेदशिखर से मोक्ष प्राप्त किया।

२१ नमिनाथ

नामिनाथ २१ वें तीर्थंकर हुये जिनका जन्म बाराणसी नगरी में आषाढ बदी दशमी के दिन हुआ। देवो एव मनुष्यो तथा तिर्यञ्चो ने भी इनका जन्म महोत्सव मनाया। अन्त में वैशाख बदी १४ को सम्मेदशिखर मे निर्वाण प्राप्त किया। इनके १३ गणधर थे।

२२ नेमिनाथ

ये २२ वें तीर्थंकर थे। द्वारावती के राजा समुद्रविजय पिता एव रानी शिवादेवी इनकी माता थी। जब ये विवाह पर जाने के लिये तोरण द्वार पर पहुँचे तो पशुओ की पुकार सुनकर वैराग्य हो गया तथा मुनि दीक्षा धारण कर ली। और गिरिनार पर्वत पर जाकर तप करने लगे। कार्तिक शुक्ला ११ को इन्हें कैवल्य हो गया। इनके ११ प्रमुख शिष्य थे जो गणधर कहलाते थे। अन्त मे गिरनार पर्वत से आषाढ शुक्ला अष्टमी को निर्वाण प्राप्त किया।

२३ पार्श्व नाथ

पार्श्वनाथ २३ वें तीर्थंकर थे जिनका यशोगान चारों ओर विद्यमान है। बाराणसी मे राजा अश्वसेन के यहाँ इनका जन्म हुआ। वामा देवी इनकी माता थी। इनकी शारीरिक ऊचाई नौ हाथ की थी तथा १०० वर्ष की आयु थी। तीर्थंकर पद प्राप्त करने के लिये इन्हे ११ पूर्व जन्मो से तपः साधना करनी पड़ी और पौष बुदी ११ को ये अविवाहित रहते हुए जिन दीक्षा धारण ली। मुनि बनने के पश्चात् राजा धनदत्त के यहाँ इनका प्रथम आहार हुआ। चैत्र बुदी ४ को कैवल्य हुआ। इनके दश गणधर थे। अन्त मे खड्गावस्था मे ही श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन निर्वाण प्राप्त किया। इनका निर्वाण स्थल सम्मेदशिखर का उत्तुंग शिखर माना जाता है।

२४ महावीर

महावीर इस युग के अन्तिम तीर्थंकर थे जो पार्श्वनाथ के पश्चात् हुये थे। कुंडलपुर नगरी के राजा सिद्धार्थ एव रानी त्रिशला के पुत्र रूप मे चैत्र शुक्ला १३ को इनका जन्म हुआ। इनका मन राज्य कार्य मे नही लगा। ये भी अविवाहित ही रहे। मगसिर कृष्णा १० के दिन इन्होने राज्य कार्य परिवार को छोड़कर वन मे जाकर मुनि दीक्षा धारण कर ली। उस समय इनकी आयु ३० वर्ष की थी। १२ वर्ष तक घोर तपस्या के पश्चात् वैशाख शुक्ला १३ को इन्हे कैवल्य प्राप्त हो गया। वे ३० वर्ष तक लगातार विहार कर जन २ को मार्ग दर्शन देने के पश्चात् कार्तिक कृष्णा अमावस्या के दिन पावापुरी से इन्होने मोक्ष प्राप्त किया।

कवि ने सभी २४ तीर्थंकरों की स्तुति करते हुए लिखा है जो व्यक्ति उनकी मन वचन काय से प्रातः एवं सायं स्तुति करते हैं उनके मिथ्यात्व रूपी अन्धकार स्वय दूर हो जाता है ।

> ए चौबस जिनेश्वर नाम, बोले सदा सुमरण के काम ।
> जो मन वच सझा प्रात, सुमिरैं फटै तिमिर मिथ्यात ।।

चौबीस तीर्थंकरो की स्तुति के पश्चात् कवि ने मध्यलोक एवं उर्द्धलोक के सभी जिन चैत्यालयों की वन्दना की है जो सभी अकृत्रिम हैं शाश्वत हैं एवं जिनकी वन्दना मंगलकारी है । मगलाचरण के अन्त में सरस्वती की वन्दना की है जो श्वेत वस्त्रधारी है । वीणा से सुशोभित है । वास्तव में तीर्थंकर मुख से निकली हुई वाणी ही सरस्वती है । वही कवियो की जननी है ।[1]

मगलाचरण के पश्चात् कवि जैसवाल जाति की उत्पत्ति का इतिहास कहना प्रारम्भ करता है[2] और उसके प्रसंग मे तीनो लोको का वर्णन करता है । लेकिन कवि ने तीनो लोको का वर्णन करने के साथ अपनी लघुता प्रकट की है साथ मे यह भी कहा है कि यदि विस्तार से इनका कथन समझना चाहें तो बड़े ग्रंथो को देखना चाहिये ।[3]

मध्य लोक में असख्यात द्वीप समुद्र हैं इसमे अढाई द्वीप में जंबूद्वीप है जो एक लाख योजन विस्तार वाला है । उसके मध्य मे सुदर्शन मेरु पर्वत है उसके उत्तर दक्षिण भाग पर भरत ऐरावत क्षेत्र है मानुषोत्तर पर्वत के वर्णन के पश्चात् असख्यात अनन्त का गणित भेद, योजन गणित भेद, पल्यायु भेद, पल्यसागर भेद

---

१ श्वेत वस्त्र करि वीना लसें, सुमति रजाह कुमति सब नसें ।
मुख जिन उद्‌भव मगल रूप, कवि जननी और परम अनूप ।।

२. नमिता चरण सकल दुख दहौं, जेसवाल उतपति सब कहौं ।
अधो मधि है लोकाकाश, पुरुषाकार बखानें तास ।।६।।

३. अल्प बुद्धि सूक्षम मम ग्यान, अढाई द्वीप तनों बखान ।
करयो सक्षेप पनैं विस्तार, व्योरौ कहत ग्रंथ अधिकार ।।
जाकौं सब व्यौरे की चाह, बड़े ग्रंथ देखो अवगाह ।।२६।।

आदि का वर्णन किया गया है। कवि ने पूरव गणित के लिये निम्न संख्या लिखी है—

> सत्तरि लाख करोरि मित, छप्पन सहस करोरि।
> इतने बरष मिलाइयैं, पूरव सख्या जोरि ॥१॥

षट्काल वर्णन

कवि ने छह काल का वर्णन किया है। ये काल हैं सुषमा सुषमा, सुषमा, सुषमा दुषमा, दुषमा सुषमा, दुखमा एवं दुषमा दुषमा। ये काल चक्र कहलाते हैं

प्रथम तीन काल भोग भूमि काल कहलाते हैं जिसमे मानव कल्पवृक्षों के आधार पर अपना जीवन व्यतीत करता है। अपनी सम्पूर्ण आवश्यकताएं उन्ही से पूर्ण करता है। ये कल्पवृक्ष दस प्रकार के बतलाये गये हैं।

> सो तरु दश प्रकार बरनये, तिनिके नाम सुनौ गुण जयो।
> सूरज मध्य विभूषा जानि, स्नग अरु ज्योति द्विप गुण खानि।
> गृह भोजन भाजन अरु भास, सुनि अब इनको दान प्रकाश ॥६॥

कल्पवृक्षो से जब इच्छानुसार वस्तुये मिल जाती है तो जीवन सुख शान्ति से व्यतीत होता है। प्रथम सुषमा सुषमा काल मे माता के युगल सन्तान पैदा होती है और पैदा होते ही माता पिता की आयु समाप्त हो जाती हैं। माता को छीक आती है और पिता जभाई लेता है। यह दोनों ही मृत्यु का सूचक है। पैदा होने वाले युगल अंगूठा पीकर बड़े होते हैं। वे पति पत्नि के रूप मे रहने लगते है। प्रथम काल मे तीन दिन मे एक बार, दूसरे सुषमा काल मे दो दिन मे एक बार तथा तीसरे काल मे एक दिन छोड़कर आहार ग्रहण करते हैं।

तीसरे काल का जब अष्टम अंश शेष रहता है तब कल्प वृक्ष नष्ट होने लगते हैं तब कुलकर जन्म लेते हैं जो मनु कहलाते हैं। वे कुलकर मानव समाज को प्राकृतिक विपत्तियो से सचेत करते हैं तथा मनुष्य को जीने की कला सिखलाते हैं।[1]

---

१. लोपे होइ कल्प द्रुम ज्यौ ज्यौं, कुलकर भाषे आगे त्यौं त्यौं।
भावी काल बखानै यथा, कहै सकल जीवनि सौं कथा॥२८॥

ये कुलकर चौदह होते हैं जो एक के बाद दूसरे होते रहते हैं । प्रथम कुलकर का नाम प्रतिश्रुत था तथा अन्तिम नाभि थे ।

चतुर्थ काल कर्म भूमि काल कहलाता है जिसमें मुक्ति का मार्ग खुल जाता है तथा मानव असि मसि कृषि वाणिज्य आदि विद्याओं द्वारा अपनी आजीविका चलाता है । एक साथ पैदा होना एव मरना मिट जाता है । वर्षा होती है खेती होती है लेकिन सदैव सुकाल रहता है ।

पञ्चम काल दुषमा काल का ही दूसरा नाम है जो २१ हजार वर्ष का होता है । वर्तमान मे पञ्चम काल चल रहा है। इस काल मे मुक्ति के द्वार बन्द हो जाते हैं । मनुष्य की आयु १२० वर्ष की होती है । जो जैसा कर्म करता है उसी के अनुसार आयु के तीसरे भाग मे अगले भव का बन्ध हाता है । शरीर का त्याग करते ही दूसरा शरीर मिल जाता है ।

पचम काल मे कृषि के माध्यम से शरीर का पोषण होगा । सुकाल कम होंगे दुष्काल अधिक । मानव की एक बार के भोजन मे भूख नही मिटेगी किन्तु दिन में दो तीन बार खाते रहेगे । मध्यम वर्षा होगी ।[1]

षष्टम काल इससे भी भयकर होगा । उसमे सब मर्यादाए समाप्त हो जावेंगी । यह काल भी २१ हजार वर्ष का होगा । कृषि का विनाश हो जावेगा । एक जीव दूसरे जीव का आहार करेगा ।

प्रथम तीर्थंकर का जन्म

उक्त वर्णन के पश्चात् कवि चौदह कुलकरो मे से अन्तिम कुलकर नाभि राजा से अपना कथन प्रारम्भ करता है। नाभिराजा विशिष्ट ज्ञान के धारी थे । उनकी रानी का नाम मरुदेवी था । इन्द्र ने जब जाना कि मरुदेवी के उदर से प्रथम तीर्थंकर जन्म लेने वाले हैं तो उसने नगरी को सब तरह से सुसज्जित बनाने का आदेश दिया । मरुदेवी ने एक रात्रि को सोलह स्वप्न देखे । जब उसने नाभि राजा से उनका फल पूछा तो यह जानकर अत्यधिक प्रसन्नता हुई कि वह प्रथम तीर्थंकर की माता बनने वाली है ।

चैत्र कृष्ण नवमी के शुभ दिन आदिनाथ का जन्म हुआ । देवताओ एव मानवों ने जिस उत्साह एव प्रसन्नता के साथ जन्मोत्सव मनाया, कवि ने उसका ४७ दोहा

चौपाई छन्द में बहुत ही मनोरम वर्णन किया है। ऋषभदेव धीरे धीरे बड़े हुए। उनकी बाल सुलभ क्रीडा सबको प्रिय लगती थी। ऋषभदेव युवा हुये। राज्य कार्य में सबको सहयोग देने लगे। अन्त मे नाभि ने ऋषभदेव को राज्यसिंहासन पर अभिषिक्त किया। ऋषभदेव ने इस युग मे सर्व प्रथम विवाह की प्रक्रिया प्रारम्भ की। किसीकी का लड़का एव किसी की लडकी को लेकर दोनो का विवाह कर दिया। इस प्रकार विवाह सस्था को जन्म दिया।[2] स्वयं ऋषभ का भी कच्छ महाकच्छ की पुत्रिया नन्दा यशस्वती से विवाह सम्पन्न हुआ। जिससे आगे ससार चलता रहे।[2]

> वैहै प्रभु कौ व्याही राय, आनन्द मगलचार कराय।
> भोग विलास करत सतोष, तब सवभिराणी को कोष ॥३६॥२०॥

ऋषभदेव के यशस्वती रानी से भरत आदि १०० पुत्र एव ब्राह्मी पुत्री तथा नन्दा से बाहुबली पुत्र एवं सुन्दरी पुत्री हुई। भरत बडे हुए। वे बडे प्रतापी एव योद्धा थे। जब प्रजा भूखे मरने लगी तो ऋषभदेव ने इक्षु उगाने की विधि बतलाई। अपने ही वंश मे विवाह करने की उन्होने मनायी की। कुछ समय पश्चात् ऋषभदेव ने भरत को राज सम्हला कर वैराग्य धारण कर लिया।

स्वयम्बर की प्रथा

वाराणसी नगरी का अकपन राजा था उसे सब सेनापति कहते थे। उसके एक लडकी सुलोचना थी। वह भरत के पास आकर प्रार्थना कि उसकी लड़की विवाह योग्य हो गयी इसलिये उसके लिये कोई वर बतलाइये। भरत ने सोच समझ कर स्वयबर रचने के लिये कहा।

> वरमाला कन्यां कौ देहु, पुत्री निज इच्छा वर लेहु।
> ताही वरत कोऊ मानै बुरो, ताकौ मान मग सब करौ ॥४५॥२०॥

इस प्रकार स्वयबर प्रथा की नीव रखी गयी।

---

१. तृप्ति नही भखे एक बेर, जेवें दुपहर सांझ सबेर।
मध्यम वृष्टि मेघ सब करैं, धर्म विछिप्ति तहीं परवरे ॥४७॥१४॥

२. पुत्री काहू की आनिये, सुत काहूं को तहा बुलाय।
करे विवाह लगन शुभवार, इह विधि बढ़त चल्यौ ससार ॥११॥१६॥

वैराग्य

एक दिन राजसभा में ऋषभदेव सिंहासन पर बैठे थे। नीलांजसा अपसरा का नृत्य हो रहा था। कवि ने उसे नटी की संज्ञा दी है तथा आगे पातुरी कहा है। ये तत्कालीन शब्द थे जो राज्य सभाओं में नृत्य करने वाली के लिए प्रयुक्त किये जाते थे। अचानक नीलाजसा नृत्य करती हुई गिर गयी इससे प्रभु को वैराग्य हो गया वे बारह भावनाओं के माध्यम से ससार के स्वरूप पर विचार करने लगे। कोश मे इन भावनाओं बहुत ही उपयोगी एव विस्तृत वर्णन हुआ है। जो कवि की विषय वर्णन करने की शक्ति की ओर सकेत करता है।[1] ऋषभदेव के वैराग्य के समाचार सुनते ही स्वर्ग से लौकातिक देव तत्काल वहाँ आये और उनके वैराग्य भावना की प्रशसा करने लगे।

उसी समय ऋषभदेव ने भरत का राज्याभिषेक किया। बाहुबली को पोदनपुर का राज्य दिया तथा अपने दूसरे पुत्रो को भी उनकी इच्छानुसार राज्य बांट दिया। सब भाई भरत की सेवा मे रहने लगे। उस दिन चैत्र कृष्णा नवमी थी। ऋषभदेव ने एक विराट समारोह के मध्य वैराग्य धारण कर लिया। सब प्रकार के परिग्रह को त्याग कर वे निर्ग्रन्थ दिगम्बर हो गये। केश लुञ्चन किया। तथा सब प्रकार के पारवारिक एव अन्य सम्बन्धो से अपने आप को मुक्त करके पच महाव्रत धारण कर लिये।[2] परम दिगम्बर ऋषभदेव को स्वयमेव आठ प्रकार की ऋद्धियां प्राप्त हो गयी।[3] जिनके कारण उनको अपार शक्ति मिल गयी। कवि ने इन ऋद्धियों का विस्तार से वर्णन किया है। जैसे बीज बुद्धि ऋद्धि के उदय से एक पद पढने से अनेक पदों का ज्ञान हो जाना तथा एक श्लोक का अर्थ जानने से पूरा ग्रथ का ज्ञान स्वयमेव हो जाना बुद्धि ऋद्धि का फल होता है—

> बीज बुद्धि जब उदय कराइ, पढत एक पद श्री जिनराय।
> पद अनेक की प्रापति होय, यह था बुद्धि तनो फल जोइ।
> एक श्लोक अर्थ पद सुने, पूरण ग्रथ आपतें भनें ॥३१॥२७.

---

१ ए शुचि बारह भावना, जिन लें मुक्तिनि वास।
श्री जिनवर के चित्त मे, तब ही भयो प्रकाश ॥६॥२६ ॥

२. मडे पच महाव्रत घोर, त्यागौ सकल परिग्रह जोर ॥१४/१॥ २६॥

३. बुद्धि औषधी बल तप चार, रस विक्रिय क्षेत्र क्रिया सार ।१८॥२६॥

तप ऋद्धि के प्रसंग में श्रुतस्कंध व्रत वर्णन में आचार्य कुन्दकुन्द के पांच नामों की उत्पत्ति कथा, विदेह क्षेत्र गमन, भट्टारक पद स्थापन आदि का गद्य में अच्छा वर्णन दिया है।

कवि ने सभी कल्याणको के वर्णन का आधार जिनसेनाचार्य कृत आदिपुराण को बनाया है जिसका स्वय कवि ने उल्लेख किया है—

> अल्प बुद्धि बरणों सक्षेप, आदि पुराण मिटैं भ्रम बेपु।
> बारह विधि तपु कीनी ईश, जगत शिरोमनि श्री जगदीश ॥३८/५६

ज्ञान कल्याणक

ऋषभदेव को कैवल्य होते ही समोसरन की रचना की गयी। जिसका वर्णन कवि ने विस्तार से किया है। यद्यपि उसने अपने को अल्पबुद्धि लिखा है। लेकिन समवसरण का वर्णन उसने १७४ पद्यों मे लिखा है। ऋषभदेव ने अपना उपदेश मागधी भाषा मे दिया था।[1] सात तत्व एव नौ पदार्थो के विस्तृत परिचय के लिये कवि ने हेमराज कृत कर्मकांड, पचास्तिकाय ग्रंथों को देखने के लिये लिखा है।[2] इसके पश्चात् सात तत्व एव नव पदार्थ का विस्तृत वर्णन किया है—

> जीव अजीव और आश्रव सवर निर्जर बध।
> मोक्ष मिलें ए जानियें, सप्त तत्व सबध ॥१॥
> पुन्य पाप हैं ए जुदे, नव इनि मांहि मिलाइ।
> जिनवानी नव पद विमल, सो बरणो मुनि ताहि ॥२॥६३॥

जीव तत्व के वर्णन मे कवि ने सात प्रकार के समुद्घातो का वर्णन किया है।[3]ये हैं जीव वेदना समुद्घात्, कषाय समुद्घात, वैक्रियक समुद्घात, मरणांतिक समुद्-घात; तेजस समुद्घात, आहारक समुद्घात, केवल समुद्घात, इसके पश्चात् सात प्रकार के

१. मुख्य मागधी भाषा जानि, सबके सुनत होई दुख हानि ॥६६/६३.
२. जो कोई इनि सातनि को भेद, ब्यौरो चाहों जो तजि खेद।
कर्मकांड पंचसुकाय, हेमराज कृत खोजो मांहि ॥७४॥६३॥
३. समुद्घात हैं सात प्रकार तिनि के भेद सुनो तुम सार।२७॥६६॥

संयम स्थानों का वर्णन मिलता है।[1] दर्शन स्थान का वर्णन के पश्चात् छह लेश्याओं पर विस्तृत विचार किया गया है। कृष्ण, नील, कपोत, पीत पद्म और शुक्ल लेश्या को निम्न उदाहरण द्वारा समझाया है—

> सुनौ एक इनिको दृष्टांत, प्रकटै विमल बोध की कांत।
> गए पुरुष छह बनह मझार, आम्र वृक्ष फल देख्यो सार ॥२९॥
> सघन सुभग अरु बहु फल परयौ, जाकी छांह पथिक श्रम हरयौ।
> खेचट प्राणी ता तरजाइ, फल भक्षण की इछा आई ॥३०॥
> कृष्ण धनी कहैं जर काटिये, पीछें वांके फल बांटिये।
> तब बोल्यो अंग जाके नील, गोदें काटत करौ न ढील ॥३१॥
> या तरु की काटौ सब डारि, कहि कापोत धनी निर्द्धार।
> गुच्छा तोरि लेहु रे मीत, यौं भावै जाके उर प्रीति ॥३२॥
> बीन लेहु पके फल सबै, बोल्यौ पद्म धनी यह तबै।
> गिरि लेहु मति लाउ हाथ, कहैं सुकल वारौ गाथ ॥३३॥
> धरि षट लेस्यां स्वांग अनूप, नाचत फिरैं जीव चिद्रूप।
> काल अनादि गये इंहि भांति, आतम अनुभौ विना नसांत ॥३४॥७०

चौदह गुणस्थानों का भी वर्णन करके कवि ने चौदह जीव समासों का वर्णन किया है।[2] ये सब दार्शनिक वर्णन हैं जिसे कवि ने अपने ग्रंथ में स्थान दिया है। ऐसा लगता है कवि ने गोम्मटसार जीवकांड को अपने कथन का मुख्य आधार बनाया है।

पच परावर्तन, एवं जाति स्थानों के वर्णन के पश्चात् कवि चार प्रकार के ध्यानों का वर्णन प्रारम्भ करता है।

---

१. संजम और असजम जानि, छेदोपस्थापन परमान।
जथाख्यात सामायिक अंग, सूक्ष्म सांपराय गुण चंग
परिहार विशुद्धि कहौं संजमा, सातौं स्वांग धरै आतमा। ८२॥६८॥

२. एई चौदह जीव समास, करै आतमा तहां निवास।
जो लौ ससारी कहवाइ, तोलौं इनमें भ्रमन कराइ ॥१०१॥७३॥

ध्यान का स्वरूप

रौद्र ध्यान वाला प्राणी हिंसा करने मे आनन्दित होता है, चोरी करता है, झूंठ बोल कर प्रसन्न होता है । विषयो के सेवन मे अपना कल्याण मानता है । ये चारों रौद्र ध्यान के अंग है ।[1] पृथ्वी, अग्नि, वायु, जलतत्वो का भी प्रस्तुत ग्रंथ में वर्णन हुआ है ।

पिंडस्थान ध्यान पदस्थ ध्यान मोक्ष मार्ग का साधक है । कवि ने पदस्थ ध्यान का वर्णन विभिन्न मंत्रो के साथ किया है । इन मत्रो मे ह्रींकार मत्र, अपराजितमत्र[2], षोडशाक्षर मत्र[3], षडाक्षरीमत्र[4], चतुवर्णमंत्र[5], बीजाक्षरमंत्र[6], चत्तारिमगलमत्र[7], त्रयोदशाक्षरमत्र[8], सप्ताक्षरमत्र[9], पचाक्षरमंत्र[10],

---

१. हिंसा करत चित्त आनंद, चोरी साधत हिए ननद ।
बोलत झूंठ खुशी बहु होइ, सेवत विषय हुलासी जोइ ।
रौद्र ध्यान के चारचौं अंग, कर्म बंध के हेतु अभग ।।६६।७६.

२. एक शत आठ वार जो जपें, प्रभुता करि सब जग मे दिपे ।
एक उपास जुतौ फल होइ, कर्म कालिमा डारे खोइ ।।४३।।८०।।

३. अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः
करि एकाग्र चित्त धरि प्रीति, होइ उपवास तनों फल मीत ।।४६।।

४. अरहंत सिद्ध इति षडाक्षरी मत्र

५. अरहत इति चतुर्वर्णमत्र

६. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः ह्रौं ह्रः असि आऊसा नमः इति बीजाक्षर मत्र ।

७. मगल सरण लोकतम जानि, चारि भांति करि कीयौ बखान ।
ध्यावे अर्पे चित्त की ठोर, ताकौ मुक्ति रमणि वरें दोरि ।।५४।।८०

८. ॐ अरहंत सिद्धासयोग केवली स्वाहा । इति त्रयोदशाक्षर मंत्र ।

९. ॐ ह्रीं श्रीं अर्हन्नमः । इति सप्ताक्षर मंत्र ।

१०. नमो सिद्धाण

चन्द्ररेखामंत्र[1], श्रीवर्णमंत्र[2], पापभक्षिणी विद्या मंत्र, असि आउसा मंत्र, सिद्ध मंत्र आदि का अच्छा वर्णन मिलता है। जान पड़ता है कवि मंत्र शास्त्र के भी अच्छे ज्ञाता थे।

कवि ने रूपस्थध्यान एवं रूपातीत ध्यान[3], का भी वर्णन किया है।

ध्यान का वर्णन करने के पश्चात् कवि ने जीव की विभिन्न जातियों की संख्या का वर्णन किया है।

> नर पशु नारक अौ सुरदेव, लाख चौरासी जाति कहेव।
> इतने रूप चिदानद धरें, जाति स्थान नाम परि वरें ॥१८/८३.

षट् द्रव्य वर्णन

अजीव तत्व पुदगल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इस प्रकार पांच प्रकार का है। पुद्गल द्रव्य मूर्तिक तथा शेष अमूर्तिक हैं।[4] शब्द भी पुद्गल द्रव्य का ही एक पर्याय है तथा वह मूर्तिक है[5] इसके पश्चात् कवि ने शेष द्रव्यों का संक्षिप्त वर्णन किया है।

षट् द्रव्यो का वर्णन के पश्चात् आठ कर्मों की प्रकृतियों का वर्णन किया गया

---

१. ॐ नमो अरहंताण इति मत्र ,

२. ॐ ह्रीं ऽ श्री वर्णमंत्र:
राज रहित इंद्री रहित सकल कर्म नसाइ।
जीन तनी बिश्राम यह, रूपातीत कहाइ ॥१५॥८३.

३ इह रूपस्थ अनूप गुण जिन सम आतम ध्यान।
करि यांको अभ्यास मुनि, पावै पद निरबान ॥४॥ ८३

४. पुदगल धर्माधर्म आकास, काल मिलें पाचौ परकार।
है अजीव इनिकौ नाम, तिनि मे मूरति पुदगल धांम ॥४४/८४॥

५. सुनि पुदगल के सकल पर्याय, प्रथम शब्द भाष्यो जिनराज।
शबद कहे वरण तम रूप, पुदगल की पर्याय अनूप ॥४६/८४॥

है। जैन दर्शन कर्म प्रधान दर्शन है। जैसा यह जीव कर्म करता है उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय के भेद से आठ प्रकार के एव प्रकृतियो सहित १४८ भेद है। इसके पश्चात् प्रकृतियों के गुणों का विस्तृत वर्णन मिलता है जिसमे कवि में अगाध सैद्धान्तिक ज्ञान होने का प्रमाण मिलता है। प्रचला दर्शनावरण प्रकृति का लक्षण देखिये—

> प्राणी जहां नीद बसि आइ, महा चंचल हाथरु पाइ।
> नेत्र गात्र सब वैक्रिय होइ, मानो भार सिर ओइ ॥४७॥
>
> करें नींद जब लहि विशेष, तब द्रग रेत भरे से देखि।
> मुद्रित मुकुलित आवें आध, प्रचला दरशनावरण अगाध ॥४८/६०॥

प्रकृति गुणो के विस्तृत वर्णन के पश्चात् कवि ने चौदह गुणस्थानों की प्रकृति भेदों का वर्णन किया है।

सात तत्वों का स्वरूप

सात तत्वो मे जीव, अजीव, आस्रव, बंध सवर, निर्जरा और मोक्ष तत्व गिने जाते हैं। जीव, अजीव तत्व का तो पहिले विस्तृत वर्णन किया जा चुका है इसलिये कवि ने आस्रव तत्व का विभिन्न दृष्टियो से व्याख्या की हैं। हास्य प्रकृति आश्रव के निम्न क्रियाओं के कारण होता है—

> धर्मी जन अरु दीन निहार, तारी दे तहां हंसे गंवार।
> मदन हास्य अरु करै प्रलाप, धर्म जज्ञ लखि लोचनराय ॥२५॥
>
> इन तें हास्य प्रकृति जु बधाइ, कही प्रगट श्री गौतमराय।
> बैठें देखे नर तिय सग, मिथ्याचार लगावें नग ॥२६/१०७॥

मनुष्य जीवन कब किसे मिलता है यह एक विचारणीय प्रश्न है जिसका कवि ने निम्न प्रकार समाधान दिया है—

> स्वल्पारंभ परिग्रह जांन, भद्र प्रकृतियां चारि मांनि।
> करुणा धनी आर्य परिणाम, धुलि रेख सम दीसे ताम ॥४८॥
>
> पर दोषी न कुकर्म हि करें, मधुर वचन मुख तें उचरें।
> कानन सून्यो होइ जो दोष, भूलनि कबहू भावें दोष ॥४६॥

देव गुरुनि कौ पूजे सदा, निसि भोजन मांकै नहीं कदा ।
शुभ ध्यानी लेश्या कापोत, बंध मनुष्य आयु को होत ।।५०/१०८।।

इस प्रकार कवि ने दार्शनिक एवं सैद्धान्तिक वर्णन भगवान ऋषभदेव के ज्ञान कल्याणक के अन्तर्गत किया है । निर्वाण कल्याणक वर्णन मे कवि ने दान की उपयोगिता पर विस्तृत प्रकाश डाला है । दान भी पात्र कुपात्र देखकर दिया जाना चाहिये । कुपात्र को दिया हुआ दान निष्फल जाता है । कवि के अनुसार साधु को दिया हुआ भोजन (आहार) उत्तम दान है । साधर्मी जनों को दिया हुआ दान मध्यम दाना है हिंसक जनों को दिया हुआ दान तो एक दम व्यर्थ है । जिस प्रकार किसान भूमि की उपज देख कर उसमें बीज डालता है उसी प्रकार दान देते समय पात्र कुपात्र का ध्यान रखा जाना चाहिये ।

जो किसान खेती के हेत, कल्लर भूमि रही चित देत ।
दान जु पात्र तनें अनुसार, पात्र समान फल है बहुसार ।। ७८ ।। ११३

सम्राट भरत ने ब्राह्मण वर्ण की स्थापना की थी । कवि ने उनमे पाये जाने वाले ९ प्रकार के गुणों का वर्णन किया है । उनमे से आठवां एवं नवां गुण निम्न प्रकार है—

अल्पाहारी चित सतोषी, दुष्ट वचन सुनि नहि जिय रोष ।
आशीर्वाद परायन जानि, अष्टम गुण द्विज को यह जांनि ।।९३।।
शुभोपयोगी विद्यावान, आतम अनुभव करण प्रधान ।
परम ब्रह्म को ध्यान कराइ, ए ब्राह्मण के नव गुण कहिवाइ ।।९४/११४

जब तक भरत रहे तब तक वे इन गुणो से युक्त रहे लेकिन बाद मे उनमे भी शिथिलता आती गयी ।

चक्रवर्त्ति के चौदह रत्न

कवि ने चौदह प्रकार के रत्नों के नाम गिनाये हैं । जो निम्न प्रकार हैं—

सेनापति अरु स्थपित बखांन, हर्मपती अरु गज अश्व प्रधान ।
नारी चर्म चक्र काकिनी, छत्र परोहित मनि तहां गनी ।।८३।।

षडग दंड मिलि चौदह भए, इनि के भेद सुनौ अब जए।
सेनापति अैसो गुन लेत, नव प्रकार सैन्या सज देत ।।८४/१२६।।

उक्त चौदह रत्न चक्रवर्ती के ही होते हैं अन्य किसी राजा को यह सौभाग्य प्राप्त नहीं होता। कवि ने इन सभी का विस्तृत वर्णन किया है। अन्त मे लिखा है—

चक्री पुण्य प्रताप बल, चौदह रत्न अनूप।
औरन काहू कौं मिलें, मिलें अनेक जग भूप ।।१७।। १२७।।

गौतम द्वारा महावीर का अनुयायी बनाना

कवि ने चौरासी बोल, श्वेताम्बर मत उत्पत्ति वर्णन, आदि पर भी विस्तृत प्रकाश डाला है। इसके पश्चात् कवि एक दम महावीर के समवसरण मे पहुँच जाता है। कैवल्य होने पर भी जब भगवान की दिव्य ध्वनि नहीं खिरती है तो इन्द्र को बड़ी चिन्ता होती है और वह एक वृद्ध के रूप में गौतम ऋषि के पास पहुँचता है। वह उससे "त्रैकाल्य द्रव्य षटक" श्लोक का अर्थ समझना चाहता है लेकिन जब अर्थ समझ मे नहीं आता है तो वह अपने शिष्यो के साथ महावीर के समवसरण मे आता है। समवसरण मे लगे हुए मानस्थभ को देखते ही गौतम को वास्तविक ज्ञान उत्पन्न हो जाता है और वह महावीर की निम्न प्रकार स्तुति करने लगता है।

गौतम नम्यौ चरन अष्टाग, लागौ जिन स्तुति पढन अभग।
दीन दयाल कृपा निधि ईस, कर पकज नाऊ शीस ।।१४/१३८।।

गौतम को तत्काल मन.पर्यय ज्ञान की प्राप्ति हो गयी। वह महावीर के शिष्यो में प्रमुख शिष्य हो गया।[1]

उसी समय मगध का सम्राट श्रेणिक रानी चेलना के साथ वहां आया। श्रेणिक बौद्धधर्म का अनुयायी था लेकिन चेलना महावीर की परम भक्त थी। समवसरण मे आने के पश्चात् भगवान महावीर ने उसके पूर्व भवों का वृतान्त विस्तार के साथ सुनाया।

---

१. तब गौतम मुनिराज सरेष्ठ, सकल गनि मध्य भए बरेष्ठ ।।१६/१३८

ता धरनी चेलना अनूप, जाके रत्न सम्यक्त स्वरूप ।
तब सुनि श्रेनक नृप की कथा, श्री गुरु मुख तैं भाषी जु जथा ।

श्रेणिक द्वारा जैनधर्म स्वीकार करने की कथा

पूरी कथा मे राजा श्रेणिक चेलना के आग्रह से किस प्रकार जैनधर्म का अनुयायी बना इसका भी वर्णन दिया हुआ है । सर्व प्रथम राजा श्रेणिक ने बौद्धधर्म की प्रशसा की तथा जैनधर्म के प्रति अपने विचार प्रगट किये ।[1] चेलना के कहने से राजा ने पहिले बौद्ध साधु को बुलाया और विभिन्न प्रकार से उसकी परीक्षा ली । फिर जैन साधु की चेलना ने परिगाहना की । परीक्षा मे जैन साधु द्वारा खरा उतरने पर राजा श्रेणिक ने जैनधर्म स्वीकार कर लिया ।

सुनि श्रेनिक संसे उडि गई, दृढ प्रतीति जिनमत पर भई ।
तब रानी कियो अंगीकार, धन्य सुबुद्धि पवित्र अवतार ।।३०।।

निज पति कौ तिन कीनौं जैन, बोध तनो उर तें गयो फैन ।
वा मत वसि गयौ पहिलेंक्ख कहि न सकै
नहिं जहा दुख केतें सक्कं ।।३१।। १४३ ।।

राजा श्रेणिक ने भगवान महावीर से साठ हजार प्रश्न किये और उनका समाधान भी सुना ।[2] अन्त मे अषाढ सुदी १४ को सभी मुनिजनो ने योग धारण किया तथा कार्तिक सुदी १४ तक योग धारण किये रहे । लेकिन कार्तिक बुदी अमावस्या की रात्रि को जब प्रभात काल मे चार घडी रही थी तब भगवान महावीर ने निर्वाण प्राप्त किया ।

कातिग वदि मावसक रीति, चार घडी जब रह्यौ प्रभात ।।५।।

---

१. जैन कहां जांको उरधरे, तहां न कोऊ क्रिया आचरे ।
बोध तनैं गुरु दीन दयाल, जैन जती निरधन वे हाल ।।
अशुचि अपावन बोध विहीन, कौन अ ग निर्मे परवीन । ७६ ।। १४०।।

२. राजा श्रेनक चरित मे, कह्यौ सक्षेप सुनाइ ।
अति हितकारी भाव कौ, परमत नहीं सहाइ ।।१।। १४३ ।।

श्री जिन महावीर तीर्थेश, पंचम गति को कीयो प्रवेश ।
मुक्ति सिद्ध सिला पर सिद्ध सरुप, परमातम भए चिदरुप ॥६॥

महावीर सघ के शेष मुनि गणो ने चतुर्मास पूर्ण किया ।[1]

इसके पश्चात् कवि ने काष्ठा सघ की उत्पत्ति की कथा लिखी है जो ४० दोहा चौपाई छन्दो में पूर्ण होती है ।

लोहाचार्य वर्णन

आचार्य गुप्ता गुप्त के भद्रबाहु शिष्य थे । उनके पट्ट शिष्य माघनन्दि मुनि थे । आचार्य कुन्दकुन्द उनके पट्ट शिष्य थे । तत्वार्थसूत्र के रचयिता उमास्वाति आचार्य कुन्दकुन्द के शिष्य थे । उमास्वाति के पट्ट शिष्य थे लोहाचार्य जिन्होने काष्टासघ की स्थापना की थी । लोहाचार्य विद्या के भण्डार एवं सरस्वती के साक्षात् अवतार थे । उनके एक बार शरीर मे ऐसा रोग हो गया कि मरने की स्थिति आ गयी । वायु पित्त एव कफ तीनो का जोर हो गया । तब उनके उसी भव के श्री गुरु स्नेहवश वहां आये । उन्होने उनको सन्यास (समाधि मरण) दे दिया क्योकि जीने की तनिक भी आशा नही रही थी । लेकिन शरीर की व्याधिया स्वत. ही धीरे धीरे कम होने लगी और वे स्वस्थ हो गये । भूख प्यास लगने लगी । तब उन्होने अपने गुरु से विशेष आज्ञा मागी । श्री गुरु ने कहा कि

श्री गुरु कहे न आग्या आन, करि सन्यास मरण बुधिवान ।
ज्यौ आगे परमादी जीव, प्रतिपाले जो व्रत जोग सदीव ॥२३॥

लोहाचार्य ने गुरु की बात पर कोई ध्यान नही दिया और अन्न जल ग्रहण कर लिया । गुरु ने उनको अपने गच्छ से निकाल दिया और दूसरे किसी साधु को पट्टाधीश बना दिया । लोहाचार्य ने गुरु के इस विरोध पर गम्भीरता पूर्वक चिन्तन किया और अन्त मे गुरु को छोडकर अन्यत्र बिहार कर दिया । उस समय विक्रम सवत सात सौ ७६० था ।[2]

---

१. जो हो इनिसो कहो प्रकार, पूरौ करौ जाइ चोमास ।
मति उर यो व्रत भंग जु भयौ, तुम प्रभु के हित हो चित दियो ॥१३॥

२ लोहाचारज सोचि विचार, गुरु तजि कीयौ देश बिहार ।
सवत त्रेपन सात से सात, विक्रम राय तनो विख्यात ॥ २५॥१४४॥

लोहाचार्य अगरोहा ग्राम आये। जो नंदीवर गांव के नाम से विख्यात था।

अगरोहा ग्राम में अग्रवालों की बस्ती थी। वे धनाढ्य थे तथा दूसरे धर्म को मानने वाले थे। दूसरे धर्म की परवाह नहीं करते थे। उनकी उत्पत्ति के बारे में कवि ने निम्न प्रकार वर्णन किया है—

अग्रवाल जैन जाति की उत्पत्ति

अगर नाम के ऋषि थे जो तपस्वी थे वनवासी थे तथा जिनकी माता ब्राह्मणी थी। एक दिन जब वे ध्यानस्थ थे तो किसी नारी का शब्द उनके कानों में पड़ा। नारी का शब्द सुनकर ऋषि कामातुर हो गये। शब्द बड़े मधुर एवं ललित थे तथा उसका स्वर कोकिल कंठी था। ऋषि का ध्यान छूट गया तथा वह उसका सौन्दर्य निरखने लगे।[1] उस नारी ने कहा कि वह नाग कन्या है इसलिये यदि ऋषि को काम सता रहा है तो वह उसके पिता से बात करे। वह ऋषि का रूप देखकर कन्या दान कर देंगे। यह सुनकर ऋषि खड़े हो गये और नाग लोक को चले गये। नागिनी ने ऋषि तपस्वी को बहुत आदर दिया। ऋषि ने नाग कन्या के पिता से प्रार्थना की कि वह अपनी कन्या का उसके साथ विवाह कर दे। नाग ने ऋषि की बात मान कर अपनी कन्या उसे दे दी। ऋषि कन्या को अपने साथ ले आया। उससे १८ लड़के हुए जिनमें गर्ग आदि के नाम उल्लेखनीय है। उनकी वंश वृद्धि होती गयी

---

१. अगर नाम रिष हें तप धनी, वनवासी माता बाभनि।
एक दिवस बैठें धरि ध्यान, नारी सब्द परयौ तब कांन ।।१२।।

मधुर वचन और ललित अपार, मानों कोकिलां कंठ उचार।
छुटि गयी रिष ध्यान अनूप, लागे निरिखिन नारी रूप ।।१३।।

२. तब ऋषिराय प्रार्थना करी, तब कन्या हसि जिय में धरी।
अब तुम दे हमे करी दान, ज्यों संतोष लहै मम प्रान ।।१७।।

नाग दई तब कन्यां वांहि, कर गहि अगर ले गए ताहि।
ताके सुत अष्टादस भये, गर्ग आदि सुत में बरनए ।।१८।।१४५।।

और उनको अगरवाल कहा जाने लगा। उनके १८ गोत्र हो गये जो ऋषि के पुत्रों के नाम से प्रसिद्ध हो गये।[1]

एक बार पुरवासियों ने सुना कि कोई मुनि आये हुये हैं और वे नगर के बाहर ही उतरे हुये हैं। नगरवासी उन्हे साधु जानकर भोजन हेतु प्रार्थना करने गये। मुनि ने नागरिको से कहा कि वह तपस्वी है इसलिए यदि कोई श्रावक धर्म के पालन करने की प्रतिज्ञा लेवे तथा जिसे अन्य धर्म अच्छा नहीं लगता हो तो वह उन्हें आदरपूर्वक अपने घर ले जा सकता है। उसके घर पर वे भोजन करेंगे। मुनि के वाक्य सुनकर सभी नागरिक विस्मय करने लगे तथा आपस मे चर्चा करने लगे कि ये कैसे मुनि हैं जो भोजन देने पर भी भोजन ग्रहण नहीं करते।[2]

मुनि के प्रभाव से कुछ लोग जिनधर्मी बन गये और मुनि के चरणो मे आकर वन्दना करने लगे। गुरु के उपदेश से धर्म का मर्म समझ लिया। उसके पश्चात् मुनि ने नगर प्रवेश किया। नव दीक्षित जैनो ने मुनि को भली प्रकार आहार दिया और अनेक प्रकार के उत्सव करने लगे। मुनि श्री ने उनको प्रतिबोधित किया और इस प्रकार अग्रवाल जैन बने। प्रारम्भ मे वे केवल ७०० घर थे। वही जिन मन्दिर का निर्माण कराया गया और उसमे काष्ठ की प्रतिमा विराजमान कर दी। दूसरे ही पूजा पाठ बना लिये जो गुरु विरोधी थे। यह बात चलती चलती भट्टारक उमास्वामी के पास आयी। बात सुनकर मुनि को खूब चिन्ता हुई कि काष्ठ की

१　तिनि को वंश बढयो असराल, ते सब कहिये अगरवाल।
　उनके सब अष्टादश गोत, भए रिषि सुत नाम के उदोत ॥१९॥

२.　तिनि सुन्यौ एक आयौ मुनि, पुर के निकट उतर्‌यौ गुनी।
　भिक्षुक जांनि सकल जन नए, भोजन हेत बिनवत भए ॥२०॥

　तब मुनि कहें सुनौं धरि प्रीति हम तपसीन की ऐसी रीति।
　जो कोऊ श्रावक धर्म कराइ, मिथ्यामत जाको न सुहाइ ॥२१॥

　सो अपने घरि आदर करें, ले करि जाइ दया तब धरें।
　और ग्रेह नहीं आहार, यह हम रीति सुनी निर्द्धार ॥२२॥ १४५ ॥

प्रतिमा बनाने की नयी परम्परा डाल दी। लेकिन जैनधर्म में दूसरों को दीक्षित करने की जब बात मालूम पड़ी तो उन्हें सन्तोष हुआ और वे भी वहीं आ गये जहाँ मुनि श्री लोहाचार्य थे।[1] जब उन्होंने भट्टारक उमास्वामी के आने की बात सुनी तो उन्हें वे लिवाने गये और बड़े उत्साह से उनका स्वागत किया।

लोहाचार्य ने उमास्वामी को चरण पकड़ लिये। मुनिराज ने आनन्दित होकर लोहाचार्य को उठा लिया और उनको चरणों से उठाकर अपने पास पर बिठा लिया। सभी नागरवासियो ने उमास्वामी की वन्दना की और उन्हों ने सबको धर्म वृद्धि देते हुए आशीर्वाद दिया। उनकी अगवानी करके नगर में उसी मन्दिर में लाये जिसमें काष्ठ की प्रतिमा विराजमान थी। उमास्वामी से जब नगरवासियों ने उनसे आहार ग्रहण करने की प्रार्थना की तो वे कहने लगे कि जो उन्हें भिक्षा देना चाहेगा तो आचार्यश्री को उनकी बात माननी पड़ेगी। लोहाचार्य तत्काल विनय पूर्वक आज्ञा देने के लिये प्रार्थना करने लगे जिससे उनका जीवन धन्य हो सके।

उमास्वामी ने कहा कि वे सब शिष्यो मे सपूत हैं जो मिथ्यात्व का खंडन करने वाले एवं जैनधर्म का पोषण करने वाले हैं।तथा जिन्होने जैनधर्म में वृद्धि की है। लेकिन एक शिक्षा वे उनकी भी माने और भविष्य कि काष्ठ की प्रतिमाविराजमान करना बन्द

---

१ चली बात चलि आई तहा, उमास्वामी भट्टारक जहां।
मुनि जिय चिन्ता भई अगाध, करी काठ की नई उपाधि ॥२८॥
आवत सुनि श्री निज गुरु भले, आगे होंन आचारज चले।
जीतै सकल नगर जन संग, बाजन प्रति बाजे मनरंग ॥२६॥

२. तब मुनि कहे सुनो गुन जूत, शिष्यन में तुम भये सपूत।
परमत भंजन पोषन जैन, धर्म बढायो जीत्यो मेन ॥३४॥
वही सीख हमरे करि धरो, काठ तनी प्रतिमा मति करो।

३. तबतें काष्ठ संघ परवरयो, मूलसंघ न्यारो विस्तर्यो।
एक चना कीज्यौ द्वै दारि, त्यौ ए दोऊ संघ विचार ॥३५॥

करें। क्योंकि काष्ठ, अग्नि, जल लेप, आदि से विकृत होसकती है। लोहचार्य ने अपने गुरु की बात मान ली। उन्होने उनके हाथ से सुरही के बाल वाली पिच्छी ग्रहण की। दोनों गुरु शिष्य प्रसन्न होकर उठे। उसी समय से लोहाचार्य का सघ काष्ठा सघ कहलाने लगा। और वह मूलसघ से पृथक माना जाने लगा यह कोई नया सघ नही है। सघ मे जैनधर्म के प्रतिपादित सिद्धान्तो का पालन होता है।

काष्ठासघ की उत्पत्ति का इतिहास कहने के पश्चात् कवि ने भक्तामरस्तोत्र एकीभावस्तोत्र, भूपालस्तोत्र, विषापहारस्तोत्र एव कल्याणमन्दिरस्तोत्र के रचे जाने की कथायें लिखी हैं। कवि के कथा कहने का ढग बडा ही आकर्षक है।

जैसवाल जाति का इतिहास

कल्याणमन्दिरस्तोत्र कथा समाप्ति के पश्चात् कवि ने ईक्ष्वाकु वशीय जैसवाल जाति का इतिहास कहने की भावना व्यक्त की है।

जैसवाल इक्ष्वाकु कुल, तिनि कौ सुनौ प्रबन्ध

ऋषभदेव तीर्थंकर ने गृह त्याग करने से पूर्व महाराजा भरत को अयोध्या तथा बाहुबली को पोदनपुर का राज्य दिया तथा शेष पुत्रो को उनकी इच्छानुसार राज्य शासन सौंप दिया। उन्ही मे से एक पुत्र शक्ति कुवर जैसलमेर चल कर आये और जैसलमेर मण्डल का शांतिपूर्वक राज्य करने लगे।[1] उनका वश बढने लगा तथा जैन धर्म की वृद्धि होने लगी। कुछ समय पश्चात् उन्ही के वश मे एक राजा ने जैनधर्म छोडकर अन्य मत की साधना करने लगा। शुभ कर्म घटने लगे तथा पृथ्वी पाप बढने लगे। एक दिन दूसरे राजा ने राज्य पर चढ़ाई कर दी जिससे सब राज्य चला गया। लेकिन प्रजा ने उसे अपने यहा रख लिया। राज्य से वञ्चित होने के

१. श्री जिगदेव ऋषभ महाराज, जब बाटयौ सब महि कौ राज
अवधिपुरी दई भरथ नरेस, बाहुबलि पोदनपुर देश ।।१।।
और सुतन जो मांग्यौ ठांम, श्री प्रभु ते दयौ अभिराम ।
कुवर शक्ति जिन बाट नरेस, चलि आए जहां जैसलमेर ।।२।।
ते मंडल कौ साधे राज, सुख साता के सबै समाज ।
तिनि को ठांम बढयौ असराल, जैनधर्म पालै महिपाल ।।३।।

पश्चात् किसी ने खेती करना प्रारम्भ कर दिया तथा किसी ने चाकरी-नौकरी करली। इस प्रकार बहुत समय व्यतीत हो गया और वहाँ जैनधर्म का प्रचलन बन्द हो गया।

२४ वें तीर्थंकर महावीर को जब कैवल्य हुआ तो इन्द्र ने समवसरण की रचना की। प्रचण्ड पुण्य के धारी सुर असुरो ने समवसरण को आर्यखण्ड में घुमाया और एक बार भगवान महावीर का समवसरण जैसलमेर के वन में आ गया। समवसरण के प्रभाव से सब ऋतुओ में फूल खिल गये। वनमाली ने राजा के पास आकर तीर्थंकर महावीर के समवसरण के आने का समाचार दिया। तत्काल राजा भी अत्यधिक प्रसन्नतापूर्वक महावीर की वन्दना के लिए अपने परिवार एव नगरवासियो के साथ चल दिया।[1]

राजा ने विनयपूर्वक महावीर की वन्दना की तथा मनुष्यो के प्रकोष्ठ मे आकर बैठ गया। उसने महावीर भगवान से निवेदन किया कि "हमारे देश मे एक बात प्रसिद्ध है कि "हम पर देवताओ की कृपा है तब फिर उनके हाथ से राज्य कैसे निकल गया"।[2] इसका उत्तर महावीर के प्रमुख शिष्य(गणधर) गौतम स्वामी ने दिया। उन्होने कहा कि उनके पूर्वजो ने जैनधर्म छोड दिया था इसलिए यह सब कुछ हुआ। यदि फिर वे जैनधर्म स्वीकार करलें तो उनके सकट दूर हो सकते हैं। गौतम गणधर की वाणी सुनकर वहाँ उपस्थित सभी चार हजार स्त्री पुरुषो ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया। सबने मिलकर नियम किया कि वे भविष्य मे जैनधर्म का

---

१ महावीर प्रभु प्रकट्यौ ज्ञान, रची सभा सब अमरनि आन ।।७।।
सकल सुरासुर पुन्य प्रचड, ताहि लें फिरें आरज खंड
खड सकल परस्यौं चौ फेर, चलि आये जहाँ जैसलमेर ।।८।।

२ सुनि राजा चल्यौ वंदन हेत, मान रहित पुरलोक समेत।
प्रथम नमें श्री जिनवर राइ, पुनि नर कोठें बैठे आइ ।।१०।।
पूछत श्री प्रभु कौ बात, जो ए बात बड विख्यात।
यहों कृपा करि सुर महाराज, छूट्यौ क्यों हमतें भुवराज ।।११।।

का आदर करेंगे[1]। उन्ही व्यक्तियो से अपना व्यवहार, खान पान एवं विवाह सम्बन्ध रखा जायेगा। इनको छोड़कर जो अन्यत्र जावेंगे वे सब दोष के भागी होंगे। इस प्रकार वे सभी पुन. अपने धर्म को ग्रहण करके जैसलमेर नगर मे आ गये और भगवान महावीर का समवसरण भी मगध देश के राजगृही स्थित पच पहाड़ी पर चला गया।

उसी समय से वे सब जैसवाल कहलाने लगे। उनके मन से मिथ्यात्व दूर हो गया। नगर में मन्दिरों का निर्माण कराया गया और वे उत्साह पूर्वक जिन पूजन आदि करने लगे। चतुर्विध संघ को दान आदि दिया जाने लगा। प्रतिदिन पुराणो की स्वाध्याय होने लगी। जो लोग पहिले दरिद्रता से पीडित थे वे सब धन सम्पत्तिवान बन गये। सब के घरो में लक्ष्मी ने वास कर लिया। और वे सब भी अन्य कार्य छोड़कर व्यापार करने लगे।

कुछ समय पश्चात् एक श्रावक की कन्या विवाह योग्य हो गयी। वह अत्यधिक रुपवती थी इसलिय सारे नगर मे उसकी चर्चा होने लगी। सभी उसके साथ विवाह करने के लिये प्रस्ताव भेजने लगे। वहां के राजा ने भी उसके साथ विवाह करने का प्रस्ताव भेज दिया। राजा के प्रस्ताव से सभी को आश्चर्य हुआ। जैसवाल जैन समाज के पंचो की सभा हुई। सभा मे यह निर्णय लिया गया कि वे जैनधर्मावलम्बी हैं इसलिये विवाह सम्बन्ध भी उसी जाति मे होना चाहिये।[2]

पंचो का निर्णय राजा के पास भेज दिया गया। इस पर राजा ने उन सबसे जैसलमेर छोडने एव राज्य की सीमा से बाहर निकल जाने का आदेश निकाल दिया। उन्होंने भी राजा का आदेश मान लिया और बाध्य होकर जैसलमेर

---

१ तब बोलें गोतम बलराइ, जैनधर्म त्यागे रे भाइ।
जो वह फेरि आदरौ धर्म, बिहुर जाइ तुम तें दुखकर्म ॥१२॥१५३॥

२. सुनत सबनि के बिसमय भई, कौन बुद्धि राजा यह ठई।
पंच सकल जुरि ....अब हम जैनधर्म व्रत लियौ ॥२०॥
अवर जाति सौ रह्यौ न काज, खांन पान अरु सगपन साज।

नगर को छोड़ दिया इतने बड़े समूह को देख कर अन्य ग्राम एवं नगर वाले आश्चर्य करते और प्रश्न करने लगते कि यह विशाल संघ कहा से आया है तथा किस कारण से अपना देश छोड़ कर आगे जा रहा है। वे सभी कट्टर थे लेकिन अहिंसक प्रवृत्ति के थे इसलिये शान्तिपूर्वक निम्न उत्तर दिया करते थे—

कौन देश तें आयो संघ, कौन जाति कहौ कारण चंग।
उत्तर देई सबें गुणमाल, बंश इक्ष्वाक और जेसवाल ॥२४॥१५३॥
जेसवाल तही ते जानि, जेसवाल कहित परवान।

जैसलमेर से चलते चलते अन्त मे वे त्रिभुवनगिरि-तिहुगिरी-नगरी आये। चतुर्मास आ गया था इसलिये उन सबको वहाँ नगरी के बाहर बन में ही ठहरना पड़ा।[1]

कुछ समय पश्चात् वहाँ का राजा जब वन क्रीडा के लिये आया और उसने इतने बड़े संघ को देखा तो उसने अपने मन्त्री को पूछने के लिये भेजा तथा वापिस आकर मंत्री ने राजा को पूरा विवरण सुना दिया। राजा ने अपने ही मंत्री से फिर कहा कि ये लोग उससे आकर क्यो नही मिलते। इस पर मन्त्री ने फिर निवेदन किया कि इनको अपनी जाति पर बडा गर्व है और यही जैसलमेर से निकलने का कारण है। पूरा वृतात जान कर राजा को भी क्रोध आगया तथा उसने अपनी मूछों पर हाथ फेरा और वापिस नगर में चला गया।[2]

राजा की यह सब क्रिया वहाँ एक बालक देख रहा था जो अपने साथियों के साथ वही था। वह बुद्धिमान था इसलिये वह राजा के मनोगत भावों को पहिचान कर तत्काल अपने घर आया और राजा की बात सबको कह दी तथा कहा

---

१. **चले चले आए सब जहां, हुती तिहुगिरी नगरी जहां।**
ता पुर निकट हुतो बन चग, उतर्‌यौ तहां जाइ वह संग।
पाये यह जहां चातुर मास, सकल संघ उहां कियौ निवास ॥२६॥१५४॥

२. **सचिव कहें इनें गर्व अपार, याही तें नृप दिए निकार।**
सुनि राजा कर मूछनि धर्‌यौ, मन में रोस संघ परिकर्‌यौ ॥३१॥
मुखतें कछुन कर्‌यौ उचार, आए महिपति नगर मझार ॥३२॥१५४

कि उनको राजा से मिलना चाहिये नहीं तो मान भग हो जावेगा जो अनिष्ट कारक होगा।[1]

बालक की बात पर विश्वास करके वे तत्काल भेंट आदि लेकर चले और जाकर राजा से भेंट की और निम्न प्रकार निवेदन करने लगे—

पहु चे जाइ नृपति के द्वार भेंट धरि अब करयौ जुहार ।
राजा पूछै एको हेत, जिन में प्रीत तनौ उवेत ।।३६।।
सचिव कहें ए सब सुनौं भूपाल, हम चित नहीं सबै को साल ।
नृप अनीति त्यागो निज देश, चलि आये तुव शरण नरेश ।।३७।।
करी हुती जहां जिय मे चित्त बीतें भावब वरत पुनीत ।
देखें जाइ चरण प्रभू तनों, और मनोरथ चित के भनो ।।३८।।

सबने उसी नगर मे रहने के लिये राजा से एक भूमि खड माग लिया जिसमे सभी जैसवाल बन्धु रह सके। उन्होने यह भी कहा कि राजा के क्रोध के कारण ही उन्होने उनसे निवेदन किया है। राजा को आश्चर्य हुआ कि उसके मनोगत भावो को किसने ताड लिया क्योंकि उसने किसी से भी अपने मन की बात नही कही थी। तब सबने मिलकर इस प्रकार निवेदन किया—

तब सब मिलि नृप सों विनए, जा दिन तुम प्रभू क्रीडा वन गए ।
पूछी सकल हमारी बात, सचि कही जैसी इह तात ।।४२।
तहां एक बालक हमरो हुतौ, बुधिवांन क्रीडा सजुतौ ।
तिनि सब बात कही समझाय, वेगि मिलौ तुम नृप कौ जाई ।।४३।।
क्रोध कियें हम उपरि चित्त, मैं भाखी सबसौ सब सत्ति ।
या पर हम जिय मैं बहु सके, आए मिलिन महा भय थके ।।४४।।

राजा ने जब उक्त कथन सुना तो बालक को शीघ्र बुला का आदेश दिया गया। बालक जब आया तो उसकी सुन्दरता देखकर राजा बहुत प्रसन्न हो गया। राजा द्वारा मनोगत भावों की कहानी जानने पर बालक ने दोनों हाथ जोड कर निम्न प्रकार उत्तर दिया—

---

१ बालक सबसों भाखी बात, नृप कौ वेगि मिलौ तुम तात ।
नहीं तौ मानभंग तुम होइ, सत्यवचन मांनौ सब कोइ ।।३४।।१५४।।

बालक कहे उभय कर जोरि, जब प्रभु लिख कर मूंछ मरोरि।
जोग बिना मूंछ नहीं हाथि, यातें हम सबैं सरनाथ ॥४७॥

बालक का उत्तर सुनकर राजा ने प्रसन्न होकर उसे गले लगा लिया। इसके पश्चात् राजा ने सबको सम्मान सहित विदा किया। सबको रहने के लिये नगर में स्थान दिया गया। सभी लोग सुख पूर्वक रहने लगे।

कुछ समय पश्चात् राजा ने सभी जैसवाल जैनों से कहा कि वह अपनी लड़की उस बालक को देना चाहता है। वह उसकी बराबर सेवा करती रहेगी। लेकिन राजा के प्रस्ताव का सभी ने विरोध किया और ऐसी ही बात पर जैसलमेर छोड़ने की बात का स्मरण किया। राजा ने क्रोधित होकर बालक को पकड़ कर बुला लिया तथा उसके साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया। इसमें किसी की कुछ नहीं चली। लेकिन उस बालक ने राजा को अनीति के मार्ग पर जाते हुए देख कर अन्न जल का त्याग कर दिया तथा कह दिया कि जब तक वह अपने माता पिता को नही देख लेगा तब तक उसके हृदय मे शान्ति नहीं आवेगी। यही नहीं वह प्राण तज देगा। राजा उसका क्या बिगाड लेगा। राजा ने बालक के साथ किये गये कपट तथा बालक द्वारा किये जाने वाली अपयश पर भी विचार किया। राजा ने बालक के पूरे परिवार को गढ में बुला लिया। साथ ही उसके अन्य हितैषियो को भी उसी के साथ बुला कर गढ में बसा दिया। इस प्रकार दो हजार परिवार नीचे रह गये जो जिन वचनो के अनुसार चलते रहे। उन सबने मिल कर यह निर्णय लिया कि दोनो का (गढ मे रहने वालो का एव शहर मे रहने वालो का) परस्पर में मिलना कठिन है। न तो उनका कोई व्यक्ति हमारे पास आता है और न कोई हमारा व्यक्ति उनके पास जाता है।[1] उन्होने गुरु की शिक्षाओ का

---

१ तिन सब मिल यह ठहराव, मेंहनिसीं अब परम अभाव।
कोऊ हमरो उनिके नहीं आइ, उनिको इहां कोऊ घरें न पाइ ॥५७॥१५५॥

२. तब नृप सहित सकल परिवार, आए गढ नीचें सामार
बैठे जिन मन्दिर नृप आहि, सकल पंच तहां लए बुलाए ॥६१॥
बिनती करी जोरि के हाथ, सोई करो जो होइ एक साथ।
बगसौ चूक जु हम में परी, बड़ो सोइ जो चित्त न धरी ॥६२॥

उलंघन किया है। बालक के जाने से क्या हुआ। धर्म के बिना धन सम्पदा एवं जीवन सब व्यर्थ है। इस प्रकार बहुत सा समय व्यतीत हो गया। उस अवसर पर सब मंत्रियों ने मिल कर उसे राज्य भार सौंप दिया। जब वह राजा बन गया तो अपने अपने सभी सम्बन्धियों का का बुला लिया। तथा सबको गाव दे दिये तथा स्वयं त्रिभुवन नगर का राजा बन गया। ब्राह्मण कुल मे से पुरोहित की स्थापना की गयी तथा उन्हे लिख कर दे दिया कि जिस घर मे पुत्र का विवाह होगा तो वह पांच रुपया ब्राह्मण को देगा तथा इसमे कमी अथवा अधिकता नही होगी।

इसके पश्चात् सबके मन में यह बात आयी की वे सब बिछुड गये हैं। यदि वे सब मिल जाते हैं तो अत्यधिक आनन्द होगा। तब राजा सहित सभी परिवार वाले गढ से नीचे आये और जिन मन्दिर मे आकर एकत्रित हो गये। सब पचो को बुला लिया गया। सभी ने हाथ जोड कर यही प्राथना कि ऐसा काम करा जिससे दोनो एक हो जावें।। जो कुछ गल्ती हो गयी उसे भूल जाना चाहिये। अब पहिले की परम्परा को अपनाना चाहिये। सभी ने यह भी निर्णय लिया कि राजा का मान भग नही करना चाहिये। सभी ने मिलकर राजासे आदेश देने की प्रार्थना की लेकिन परस्पर मे विवाह करने की आज्ञा देने पर वे सब देश को ही छोड देंगे यह भी निवेदन किया। राजा नेभी मन मे सोचा कि हठ करने से प्रसन्नता नही होगी। इस प्रकार समाज की बात मान कर राजा महल मे चले गये।[1]

इसके पश्चात जैसवाल जैन समाज दो शाखाओ मे विभक्त हो गया। जो समाज गढ़ मे रहता था वह उपरोतिया कहलाने लगा तथा जो नीचे रहता था वह तिरोतिया नाम से प्रसिद्ध हो गया। उस समय ये दोनो नाम प्रसिद्ध हो गये और इसी नाम से वे परस्पर मे व्यवहार करने लगे। उपरोतिया शाखा वाले जैसवाल

---

१. विनती करी राय सौं सबै, आग्या देहु अब हम तबै
ब्याहु काज नहीं नरेश, हठ करो तौ तज है देश ॥६४॥
तब मन मे सौचियो नरिंद, हठ के कीए नहीं आनन्द।
मानि बात नृप गढ पै गये, जैसवाल दुविधि तब भए ॥६५॥१५५॥

काष्ठा संघी गुरुओं की सेवा करने लगे तथा तिरोतिया जैसवाल मूलसंघी बने रहे। इस प्रकार समय व्यतीत होता गया और दोनों शाखा वाला जैसवाल जैन समाज आनन्द सहित रहने लगा।

लेकिन कुछ समय पश्चात् राजा का स्वर्गवास हो गया और उसके मरने के पश्चात् दूसरा ही राजा वहां का स्वामी बन गया। उसका नाम तिहिनपाल प्रसिद्ध था। वहां से जैसवाल चारो ओर निकल गये। इसी बीच अन्तिम केवली जम्बूस्वामी को मथुरा नगर के समीप स्थित उद्यान मे कैवल्य प्राप्त हुआ भगवान के कैवल्य को देखने के लिए सभी मथुरा के उद्यान में एकत्रित हो गये। त्रिभुवन गिरि को छोडकर सभी जैसवाल वहा आ गए। भगवान के दर्शन कर के अत्यधिक प्रसन्नता हुई। उसी स्थान से जम्बू स्वामी ने निर्वाण प्राप्त कर पचम गति प्राप्त की। उसी स्थान पर जैसवाल रहने लगे तथा अपना २ कार्य करने लगे। अपने २ गोत्रो मे विवाह आदि कार्य करने लगे। इस प्रकार कवि ने जैसवाल जाति की उत्पति कथा का अत्यधिक महत्त्वपूर्ण वर्णन किया है। उपरोतिया शाखा मे ३६गोत्र एव निरोतिया शाखा मे ४६गोत्र माने जाने लगे।[1]

कवि प्रशस्ति—

वचनकोश के अन्तिम ११ पद्यों मे कवि ने अपना परिचय दिया है जिसका वर्णन प्रारम्भ मे किया जा चुका है। कोश के अन्तिम पद्य मे कवि ने लघुता प्रगट की है—

गुनी पढे औ प्रीतिसौं चूकहि लेइ सम्हारि।
लघु दरिघ तुक छद कौं, छमियौ चतुर विचारि ॥८५॥

इस प्रकार वचन कोश की रचना करके कविवर बुलाखीचन्द ने साहित्यिक

---

१ जम्बूस्वामि भयौ निरवान, पाई पचम गति भगवान।
जैसवाल रहे तिहि ठाम, मन माग्यो जु करइ कांम ॥७३॥
कारज नाम गोत परनए, इहिं विधि जैसवाल वरनए।
उपरोतिया गोत छत्तीस, तिरं तिया गनि छह चालीस ॥७४॥१५६॥

जगत् को एक महत्त्वपूर्ण कृति भेंट की है। जिसमें सिद्धान्त, इतिहास, समाज एवं काव्य गरिमा के दर्शन होते हैं। कोश नामान्तक इस प्रकार की बहुत कम कृतियां उपलब्ध होती हैं।

छन्द एवं अलंकार—

वचनकोश का मुख्य छन्द चौपाई छन्द है लेकिन दोहरा एवं सोरठा छन्दों का भी प्रयोग किया गया है। १८वीं शताब्दि में दोहा एवं चौपई छन्द अधिकांश काव्यों का छन्द था तथा पाठक गए भी इन्हीं छन्दो के काव्यों को रुचि से पढ़ते थे।

गद्य का उपयोग—

कवि ने कोश में कुछ स्थानों पर पद्य के स्थान पर गद्य का प्रयोग किया है। व्रतो के वर्णन में गद्य का प्रयोगप्रमुख रुप से हुआ है। इसे हम व्रज भाषा का गद्य कह सकते हैं। गद्य भाग के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार है—

(१) जिनमुखावलोकन व्रत आसोज सुदी ४, भादवा बदि १ तें प्रारम्भ वर्ष १ ता यी करै ताकी रीति श्री परमेश्वर जी की प्रतिमा देख्या बिना पारणौं न करे जो कदाच वसि काहू दिन पहिले और कछू दिष्ट परें ता दिन उपवास करै ॥

इति जिनावलोकन मुख व्रत। पृष्ठ संख्या ३६।

(२) यह प्रकार जब आत्मा बाहिर चिह्ननि करि और अंतरंग चिह्ननि करि अथा जात रुप का धारतु हो हैं। तातें कुटुम्ब लोक पूछन आदि किया तें ले करि आगें मुनि पद के भंग के कारण पर द्रव्यनि के संबंध है तातें पर के सम्बन्ध निषेध हैं इह कथन करै है।

पृष्ठ संख्या ४४।

अन्य ग्रन्थों का उद्धरण—

कवि ने व्रत पालन के प्रसंग में नाटक समयसार, प्रवचनसार के अतिरिक्त जैनेतर ग्रन्थो से भी श्लोक उद्धत किये हैं। इससे कवि की शिक्षा, दीक्षा एवं ज्ञान गम्भीरता के बारे में प्रकाश पड़ता है।

समीक्षात्मक अध्ययन —

बुलाखीचन्द महाकवि बनारसीदास के उत्तरकालीन कवि थे। आगरा से उनका विशेष सम्बन्ध थ। लेकिन काव्य के अध्ययन के पश्चात् ऐसे लगने लगता है कि कवि पर बनारसीदास का कोई प्रभाव नहीं रहा। वचनकोश संग्रह ग्रंथ है। इसमें पुराण, इतिहास, कथा तथा सिद्धान्तों का अच्छा वर्णन हुआ है। कवि सीधे सादे शब्दों में अपनी बात पाठको तक पहुंचाना चाहता है इसमे उसे बहुतकुछ सफलता भी मिली है। लेकिन यह भी सही है कि वर्तमान शताब्दि में भी विद्वानों का ध्यान उसकी ओर नहीं गया। यद्यपि वचनकोश की चार पाण्डुलिपियो की खोज की जा चुकी है इसलिए यह तो नहीं कहा जा सकता कि ३०० वर्षों में किसी ने उसे मान्यता नहीं दी आखिर चार पाण्डुलिपियां भी श्रावकों के ही आग्रह से लिखी गयी होंगी फिर भी कवि समाज द्वारा उपेक्षित ही बना रहा इस कथन में पर्याप्त सत्यता है।

कवि स्वयं मनोवैज्ञानिक था। वह पाठको की रुचि एवं अरुचि को समझता था इसलिये उसने अपने कोश मे कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाओ का वर्णन बडी ही चतुरता से प्रस्तुत किया है। उसने वचनकोश का प्रारम्भ २४ तीर्थंकरो के स्तवन से किया है यह स्तवन एक दो पद्यो का नहीं है किन्तु प्रत्येक तीर्थंकर का उसने सक्षिप्त एव मधुर परिचय दिया है। जो पौराणिक के साथ २ कहीं २ ऐतिहासिक बन गया है। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के पाचों कल्याणको के वर्णन के अंतर्गत उसने चारो ही अनुयोगो का वर्णन कर डाला है जिसको पढने से पाठक ऊबता नहीं है किन्तु रुचि पूर्वक आगे बढता चला जाता है। कभी वह अपने विषय को गद्य मे प्रस्तुत करता है तो कभी पद्य मे जिससे पाठक रुचिपूर्वक ग्रंथ को पढता चला जावे। वास्तव मे बुलाखीचन्द अपने समय का अच्छा कवि था।

वचनकोश में जैसवाल जैन जाति की उत्पत्ति का इतिहास, उसी के अन्तर्गत भगवान महावीर का समवशरण सहित जैसलमेर आना, जम्बू स्वामी का मथुरा के उद्यान मे कैवल्य एवं निर्वाण होना, काष्ठासंघ की उत्पत्ति, अग्रवाल जाति की उत्पत्ति के साथ अग्रवाल जैन जाति का इतिहास आदि कुछ ऐतिहासिक घटनाओं का भी कवि ने वर्णन किया है। जिससे ज्ञात होता है कि स्वयं बुलाखीचन्द इतिहास प्रेमी था। वह जैसवाल जैन था इसलिये जैसवाल जाति का जो इतिहास लिखा है वह उस समय की मान्यता के आधार पर लिखा गया है। महावीर

के समवसरण का जैसलमेर मे आने का उल्लेख करने वाला सभवत बुलाखी-चन्द प्रथम विद्वान है। उसने लिखा है कि महावीर जैसलमेर आये और जैसवालों को दिगम्बर जैन धर्म मे दीक्षित करने के पश्चात् पुन राजगृही चले गये। मार्ग में कही विहार नहीं किया। इस घटना की सत्यता को सिद्ध करने वाले दूसरे प्रमाण नही मिलते और न किसी दूसरे विद्वान ने भगवान महावीर के समवसरण सहित जैसलमेर आने का उल्लेख किया है फिर भी कवि के जो विवरण प्रस्तुत किया है उस पर गम्भीरता पूर्वक विचार की आवश्यकता है। इतना तो इस वर्णन मे सत्य प्रतीत होता है कि जैसवाल जैन जाति की उत्पत्ति जैसलमेर से हुई थी।

अन्तिम केवली जम्बू स्वामी का कैवल्य एव निर्वाण दोनो का मथुरा नगर के उद्यान मे होना तो ऐतिहासिक सत्य है। यद्यपि कुछ विद्वान जम्बूस्वामी के निर्वाण स्थल मे मतभेद रखते हैं लेकिन निर्वाणकाड गाथा मे अतिशय क्षेत्रो के सम्बन्ध मे जो महत्म्य लिखा है उनमे मथुरा से ही जम्बूस्वामी का निर्वाण होना माना है। सवत् १७३७ मे रचित प्रस्तुत वचनकाश मे इसी मत का समर्थन किया है यही नहीं मथुरा ककाली टीले से जो जैन पुरातत्व की विपुल सामग्री उपलब्ध हुई है वह भी इसी बात का द्योतक है कि मथुरा कभी जैन सस्कृति का महान् केन्द्र था। जम्बूस्वामी के पूर्व ही यह क्षेत्र जैन सस्कृति का प्रमुख केन्द्र बन चुका था। अहिंसक वातावरण एव श्रमण धर्म का केन्द्र होने के कारण जम्बूस्वामी भी स्वय राजगृही से विहार कर मथुरा पधारे थे और यही उन्हे कैवल्य हुआ था। यही नही उस समय विहार से राजस्थान तक का यह मार्ग जैन साधुओ के लिए सुरक्षित बन चुका था इसका अर्थ यह हुआ कि भगवान महावीर का धर्म उस समय तक यहा लोकप्रिय बन चुका था और उनके अनुयायी पर्याप्त सख्या मे मिलने लगे थे।

कोश मे जैसवाल जैन जाति के समान ही अग्रवाल जैन जाति की उत्पत्ति का इतिहास भी दिया हुआ है। लोहाचाय ने अग्रोहा के निवासियो को जैनधर्म मे दीक्षित किया जो बाद मे अग्रवाल जैन कहलाने लगे। कवि ने इसे सवत् ७६० (सन् ७०३) की घटना माना है। अग्रवाल जैन जाति का दिगम्बर जैन जातियों मे अपना विशेष स्थान है। इसलिए उसका इतिहास जानना आवश्यक है। अग्रवाल जैन जाति के इतिहास के साथ ही काष्ठा सघ की उत्पत्ति का जो रोचक इतिहास प्रस्तुत किया है वह भी कवि की ऐतिहासिक मनोवृति का ही परिणाम है।

समाज में काष्ठ की मूर्तियां बनाने का एक समय बहुत जोर हो गया था। काष्ठासंघी भट्टारक इस दिशा मे बहुत प्रयत्नशील रहते थे लेकिन भट्टारक उमास्वामी को काष्ठ प्रतिमा का निर्माण अच्छा नहीं लगा इसलिये उन्होंने इसका विरोध किया और लोहाचार्य से जब भेंट हुई तब उन्होने निम्न शब्दो मे अपना मत व्यक्त किया—

> बही सील हमरें करि घरो, काठ तनी प्रतिमा मति करो ।।
> अग्नि जरावे घन छिद्र बहें, अ न अंग नहिं जिन गुन लहें ।।
> जल डारें चचल तसु जांन, लेप किये सदोष यह जानि ।।२५।।

उमास्वामी की बात तो मान ली गयी लेकिन काष्ठा संघ ने मूल संघ से से अपना पृथक अस्तित्व बना लिया। इस प्रकार कवि ने काष्ठासंघ की उत्पत्ति का ऐतिहासिक वर्णन दिया है लेकिन काष्ठासंघ के भट्टारक आचार्य सोमकीर्ति ने ने जो काष्ठासंघ की पट्टावली दी है उससे इसका मेल नहीं खाता। सोमकीर्ति ने तो प्रथम आचार्य का नाम अर्हद्वल्लभसूरि दिया है जब बुलाखीचन्द ने लोहाचार्य को काष्ठासंघ का संस्थापक माना है।[1] लेकिन बचनकोश मे मूलसंघ एवं काष्ठासंघ को एक चने की दो दाल के समान माना है।[2]

बचन कोश मे भारत मे यवनोत्पत्ति का वर्णन किया है उसके अनुसार वे सब हिंसा मे विश्वास करने वाले तथा शोच एवं शील के विपरीत आचरण करने वाले थे।[3]

मंत्र शास्त्र

बुलाखीचन्द ने कितने ही मंत्रों की साधना का भी अच्छा वर्णन किया है। कवि के युग मे अथवा आगरा, आदि स्थानो में मंत्रो पर अधिक विश्वास था। स्वयं कवि भी मंत्र शास्त्र अच्छे ज्ञाता रहे होंगे ऐसा भी आभास होता है नहीं तो अधिकांश काव्यों मे मंत्रों का उल्लेख तक नहीं होता। इसके अतिरिक्त सभी मंत्र विद्या आदि के प्रदाता एवं कल्याणकारक मन्त्र हैं।

देखिये—

1. आचार्य सोमकीर्ति एवं ब्रह्म यशोधर—डा० कासलीवाल—पृष्ठ संख्या २४।
2. एक चना कीज्ये द्वै दारि त्यौ ए दोऊ संघ विचार।
3. हिंसा तनो तहां अधिकार, सौच सील नहीं दीसें सार ।।७।।१४३।।

मारण ताडन आदि क्रियाओं से कवि दूर रहा है। अधिकांश मंत्र छोटे हैं एवं नमस्कार मंत्र पर आधारित है। कवि ने मन्त्रो का पद्यों मे महात्म्य लिखकर उनके महत्व में वृद्धि की है तथा उन्हें लोकप्रियता प्रदान की है। कवि ने मंत्रो का वर्णन पदस्थ ध्यान के अन्तर्गत किया है तथा मंत्रों को मन निरोध का उपाय बताया है।

अष्ट सिद्धि नौ निधि सदन, मन निरोध कोगेह।

बरन्यो ध्यान पदस्थ यह, बढि चित्त परण नेह ॥६८॥८२॥

इस प्रकार बुलाखीचन्द द्वारा निबद्ध वचनकोश हिन्दी की एक महत्त्वपूर्ण कृति है जो अभी तक साहित्यिक क्षेत्र में पूर्ण अज्ञात थी। राजस्थान के ग्रन्थ भण्डारो मे इसकी निम्न पाण्डुलिपियां सुरक्षित हैं—

(१) क प्रति—पत्र संख्या १५७। लेखनकाल सवत् १८५३ चैत्र वदि ११ भृगुवार। प्राप्ति स्थान—शास्त्र भण्डार दि० जैन तेरहपंथ मन्दिर (बडा) जयपुर ग्रन्थ समाप्ति के पश्चात् निम्न पक्ति और लिखी हुई है—"ग्रन्थ प्रतापगढ तेरापंथी आमनाय रो"। वेष्टन संख्या।१६७०।

(२) ख प्रति—पत्र सख्या २५२। आ० $१५\frac{1}{2} \times ४\frac{1}{2}$ इञ्च। लेखनकाल ×। प्राप्ति स्थान—दि० जैन मन्दिर श्री महावीर स्वामी बून्दी (राज०) वेष्टन सख्या १

(३) ग प्रति—पत्र सख्या २८२। आ० $६ + ४\frac{1}{2}$ इञ्च। लेखनकाल—सवत् १८५६। प्राप्ति स्थान—दि० जैन मन्दिर कोटडियो का डूगरपुर।

वचन-कोश

(बुलाकीचन्द कृत)

अथ वचन कोश लिख्यते

दूहा

मंगलाचरण

समयसार के पय नमूं, एकदेव गुणधारि ।
परमेष्टि तिनिस्यौ कहैं, पंच ग्याल गुणधार ॥१॥
वरण गंध काया नहीं, अविनाशी अविकार ।
गुरु लघु गुण विनु देव यह, नमौं सिद्ध अवतार ॥२॥
श्री जिनराज अनंतगुण, जगत परम गुरु एव ।
अध ऊरध मधिलोक के, इन्द्र करें शत सेव ॥३॥
पचाचारि तपधनि, सहत परीसह घोर ।
श्री आचार्य धर्मगुरु, नमो नमो करिजोर ॥४॥
ध्यायक जिनवानी विमल, जगि अध्यायक नाम ।
ज्ञान दिवाकर परम गुरु, ताके पद परणाम ॥५॥
बीस आठ जे मूलगुण, सार्धें मन वच काय ।
सर्व साध हैं कर्म ठाणु, वदों शीस नवाय ॥६॥

१. आदिनाथ स्तवन

चौपई

पंच परम पद मुक्ति महेश । ज्ञायक शुभग परम योगेश ॥
तासु चरण नमि अशुर्वहि वर्मों । जिन चौबीस तवें पद नमुं ॥७॥
वंदों प्रथम श्री आदि जिनंद । नाभिराय मरुदेव्यानंद ॥
धनुष पांचसे ऊंची काय । जन्म कल्याणक विनता थाय ॥८॥

लांछन वृषभ तणो सोभत । कंचन वरण शरीर दीपंत ।।
वंश इक्ष्वाक आव परिमाण । लख चौरासी पूरव जान ।।९।।
ग्यारह भव तें ज्ञान उद्योत । तब तें बंध्यो उत्तम गोत
एक वरष पीछे आहार । प्रासुक इक्षुदंड रस सार ।।१०।।
नृप श्रेयांस दियो प्रभु दान । हस्तनागपुर जाकी थान ।।
वट तरु लोच कियो हे सार । गणधर हे असी अरु चार ।।११।।
समोसरण धनपति ने कर्‌यो । बारह योजन को विस्तर्‌यो ।।
तप करि उपज्यो केवल ग्यान । राजरिद्धि भुगतें अवदात ।।१२।।

दोहरा

पद्मासन आरुढ ह्वै, जिनवर धर्‌यो जु ध्यांन ।
गिरि कइलास आकाश वत, तहाँ भयौ निर्वांन ।।१३।।

चौपई

वदि अषाढ की दुतीया जोई । प्रभु को गर्भ कल्याणक होई ।।
चैत वदि नौमी के दिनां । तप और जनम महोछव घनां ।।१४।।
फागुण वदि ग्यारसि तिथि जान । श्री जिनवर भयो केवलज्ञान ।।
ताको कवि कहा बरननि करै । रसना एक किसकर उच्चरै ।।१५।।
कृष्ण चतुर्दशी माघ जु मास । भयौ निर्वाण मुक्तिपद वास ।।
चिदानंद परमातम भए । तीनि लोक जाके पद नए ।।१६।।

दोहरा

नर नारी जे भक्ति जुत, तिन दिन करै उपवास ।।
फिरि पावै भव मनुष्य को, मुक्ति होइ भव नास ।।१७।।

इति वृषभदेव वर्णनं

२. अजितनाथ स्तवन

सागर लाख करोरि पचास । बीते अजितनाथ परकास ।।
जित रिपु राजा विजया मात । गज लांछण हाटक सम गात ।।१।।
पुरी अजोध्या जन्म कल्याण । तीनि भवांतर तें भयो ज्ञान ।।
धनक चारिसै साढे काय । लाख बहत्तरि पूरब आय ।।२।।

बस इषाक नवेमिनि धार। तीन दिवस अंतर आहार ।।
धेनु षीर पीयो मुनि येह। ब्रह्मदत्त नृप दिजिया येह ।।३।।
अबूवृक्ष तवें तपु लियो रत्नत्रय व्रत लिर्मल्ल कियो ।।
समोसरण श्रीजिनवर तणों। कोठा बखे ग्यारह भणों ।।४।।
वरनति सकों अल्प मोहि ज्ञान। सांक लवें भवी केवलज्ञान ।।
बहुविधि राज विभूति विलास। सबहु त्यागि पाई सुख रास ।।५।।

सोरठा

ठाढे जोगाभ्यास, कियो सिद्ध सम्मेद पर।
पहुंचे अविचल वास, सकल करम दल धून के ।।६।।

दोहरा

जेष्ट वदि मावस गरभ, जनम माघ सुदि नौमि।
चैत्र सुदि पांचै जु तप, ध्यान अवनि कर्म होमि ।।७।।
माघ महीना शुकल पक्ष, दसमी तिथि को ज्ञान।
पूस उज्यारि प्रतिपदा, ता दिन प्रभु निर्वाण ।।८।।

इति अजितनाथ वर्णन

३ सम्भवनाथ स्तवन

चौपई

तीस करोरि लाष निधिधार। बीते प्रभु संभव अवतार ।।
पिता जितारथ सेन्या माइ। सावित्री नगरी के राइ ।।१।।
तुरक पवन अति ध्वज आकार। वर्ण शरीर हेम उनिहार ।।
साठि लाष पूरब थिति जान। धनुष चारिसे काय प्रमाण ।।२।।
कुल इक्षाक मे पूरणचंद। अघोतरको महावर वृद
तीनि भवांतर ही सुधि भई। वाकरि विमल दीक्षा में लई ।।३।।
सुरदत्त सावित्री धनी। ता घर पोषण की विधि बनी ।।
तरवर शुभग शालि जिहि नाम। तातर तपु कीयो अभिराम ।।४।।
अप्रात्मक केवल रिद्धि बनी। आवै जोग मुक्ति के धनी ।।
राजरिद्ध त्यागें लह्यो पार। भयों सम्मेद गिरि जय जयकार ।।५।।

दोहरा

समवसरण जिनवर तणों, रच्यो देवतनि आइ ।
ग्यारह जोजन को ठयौ, भ्रमजन सुखदाइ ।।६।।
फागुण सुदि नौमी गरभ, जनम पूर्णिमा पूस ।
छठि उज्यारि चैत की, लीयो तप प्रभु तूस ।।७।।

सोरठा

कातिग पूण्यौ ज्ञान, केवलरिद्धि जिनेश कौं ।
काती वदि निर्वाण, हुती चौथि ता दिन प्रगट ।।८।।

इति संभवनाथ वर्णन

४. अभिनन्दन नाथ स्तवन

सोरठा

उदधकोरि दिश लाख, वीतैं जग उद्दित भये ।
श्रुत सिद्धांत है साषि, अभिनंदन जिन भान वत ।।१।।

चौपई

समर राय गृह तिमिर नसाइ । प्राची दिसा सिधारथ माइ ।।
अवधिपुरी कपि लछरण जानि । कुल इक्ष्वाक महा बलवांन ।।२।।
सुवर्णवत देही की काति । षोडश और शत गणधर पांति ।।
पूरब लाष पचास अरोग । काय अहूठ सत धनक मनोग ।।३।।
इन्द्रदत्त विनिता पुर राइ । दूजें दिन गोक्षीर घटाइ ।।
सालरि वृक्ष सघन सोभत । ता तर जोग धर्यौ अरहंत ।।४।।
तीन जनम आगें सुधिवांन । साझ समे भयो केवलज्ञान ।।
छोडत राज न कीनो मोह । दहा एहैं राग अरु दोह ।।५।।
समोसरण जोजन दश अर्द्ध । रच्यौ देव वनि सहित समृद्धि ।।
ठाढे जोग मोक्ष कौं गए । गिरि सम्मेद तीर्थंकर भए ।।६।।

दोहा

वैशाख उजेरी छठि प्रकट, तप अरु गर्भ कल्याण ।
माघ उजेरी द्वादशी, ता दिन जनम अरु ज्ञान ।। ७ ।।

पूस सुदि चौदसि विमल, शुकल ध्यान धरि ईस।
भयौ कल्याणक पंचमौ, सिद्ध भए जगदीश ॥ ८ ॥

इति अभिनन्दन वर्णनं

५. सुमतिनाथ स्तवन

दोहरा

वारधि लाख करोर नो, तासु घटे परंजत।
सुमतिनाथ आवन भयो, प्रतिबोधन जिन संत ॥ १ ॥

चौपई

मेघराय कोशल्या धनी। श्रीजिन माइ मंगला गणी ॥
चकवाकार ध्वजा फरहरैं। राजनीति त्रिभुवन की धरैं ॥ २ ॥
निर्मलकुल इक्षाक विचार। तीनि जनम थै करी सम्हारि ॥
वर्ण देह सौवर्ण भणंत। भोजन दोइ दिवस परजंत ॥ ३ ॥
पद्मदल विजयापुर ईश। घट्यौ क्षीर आहार जगदीश ॥
प्रियंगु वृक्ष उत्तम अवलोय। प्रभु को तहा तपोधन होइ ॥ ४ ॥
आव वधी पूरव लख चाल। सत्तोत्तर शत गणधर जाल ॥
धनक तीन सै जिन बलबीर। दिन के अस्त ज्ञान की भीर ॥ ५ ॥
समोसरण जोजन दश जानि। द्वादश कोठे मध्य वखान ॥
कायोत्सर्ग जोग धरि ध्यान। भयो सम्मेदगिरि पर निर्वाण ॥ ६ ॥

दोहरा

दूंज अरु नौमी श्रावण दिवस, शुकल पक्ष वैशाष।
गर्भ जन्म प्रभु तप कह्यौ, श्रीजिन आगम भाष ॥ ७ ॥
चैत्र शुदी एकादशी, ता दिन तप निर्वान।
भवि चैत बदि एकादशी, उपज्यौ केवल ज्ञान ॥ ८ ॥

इति सुमतिनाथ वर्णनं

६. पद्मप्रभु स्तवन

दोहरा

नव करोरि सागर गए, उपजे पद्म जिनंद।
भविजन सब सुकृत भए, कटे कर्म के फंद ॥ १ ॥

चौपई

धुर राजा कौशबी तनो। जिन जननी सुसीमा भणौं ॥
कमलाक्षत लाछण ध्वज चग। गिरिहोतर सो गणधर सग ॥ २ ॥
तीन लाष पूरब की प्राव। प्ररुण वरण दीसे तनु भाव ॥
धनक प्रठाईसो परवान। काय तुरगता शुभग बषान ॥ ३ ॥
तीनि जन्म थें पहिलै जाचि। इक्षाक वश उपजै प्रभु सांच ॥
सोमदत्त मगलपुर राय। दूजै दिन गोक्षीर घटाइ ॥ ४ ॥
वृक्ष प्रियंगुतरु तपव्रत लीयो। कर्मनास को उदिम ठयौ ॥
गोधूलक को समयो जानि। केवलरिद्धि भई भगवान ॥ ५ ॥
समोसरण जोजन नव प्राध। प्रमरनि रच्यौ भक्ति हित साधि ॥
गिरिसम्मेद पचम कल्याण। ठाढे जोगजु कृपानिधान ॥ ६ ॥

दोहा

माघ बदि छठि गर्भ जिन, तप फागुण बदि चौथि।
कातिग बदि तेरसि मुनौ, जनम ग्यान गुण गोथि ॥ ७ ॥
पूरणमासी चैत्र शुदि, कर्म सकल परिजारि।
मुक्तिस्थल प्रविचल लह्यौ, जिन स्वामी भवतारि ॥ ८ ॥

इति पद्मप्रभु वर्णन

७. सुपार्श्वनाथ स्तवन

दोहा

नौ करोरि सागर गए, प्रमु सुपार्श्व प्रवतारि।
जो जन ध्यावै भाव धरि, ते पावै भव पारि ॥ १ ॥

चौपई

सुप्रतिष्ठित नृप बानारसी। मात महिसेनां पुत ससी ॥
लाछण स्वस्तिक कै प्राकार। नील वर्ण तन झलक प्रपार ॥ २ ॥
बीस लाख पूरब की प्राव। द्वै सै धनुक काय को भाव ॥
गणधर नवै पांच सुग्यान। इक्ष्वाक बश मैं पर परवान ॥ ३ ॥
तीन जनम थैं स्वपर विचार। जुग बासर गोक्षीर प्राहार ॥
महेन्द्रदत्त राजा दियो दान। पाटनपुर नगरी शुभथान ॥ ४ ॥

वृक्ष अनूप अति श्रीखंड। तहां तप ले दियौ इन्द्रिन दंड ।।
दिन समस्त गत समयौ भयौ। राजनीति तजि केवल ठयौ ।। ५ ।।
समोसरण तब देवनि रच्यौ। नौ जोजन कौ रत्ननि खच्यौ ।।
गिरिसम्मेद चढ़ि शिवपुर गए। ठाढे जोग जिनेश्वर लये ।। ६ ।।

दोहा

भादौं सुदि छठि गर्भ दिन, जनम जेठ शुदि बार।
तप फागुण बदि सप्तमी, कह्यौ ग्रंथ निरधार ।। ७ ।।
ज्ञान जेठ बदि दूंज कौ, समासरण मडान।
फागुण बदि षष्ठी कह्यौ, श्री जिनवर निर्वाण ।। ८ ।।

इति सुपार्श्वजिन वर्णनं

८. चन्द्रप्रभ स्तवन

सोरठा

सागर नौसै कोटि, जब सपूरण ह्वै गए।
शशिवत आभा कोटि, चन्द्रप्रभ जिन जनमियौ ।। १ ।।

चौपई

चन्द्रपुरी राजा महासेनि। लक्षमा राणी ता गृह चैनि ।।
चन्द्र चिह्न दुतीया की भाति। हिमकर बरत देही की शाति ।। २ ।।
दश लाख पूरब आव गनत। धनक देढसें काय दिपन्त ।।
तिमिर नसायो कुल इक्षाक। सात भवातरस्यौ बैराग ।। ३ ।।
नवें तीनि सग गणधार। दूजें दिन लियौ दूध आहार ।।
पद्मखड नगरी को ईश। चन्द्रदत्त दियौ दान अधीश ।। ४ ।।
तरवर नाग नाम सोमत। तालर तप लियौ अरहंत ।।
तीन लोक कौ साध्यौ राज। कियौ निज आतम काज ।। ५ ।।
दिन की आदि पचमौंग्यान। गिरिसमेद थानक निर्वाण ।।
समोसरण जोजन बसु आध। कायोत्सर्ग जोग प्रभु साध ।। ६ ।।

दोहा

गर्भ चैत्र बदि पचमी, जनम पोष बदि ग्यारसि।
फागुण बदि तिथि सप्तमी, तप निर्वाण हुलास ।। ७ ।।

पूस बदी एकादशी, केवल ज्ञान उद्योत।
सुरगी सब मिलि पद नमैं, विमल ग्रातमा ज्योति ॥ ८ ॥

इतिचन्द्रप्रभ वर्णनं

६. पुष्पदन्त स्तवन

सोरठा

सलितापति सब कोरि, अनुकर्म्मं जब खिरि गए।
भए प्रतापी जोर, पुष्पदन्त पुहमी प्रकट ॥ १ ॥

चौपई

काकदी जनम जिनराय। सुग्रीव पिता श्री रामा माइ ॥
लाछरण मगर करैं पदसेव। चन्द्राकृत निर्म्मल वपु देव ॥ २ ॥
द्वै लख पूरब वरणी ग्राव। धनक एक सो पुदगल भाव ॥
बड़ो वश भुमि पर इक्षाक। तीन भवातरितै प्रभु ताकि ॥ ३ ॥
सूरमित्र चित्र हर राइ। प्रभुको गोरस चर्गी ग्राहार ॥
द्वै दिन बीतै ग्रायौ ग्राहार। तप लीयौ जहाँ मल्लिका भार ॥ ४ ॥
षड ग्रसी गणधर मडली। झेलैं दिव्व धुनि उछली ॥
नृप पदवी को साधि विचारि। केवल प्रगट्यौ साझी बार ॥ ५ ॥
समोसरण वसु जोजन जानि। रत्नजटित ग्ररु कचन खांनि ॥
पुरुषाकार जोग ग्रम्यास। गिरि सम्मेदपर मोक्ष ग्रवास ॥ ६ ॥

दोहा

फागुण बदि नौमी गरभ, जनम पूस सुदि एक।
तप भादौं सुदी ग्रष्टमी, इह जिन वचन विवेक ॥ ७ ॥
ग्राघहन सुदि परिवा दिवस, भई ज्ञान की रिद्धि।
कातिग सुदि तिथि द्वैज कौ, भए जिनेश्वर सिद्ध ॥ ८ ॥

इति पुष्पदन्त वर्णनं

१०. शीतलनाथ स्तवन

दोहा

नौ करोरि सागर गए, मिटे दुरति ग्रातापा।
शीतल पदवी को धरैं, शीतलनाथ प्रताप ॥ १ ॥

चौपई

भाद्दलपुर दृढ़रथ भूप तात। नंदाराणी श्रीविख्यात।
लाञ्छण श्रीवृक्ष हिमवंत देह। कुल इक्षाक सों कीनौ नेह ।। २ ।।
आव एक लाख पूरब की भणी। नवै धनुक काय प्रभु तनी।
इक्कासी गणधर गुरु कहे। तीनि जनम मैं प्रभु बुधि लहे ।। ३ ।।
बीतैं जब निस बासर होइ। कर्यो आहार दूध है सोइ ।।
पुन वसु राजा सिवपुरी ग्राम। दान अधीन भयौ अभिरांम ।। ४ ।।
वृष्य पलास झुभता मुषि देषि। तातर धर्यौ दिगम्बर भेष ।।
राज करत समकित उद्दोत। अघि रिपु अत ज्ञान की ज्योति ।। ५ ।।
समोसरण देवनि करि बन्यौ। जोजन सप्त अर्द्ध को गन्यौ।
योग धर्यौ प्रभु कायोत्सर्ग। गिरि सम्मेदि तें गए शिवमग्ग ।। ६ ।।

दोहा

चैत वदी तिथि अष्टमी, गर्भ महोत्सव माघ।
माघ बदि तिथि द्वादशी, जनम ज्ञान कल्याण ।। ७ ।।
क्वार शुदि की अष्टमी, धर्यौ दिगम्बर भेष।
पूस बदि चौदशि दिना, मुक्ति शिला पर देषि ।। ८ ।।
एक लाष घट लाष शत, सागर अंतर जानि।
या मैं कछुक घटाइयैं तब पूरौ परमान ।। ९ ।।

इति शीतलनाथ वर्णनं

११. श्रेयान्सनाथ स्तवन

चौपई

लष निनांनवैं छबीस हजार। इतने बरष दीजिये डारि ।।
इतनो काल उलिंघि जब गयौ। तब श्रेयांस कौ पावन भयौ ।।१।।
सिंघपुरी राजा विमल। विमला राणी बहु गुण अमल ।।
लाञ्छन गेंडो कंचन वरण। गणधर सत्तोत्तर सो सरण ।।२।।
लाष पूरब की ·········। आव श्री जिनवर की जानि ।।
असी धनुक की ऊँची काइ। तीनि जनममैं धरम सुहाइ ।।३।।
इक्षाक वंश कुल दीपक भयौ। गौ दूध द्वै दिन परि लयौ ।।

अरिठपुरी नर नाह नरिंद । ता घर लयो आहार जिनंद ॥५॥
तेंदू वृक्ष सघन बडभाग । तप धरि तहां भए वैराग ॥
अरुण उदय बेला निर्मली । तहां भए प्रभुजी केवली ॥५॥
छिणक छंडि बसुधा को राज । गिरि सम्मेद पर मोक्ष समाज ॥
समोसरण जोजन मणि सात । ठाढे जोग कियो कर्मघात ॥६॥

दोहा

षष्टी स्याम जु जेठ की, भए गर्भ कल्याण ।
फागुण बदि एकादशी, जनम ज्ञान गुण खांनि ॥७॥
पून्यो सावन सुदि तनी, तज्यो गेह जगदीस ।
माघ बदि मावस दिना, मुक्ति रमनि के ईश ॥८॥

इति श्रेयांस वर्णन

१२. वासुपूज्य स्तवन

दोहा

एक पौन सागर गए, चपापुरी मझारि ।
वासुपूज्य प्रभु औतरे, त्रिभुवन तारण हार ॥१॥

चौपई

वसुपूज्य है तात को नाम । जयदेवी माता अभिराम ॥
महिष जु लाछ्न वरननि दिये । सत्तरि धनक काय जिनमये ॥२॥
बरष बहत्तरि लाष प्रमान । आव श्री जिनवर की जानि ॥
अरुन वरण दीसै तनुसार । इक्षाक वंश छाछठि गणधार ॥३॥
तीनि भवांतरि तें प्रभु जानि । धर्यो कुमार काल वैराग ॥
सुंदर नृपति सिद्धारथ पुरी । ताके घर कीनि प्रभु चरी ॥४॥
दूजै दीनां गो क्षीर आहार । पाटलतर भए मगन शरीर ॥
निस प्रवेश को समयौ जानि । प्रभुजू को भयौ केवलज्ञान ॥५॥
समोसरण को सुनि विस्तार । साढे छह जोजन को सार ॥
आसन पद्म धर्यो शुभ ध्यांन । चपापुर तैं मुक्ति मिलान ॥६॥

दोहा

आषाढ बदि छठि के दिन, गर्भ धर्यौ जिनभान ।
फागुण बदि चौदशि बनी, जनम भोर अवदात ॥७॥
भादव चौदशि ऊजरि, लौंच लियो जिनराज ।
माघ उजेरि दूँज कौं, पंचमगति ठहराइ ॥८॥
इति वासुपूज्य वर्णन

१३. विमलनाथ स्तवन

सोरठा

सागर नौ तीस परजंत, कंपिलापुर नगरीं जनम ।
विमलनाथ अरहत, स्यामा राणी जाइयौ ॥१॥

चौपई

पिता जिनेश जानि कृत वर्म्मं । शूकर लांछण देषत सर्म्मं ॥
साठि धनक दीर्घता जानि । उतने लाष बरषति तिथि मानि ॥२॥
कनकवर्ण अरु इक्ष्वाकुल । पोषसीन जनमथै भयो सतोल ॥
राजरिद्धि साधी सब देव । छप्पन गणधर करत जु सेव ॥३॥
जंबू वृष्य सघन सुविसाल । लीनौ तपु तहां दीनदयाल ॥
दूजें दूधु लीयौ गोक्षीर । नदराव दाता बरवीर ॥४॥
महापुरुष पाटन नृप जांनि । सांझ समैं भयो केवलज्ञान ॥
राजनीति सब तजी निदान । समोसरण छह जोजन जानि ॥५॥
सभे जोग शिषर सम्मेद । जानैं मोक्षपुरी के भेद ॥
जेठ बदि दशमी के दिना । माता गर्भ धर्यौ जिन तना ॥६॥
इति विमलनाथ वर्णनं

१४. अनन्तनाथ स्तवन

दोहरा

सागर नौ पूर भए, ता पीछैं जु अनंतु ।
जिनतैं जग उद्दित भयौ, चौदशि व्रत सु महंतु ॥१॥

चौपई

अवधपुरी राजा श्रीसेन । सुरजा देवी माता जैन ।।
सेही लाछण है पद जम । धनुक पचास शरीर उतंग ।।१।।
आव करी लाष तीस बरष । कुल इक्ष्वाक जनमते हरष ।।
कनकवर्ण चौवन गणधार । तीन जन्म लैं भई सम्हारि ।।२।।
राज विभूति तजी तप धर्यो । लोच विरष पीपर तल कियो ।।
विशाषभूति धर्मपुर राय । दूध तीन दिन आहार कराइ ।।३।।
केवलज्ञान साक्ष अनुसर्यो । समोसरण धनपति विस्तर्यो ।।
पंचअर्द्ध जोजन के मान । अंतरीक्ष गति ताकी जान ।।४।।
उर्म जोग महाबल वीर । गिरिसम्मेद तैं शिवपद धीर ।।
कार्तिक बदि परिवा के दिनां । माता गर्भ धरयौ प्रभु तना ।।५।।

दोहरा

जेठ स्याम चौदशि जनम, अरु बारमि कौं ग्यान ।
चैत्र बदि मावस विमल, ता दिन तप निर्वान ।।६।।
इत्यनन्त वर्णन

१५. धर्मनाथ स्तवन

सोरठा

च्यारि उदधि ना माहिं, पौन पल्लि घट जानियें ।
जब इतनें बीताहिं, धर्मनाथ जिन अवतरे ।।१।।

चौपई

रतनपुरी श्री भानु नरंद । राणी सुव्रतति जिनचंद ।।
बरष लाष दश हीरा रेष । कुरुवंशी कंचन सम देष ।।२।।
पैंतालीस धनुक वपुसार । दूं चालीस सग गणधार ।।
भव तीसरे कर्म छय भए । राजत्यागि तपकौ परणये ।।३।।
दधि परनी को रूप अनूप । तातर प्रभु जु नगन सरूप ।।
गह्यो क्षीर दूजै दिन जानि । वट्टमानपुर नगर बषान ।।४।।
दानपति राजा धरसैंन । सांझ समें भयो केवलअैन ।।
समोसरण जिनको जानिये । जोजन पाँच तनौं मानिये ।।५।।

ठाढे जोग जिनेश्वर भए । गिरि सम्मेद पंचम गति गए ॥
सुदि पांचें वैशाष जुमास । श्री जिनवर जू गर्भ निवास ॥६।
माघ सुदि तेरसि जब ठई । जनम धनद ज्ञान रिद्धि भई ॥
जेठ उज्यारी चौथि बखान । भए तपोधन श्रीभगवान ॥७॥
पूस सुदि पून्यम के दिना । मुक्ति महोछव आनंद घनां ॥
अतर पावपल्लि उनमानि । सहस करोरि वरष घटि आंनि ॥८॥

इति धर्मनाथ वर्णनं

१६. शांतिनाथ स्तवन

दोहरा

इतनौ काल गएं भयौ, पुन्यतनौ बलसार ।
षोडशमो जिनराज गणि, शांतिनाथ अवतार ॥

चौपई

गजपुर विश्वसेन महिईश । ऐरादेवी माता जगदीस ॥
मृग लांछण लष वरष प्रमान । कनकवर्ण कुरुवंशी जान ॥२॥
काय धनक चालीस उत्तग । षट और तीस जु गणधर संग ॥
द्वादश भवतै समिकत बोन । राज विभूति तजी छिणमान ॥१३॥
नंदिक रूक्षतरें तप जोइ । षीर गह्यौ बीतें दिन दोइ ॥
सुमनस पुर राजा प्रिय मित्र । भयौ दानपति परम पवित्र ॥१४॥
केवल भयो सांझ के समें । गिर सम्मेद ठाढे शिव रमें ॥
समोसरण ले आये देव । जोजन चारि अर्द्ध करि सेव ॥१५॥

दोहा

भादव बदि जु सप्तमी, लयौ गर्भ अवतार ॥
कारी चौदशि जेठ की, जनम तपोधन बार ॥६॥
जेठ बदि तेरसि दिवस, केवल ज्ञान कल्याण ॥
पूस उजेरी दशमि कौ, पायो पद निर्वाण ॥७॥

इति शान्तिनाथ वर्णनं

१७. कुंथनाथ स्तवन

सोरठा

सहस कोरि गए वर्ष, रत्नवृष्टि गजपुर भई ।
कुंथुनाथ परतष्य, सूरराय के ग्रहभए ।।१।।

चौपई

श्री राणी माता जिन जानि । अजारुप लाछण पहिचानि ।।
सहस पच्यानवै वर्ष की आव । धनक तीस करि काय उचाव ।।२।।
हेमवरण कुरुवश प्रधान । गणधर पांच तीस जुत जान ।।
तीनि भवातर तै हिय चेत । राज त्याग कियो तप सो हेत ।।३।।
उत्तम तरूवर तिलक बषान । तातर प्रभु कियो लौंच विधान ।।
मदिरपुर वरदत्त नरेश । ताके क्षीर धट्यौ जु जिनेश ।।४।।
केवल लह्यौ समैं दिन अत । ठाढे जोग भए अरहत ।।
समोसरण है जोजन च्यारि । गिरि सम्मेद ते मुक्ति पधार ।।५।।

दोहा

सावन वदि दशमी प्रकट, गर्भवास प्रभुलीन ।
वैशाष सुदि दसमी जनम, जानौ भव्य प्रवीन ।।६।।
सुदि वैशाख की प्रतिपदा, तप अरु ज्ञान समाज ।
तीज उजेरि चैत की, शिव पहुँचे जिनराय ।।७।।

इति कुंथनाथ वर्णनं

१८. अरनाथ स्तवन

सोरठा

वरष हजार करोरि, अनुकर्म्मै जब थिर गए ।
अर जु नाथ अवतारि, गजपुर नयर सनाथ किए ।।१।।

चौपई

पिता सुदर्शन देवी माय । लाछण नंदावर्त्ती दिखाइ ।।
सहस चउरासी वृष जीवत । कुरूवंशी हाउ सब कंत ।।२।।
धनक तीस उत्तंग शरीर । तीनि तीस गणधर बलवीर ।।
तीन जनम तैं आपा लष्यौ । राज समाज सकल तहाँ नष्यो ।।३।।

वृक्ष आंब को उत्तम जोइ । ता तर तपु लीयौ थम षोइ ॥
अपराजित गजपुर भूपाल । ता घर वटचौ क्षीर किरपाल ॥४॥
केवल उपज्यौ साहु प्रवीन । समोसरण जोजन अर्द्ध तीन ॥
गिरि सम्मेद तैं उभै जोग । मुक्ति बधू स्यौ भयो सजोग ॥५॥
तीज उजेरी फागुण मास । ता दिन कियौ गर्भ निवास ॥
अघहन सुदि परिवा शुभ कर्म्म । इंद्रनि कियौ महोछव जन्म ॥६॥

दोहा

चैत उज्यारी पूर्णिमा, तप लीनौ भगवान ।
आघहन सुदि चतुर्दशी, पचम ज्ञान विधान ॥७॥

इत्यरनाथ वर्णन

१६. मल्लिनाथ स्तवन—

सोरठा

अंतर कह्यौ विचार, चौवन लाष जु बरष कौं ।
मल्लिनाथ अवतार, मिथिला नयरी जानियैं ॥१॥

चौपई

पिता कुंभ हरिवशी गोत । प्रभावती का कौष उदोत ॥
लाछण कलस वर्ण तनु हेम । बीस आठ गणधर सौं प्रेम ॥२॥
पचवन सहस वर्ष की आव । धनक पजीस सराहै काय ॥
जाती समरण तीनि भव तनौ । कुमार काल दीष्या पद गनौं ॥३॥
अशोक वृष्य तल कीनौ क्षोर । दूजै दिन पीयौ क्षीर न प्रोर ॥
नंदिसेन नैं दीनो दान । चहकहर पुर को राजा जान ॥४॥
केवल रिद्धि निसाकी आदि । जोजन तीस सभा मरजाद ॥
पुरुषाकार जोग की रीति । गिरि सम्मेद थैं कर्म वितीत ॥५॥

दोहा

चैत उज्यारि प्रतिपदा, गर्भवास आनंद ।
आघहन एकादशी, जनमरु तप जिनचंद ॥६॥

ज्ञान पूस बदि द्वैज कौं, प्रकट भयो ससार ।।
फागुण सुदि की पंचमी, लह्यौ मुक्ति पद सार ।।७।।

इति मल्लिनाथ वर्णन

२०. मुनि सुव्रतनाथ स्तवन

दोहा

बरष लाष षठ बीत तैं, मुनिसुव्रत परगास ।
सुमतिराय पदमावती, राजग्रही मे बास ।।१।।

चौपई

कूरम चिह्न दीपै निसांन । तीस हजार बरष लौं जान ।।
बीस धनक दीरघ जिनदेव । स्याम वरण हरिवंश कहेव ।।२।।
तीन जनम तें ससय गई । चंपक तरुवर दीष्या लई ।।
विश्वसेन मिथिलापुर धनी । दान दियौ करि विनती घनी ।।३।।
दूजे दिन स्वामी बलवीर । सब तजि लीनौं उत्तम धीर ।।
राजरिद्धि तजि रवि के अंत । भए केवली श्री अरहत ।।४।।
अष्टादश गणधर मंडली । द्वादश सभा मधि कर रली ।।
समोसरण धनपति तब रच्यौ । अर्द्ध जुगम जोजन कौ षचौ ।।५।।
बिनु बैठें कियौ आतमकाज । गिरि सम्मेद पर मुक्ति समाज ।।
साबन बदि दुतिया गुण सनी । गर्भ कल्यानक रचना बनी ।।६।।

दोहा

बैशाख बदि दशमी विमल, जनमरु तप परधान ।।
बैशाख बदि नौमी कही; उपज्यौ केवलज्ञान ।।७।।
फागुण बदि की द्वादशी पचम गति के ईश ।
करैं महोछव भगति वर, नर तिरयंच सुरीस ।।८।।

इति मुनिसुव्रत वर्णनं

२१. नमिनाथ स्तवन

सोरठा

बरष पंचलाष आनइनिहू को जब होइ गये ॥।
उपजे नमि भगवान, मिथिलानगरी विजय घर ॥१॥

चौपई

वीरा राणी जननी जैन । नीलोपल लांछण पद ग्रैन ॥
पन्द्रह धनुक ग्ररु कंचन रंग । दश हजार बरष लौं संग ॥२॥
तीनि जनम थैं छाड्यौ कोह । कीनौ हरिवंशनि स्यौं मोह ।
परिग्रह त्याग योग को भार । बकुल नंदिसेनि नैं कीनो दांन ॥३॥
नेमिदत्त सयोगी राय । दूजै दिन गोक्षीर चटाइ ॥
केवल उपज्यो निस की ग्रादि । समोसरण द्वै की मरजाद ॥४॥
वांनी मलें दश ग्ररु तीनि । गणधर सभा चतुर परवीन ॥
जिन जू ठाडे शिवपुर गए । गिरि सम्मेद कल्याणक ठए ॥५॥

दोहा

क्वार ग्र धेरि द्वंज को, गर्भ कल्याणक होइ ।
बदि ग्राषाढ़ दशमी दिना, जनम महोछव सोइ ॥६॥
परिवा स्याम ग्राषाढ की, दीक्षा लई जिनेश ।
ग्राघहन सुदि एकादशी, उपज्यो ज्ञान महेश ॥७॥
बदि चौदश वैशाष की, गमण कियौ शिव ग्रोर ।
कर्म रूप ग्ररिमर्दि कैं, भए प्रतापी जोर ॥८॥

इति नमि बर्णनं

२२. नेमिनाथ स्तवन

सोरठा

ग्रसी तीन हजार, ग्रर्द्ध साल बरष में ॥
जदुकुल तारणहार, नेमिनाथ द्वारावती ॥१॥

चौपई

सिवा देवी राणी जिनमात । समुद विजय राजा गणितात ।।
लाछण संख सहस वर्ष आव । स्याम वरण दस धनुक उच्याव ।।२।।
ग्यारह गणधर सेवा रहैं । समकित जनम दशक तैं कहैं ।।
बिवाह समय छोड्यौ ससार । मीडासिगी तरु ढलैं तप धार ।।३।।
बीरपुरी राजा नरदत्त । दई षरी गोक्षीर पवित्त ।।
कैवल अरुन उदैं संचरयौ । जोजन देढ सभा थल कह्यौ ।।४।।
पद्मासन प्रभु जोग विचार । मुक्ति स्थल प्रभु कौ गिरनार ।।
छठि उज्यारी कातिग मास । जिनवर भयो मर्म निकास ।।५।।

दोहा

सुकल पक्ष सावनी, तिथि षष्ठी शुभवार ।
जन्म कल्याणक और तप, इन्द्रनि कीयौ विचार ।।६।।
काती सुदि एकादशी, प्रगट्यौ ज्ञान महत ।
सुदि आषाढ की अष्टमी मुक्ति गए अरहत ।।७।।

इति नेमिनाथ वर्णनं

२३. पार्श्वनाथ स्तवन

दोहा

वरष पांचसैं गत गये, जगमे कियो प्रकाश ।
नागराय आसन दियें, पापहरण जिनपासि ।।१।।

चौपई

अश्वसेन बानारसी गांम । वामा जिनमाता को नाम ।।
नौ हाथैं करि काय बिशेष । एक शत वरष आवकौ लेश ।।२।।
उग्रवश तनु दुति है नील । ग्यारह भवतैं साध्यो शील ।।
धरयौ कुमारैं दीक्षा रुप । तरवर तरु परम अनूप ।।३।।
दाषपुर धनदत्त नरेश । षीर षरी दीन्ही परमेश ।।
निश के समैं पंचमों ग्यान । समोसरण सवा जोजन मांन ।।४।।

दश गणधर ज्ञानी राजंत। जिन प्रतिबोधें जीव महंत ॥
ठाढे जोग भयो निर्वाण। गिरि सम्मेद शिखर शुभ थान ॥५॥

दोहा

कृष्ण दूंज बैसाख की, गर्भवास अवतार।
पूस बदि एकादशी, जनमरु तप अधिकार ॥६॥
चौथि जु कारी चैत की, प्रगट्यौ पंचम ज्ञान।
सावन सुदि सातैं दिना, जिनजू कौ निर्वान ॥७॥
इति पार्श्वनाथ वर्णनं

२४. महावीर स्तवन

दोहा

वर्ष अठासी के गए, महावीर जिनराय।
कुंडलपुर नयरी जनम, धन्य जु त्रिशला माय ॥१॥

चौपई

पिता सिधारथ लांछण सिंघ। सात हाथ की काय उतंग ॥
प्रभु की आव बहत्तरि वर्ष। गणधर ग्यारे हैं परतष्य ॥२॥
उग्रवंश देही दुति हेम। तेतीस जनम थें बांध्यो येम ॥
योग धर्यो तब राजकुमार। सघन वृक्ष शालिर को सार ॥३॥
कुमार सें कुंडलपुर धनी। दूधवरी ताके घर बनी ॥
केवल उपज्यो साँझी बेर। समोसरण जोजन के फेर ॥४॥
पावापुरी धर्यो दिढ ध्यान। ठाढे जोग भए निर्वान ॥
आषाढ सुदि छठि गर्भ निवास। जनम चैत सुदि तैरस तास ॥५॥
अगहन बदि ग्यारसि तप जानि। बैशाख बदि दशमी को ज्ञान ॥
कातिग बदि मावस पुनीत। सिद्ध भए सब कर्म जितीत ॥६॥
इति श्री वर्द्धमान वर्णनं

सरस्वती वन्दना

चौपई

जिनें सुमिर प्राणी पग धरें। सारद तनी भगति अनुसरें ॥

श्वेत वस्त्र करि बीना लसैं । सुमिरत जाहु कुमति सब नसैं ।।१।।
मुख जिन उद्भव मंगल रूप । कवि जननी और परम अनूप ।।
करि अंजुली कर शीशु नवाइ । करो बुद्धि कौं मोहि पसाइ ।।२।।
जनम जरा मरण विहंड । सोभित छह दर्शन तुंड ।।
रुनु झुण पग नेवर झणकार । अविरल शब्द तनी दातार ।।३।।

इति मंगलाचरणं

मानुषोत्तर वर्णन

नमिता चरण सकल दुख दहौं । जैनवाल उतपति सब कहौं ।
अधो मधि है लोकाकाश । पुरुषाकार बषानैं तास ।।१।।
लोकमध्य हैं उभी त्रश नालि । चौदह राजू उचित विसाल ।।
चरण स्थल जुग वर्ने निगोद । नित्य इतर जिन वचन बिनोद ।।२।।
अनंतानंत जीव की षांनि । कबहूं ताकी होइ न हानि ।।
तहां आवतनी न मरजाद । पंच जीव यह रीति अनादि ।।३।।
जितने जीव मुक्ति नित जाहिं । तितनें इहांतें निषराहिं ।।
घटै नहीं निगोद की रासि । बढ़ै न सिद्ध अनत बिलास ।।४।।
अधोलोक तनौं परमांन । कटि प्रदेश तें नीचो जानि ।।
ऊपर ऊदर लिलाट परजत । ऊर्द्ध लोक की हद् गणत ।।५।।
मध्यलोक उद-स्थल गनौ । द्वीप समुद्र संख्या बिनु भणो ।
पड्यो षेत्र नाभि के ठाम । मानुषोत्र है ताकौ नाम ।।६।।
मानुषोत्र मरजादा जानि । द्वीप अढाई सागर मानि ।।
पहिलै जंबूदीप बिचार । जोजन लाख एक बिस्तार ।।७।।
तीनि लाष हैं बलयाकार । मध्य सुदर्शण मेरु पहार ।।
जोजन लाख तुंग है सोइ । जोजन सहस भूमि में होइ ।।८।।
ताके पूरब पश्चिम भागणो । क्षेत्र तीस द्वै अविचल भणौं ।।
भरत ऐरावत द्वै ए जानि । उत्तर दक्षिण परे बखांन ।।९।।
ए सब मिलि भए तीस रु चारि । तहां द्वै शशि द्वै रवि को उजियार ।।
द्वीप समुद्र पर आगें जांनि । दुगुण दुगुण इनकौ परमान ।।१०।।

तामैं ग्रौर जु परवत पड़े । पदम ग्रह ऊपरि तिनि चड़े ।
श्री धृत आदि जुदे ब्यारारि । तिनकौं तहां सदैव निवास ।।११।।
तिनतैं नदी चतुर्द्दश चली । अविचल तहा समुद्र है मिली ।।
गंगा सिंधु रोहिता नाम । ग्रोहित ग्रौ हरिता ग्रभिराम ।।१२।।
हरिकांता सीता ए दोइ । सीतोदा नारी ग्रवलोइ ।।
नरकाता ग्रौ सुवर्ण नागनी । रुप्यकुला रक्ता फुनि सुनि ।।१३।।
रक्तोदा चौदह ए नाम । स्वच्छोदक तिनमें ग्रभिराम ।।
मतापावलि लवनोदधि धीर । जोजन लख द्वै गहन गभीर ।।१४।।
वारी जलनिधि बहु जंतुनि भर्यो । ठोर ठोर बडवानल चर्यो ।।
मिष्टोदक पीवै सब सोइ । उदधि मधि नहिं रंच समोइ ।।१५।।
द्वीप धातुकी ताचोफेरि । जोजन लाख चारि में मेर ।।
विजयाचल जानौं गिरि नाम । गिरि प्रति भई ऐरावत ठाम ।।१६।।
सलिता गिरि प्रति दस ग्ररु चारि । पूर्व रीति हैं लेहु विचारि ।।
ता चा फेर समुद्र कौ नाम । कालोदधि मीठो जल ठाम ।।१७।।
ग्राठ लाष जोजन विस्तार । वेढ्यौ वज्र वेदि ग्रपार ।।
ता पाषल पुष्कर वर दीप । जोजन सोलह लाख समीप ।।१८।।
जोजन ग्राठ लाख विस्तार । पुष्करार्द्ध ता माहि विचार ।।
पूरब पश्चिम गिरि ग्रभिराम । मंदर विद्युत माली नाम ।।१९।।
मेरु संबंध द्वै जे गणो । भरथ ऐरावत चारिजु भणौं ।।
पूर्व विदेह साठि ग्ररु च्यारि । तिनकौं प्रलय न कहूं लगार ।।२०।।
नदी चतुर्द्दश गिरि प्रति जांनि । सत्तरि ग्रोर एक सो ग्रांनि ।।
इहां लौं मानुषोत्तर पिहचानि । देव विनां कोऊ ग्रावें न जानि ।।२१।।

यह ग्रनादि की विधि कहवाइ .... ।।

ग्रब सब क्षेत्रनि कौं परमांन । सत्तरि ग्रौर एक सौ जांनि ।।
तामें दश ऐरावत भरथ । सौ ग्रौर साठि विदेह समर्थ ।।२२।।

विरहमान वरतैं जिन बीस । सदा साश्वते प्रभु जगदीस ॥
एक तनो जब होइ निर्वान । दूजे को होइ गर्भ कल्यान ॥२३॥
क्षेत्र सदा अविनश्शी जोइ । सदाकाल चौथई तहां होइ ॥
विनाशांक तिनि मैं अब लहौं । भरत ऐरावत दश जे कहौं ॥२४॥
कछू न अविचल दीसें तहा । छहो काल वरतें हैं जहां ॥
सुनि सो साठ क्षेत्र को हाल । तहां सदा चतुर्थम काल ॥२५॥
मुक्तिपथ सम्यक् परिकार । तहा तें चलतु रुकन लगार ॥
जब दशमे पचम परवरें । कोऊण मुक्ति पंथु पगु घरें ॥२६॥
जो कोई जीव सम्यक्ती होइ । बारह अनुव्रत पालें सोइ ॥
ताके फल विदेह अवतार । चेतनि ह्वै जु करें सम्हालि ॥२७॥
सुख सो मुक्ति रमणि को वरें । कर्म उपद्रव सो निर्ज्जरै ॥
अल्प बुद्धि सूक्षम मम ज्ञान , अढाई दीप तनो बखान ॥२८॥
कर्यौ सक्षेप पनै विस्तार । ब्योरौ कहत ग्रन्थ अधिकार ॥
जा कौ सब ब्योरे की चाह । बड़े ग्रन्थ देखो अवगाह ॥२६॥

इति मानुषोत्तर वर्णनं

असंख्यात अनंत गणित भेद वर्णन

या तैं द्वीप समुद्र जे और । दुगुण दुगुण गणि तिनि कौं ठोर ॥
अंसें करि भाषै असख्यात । स्वयभू रमन अत विख्यात ॥१॥
लेखो असख्यात कौ गुणौं । जिनवाणी जैसो कछु सुनौं ॥२॥
तब पहीले मे सरसौं भरें । सो सरसो सुर निज करि धरें ॥
द्वीप एक प्रति समुद्र जु एक । डारतु जाईय है जु विवेक ॥३॥
जासु द्वीप मैं खूटै सोइ । फिरि गरता वाही सम जोइ ॥
पूरे होत एक हर करें । सो पहिलै गरता में ले भरें ॥४॥
अवगरता जो द्वीप समान । जहा सरसौं षूटी ही जांन ॥
ताकी सरसो लेइ उवाइ । एक एक फिरि डारतु जाय ॥५॥

एक रहैं जब पाछैं फिरैं । ताहि प्रथम गरताले भरैं ।।
फिरि चूटै ता द्वीप समान । गरता एक बनै धरि ग्यान ।।६।।
ता घर सरसौं फिरि उचकाय । द्वीप समुद्र एक डारतु जाय ।।
एक रहैं फिर ताहू लाइ । पहिले गरता मध्य भराइ ।।७।।
जब वह भरै करत इह रीति । लै उगइ सुनौ रे मीत ।।
एक तृतीय गरता कर सोइ । पहिले कल्पित गरत समोइ ।।८।।
करि एकत्र जु डारतु जाइ । नाषत नाषत एक रहाइ ।।
करि गरता गिरि ताहि समान । एक बचे पहिले धरि म्रान ।।९।।
अनुक्रम फिरि गरता वह भरे । सब ले एक दूजे मे करै ।।
सो सब ले कल्पित सो भेल । द्वीप समुद्र प्रति ठानैं खेल ।।१०।।
फिरि पहिले के भरतो जाइ । पूरण भए तो उचकाय ।।
एक एक दूजे मे चलैं । तब वह रीति दूसरो सले ।।११।।
एक तीसरे सर्व जु गोद । कल्पित ले फिरि करैं विनोद ।।
वह सब घटि जब एक रहत । फिरि दूजो गरता मेलत ।।१२।।
पूर्व रीति जब जब वह भरैं । तब तब एक तीसरौ करैं ।।
वह विधि भरै तीसरो जबैं । चोथो एक जु डारै तबैं ।।१३।।
ग्रौर सकल कर ले उचकाय । कल्पित गर तासौं जुर लाइ ।।
करतु चलैं पहिली की रीति । एक रहैं तीजै भरि मीत ।।१४।।
जब जब तीजो भरतौ आइ । एक एक चोथौ जु भराइ ।।
ग्रैसी रीति चतुर्थम भरे । पूरौ भए सकल उद्धरे ।।१५।।
जब जब जहां छेहली सरसौ जाइ । स्वयम्भू रमण समुद्र कहाइ ।।
ग्रसंख्यात याही कौ नाम । मेरु तैं अर्द्ध रजू सो ठाम ।।१६।।
मध्य लोक कौ अतर जोइ । बात वलय वेढ्यो अब सोय ।।
घात असख्या ग्रौर असख्यात । नाम अनत ही विख्यात ।।१७।।

दोहरा

जिनवर मुख उदभव प्रगट, श्रुत अगाध सिद्धांत ।।
तिनमैं मुनिमैं बरनई, गरण सत असख्य अनत ।।१८।।

इति असंख्यात अनंत गणित भेद वर्णन

योजन गणित भेद वर्णन

चौपई

अब सुनि आवपलिका कथा । जिनवानी भाषी है जथा ।।
राई आठ तनो तिल एक । एक जव वसु तिल यह विवेक ।।१।।
जव वसु उदरे उदर मिलाइ । सो तो आगुल एक कहाइ ।।
द्वादश आगुल मामे कोइ । एक विलादि कहावें सोइ ।।२।।
जग्म विलादि जहा लौ दोर । कहियें हाथ एक सा ठोर ।।
लीजें हाथ चारि को दड । ताको नाम कहायें दंड ।।
द्वै हजार जब गनता जाइ । सो तो एक कोश ठहराइ ।।३।।
चारि कोश जब एकतकरै । ताको लघु जोजन उच्चरै ।।
जब गणियें जोजन सो पच । जोजन महा एक गरिण सच ।।४।।

इति जोजन गणित भेद

पल्यायु भेद वर्णन

चौपई

पलि आवकी गणियें जदा । षनि गरता लघु जीजन तदा ।
आडो ठाडो जोजन एक गहरौ तितनौ यहै विवेक ।।१।।
भोग भूमि मेढा के बाल । जो दिन सात तना हौइ बाल ।
ताइ षडु अनभागी करैं । रौंदि दावि ता कूपहि भरै ।।२।।
चक्रीरथ सुर गगापूर । करि पासकै ताकौं चकचूर ।।
एक सप्त वर्ष बीति जब जाइ । तहां तें एक षड निसराइ ।।३।।

अनुक्रम कूप रिक्त यह होइ । आव पलि कहावै सोइ ॥
जोतिस भीतर आव प्रमाण । इनही पलि नक्षी तु जानि ॥४॥

इति पल्यायु भेद

पल्यसागर भेद वर्णन

चौपई

अब सुनि सागर आव प्रमान । ज्यौं श्री जिनवर करयौ बखान ॥
कूप महा जोजन को मंड । तब अनभागी आवै षड ॥१॥
ज्ञान शक्ति सौ सत षड करैं । तासु वा गरताले भरै ॥
बीतें एक शत वर्ष विकार । एक केश करि षड निर्द्धार ॥२॥
खाली होइ कूप यह जबै । सागर पल्य कहावै तबै ॥
पलि जहां दश कोराकोरि । तब इक सागर सख्या जोरि ॥३॥

इति पल्यसागर भेद वर्णनं

राजु गणित भेद वर्णन

चौपई

अब सुनि रज्जू गणित को भेद । जैसो जिनवर भाष्यो वेद ॥
महालाष जोजन को कूप । पहिलौ ऊडौ पूरव कूप ॥१॥
सागर पल्य कुवा को वार । एक षड है लीया विचार ॥
ताको षड तब एक सौ करै । ज्ञान शक्ति सौं कूपै भरैं ॥२॥
एक षड तब व्हां ते कढे । मेरु सुदर्शन माथै चढे ॥
जोजन लाख तनो परिमान । एक षड धरि भो फिरि आनि ॥३॥
इह विधि धरतु जिनि कटे सोइ । रज्जू पल्य तब ही अवलोइ ॥
कोराकोरी दश पल्यं जबैं । सागर एक कहावै तबै ॥४॥
जब सागर दश कोराकोरि । सूचि एक तहां तु जोरि ॥
सूचि आइ दश कोराकोरि । धनरो बचन सुनि मोरि ॥५॥

दश कोराकोरि धनरोम । ताकी होइ एक पदरोम ।।
वे दश कोराकोरी जब वहैं । तब जग सेठि नाम जिन कहैं ।।६।।
ता जग सिद्ध को सतम भाग । गणत एक रज्जू यह लाग ।।
ऐसे चौदह रज्जु प्रमान । ऊंचे तीनि लोक को जांन ।।७।।
रज्जू तीन सें तेतालीस । घनाकार वरण्यो जगदीस ।।
अब सुनि पूरब की मरजाद । जामैं लहियै अंतर आदि ।।८।।

इति रज्जू गणित

दोहा

सत्तरि लाख करोरि मित, छप्पन सहस करोरि ।।
इतनें वरष मिलाइये, पूरब संख्या जोरि ।।१।।

इति पूरब गणित

षट्काल वर्णन

चौपई

मध्यलोक सब रज्जु प्रमान । श्रुत सिद्धान्त करैं बषान ।।
अब सुनि छहों काल व्यौहार । कितक जीव कैसो विस्तार ।।१।।
अंतकाल नासै दश षेत । भरत ऐरावत भूमि समेत ।।
छहों काय प्राणी नही दीस । तब एक जुक्ति करै जसईस ।।२।।
जुगल बहत्तरि ले उछंग । विजयारध धर लेउ प्रसंग ।।
तब फिर दशो षेत्र निमये । जैसे के तैसे वेदिये ।।३।।

सुषमा सुषमा काल वर्णन

चौपई

सुषमा सुषमा प्रथम जो काल । आयु प्रवर्तै तहां विसाल ।।
जब उनि जुगलनि इन्द्र विचार । दश षेत्रनि मैं करे संचार ।।४।।
अब सुनि काल रीति क कछु कह्यो । जितिक प्रमाण व्यवस्थिति लह्यौ ।।
सागर कोराकोरी चारि । प्रथम काल मर्याद विचार ।।५।।
जुगल जीव वरतैं तहि काल । सुंदर कोमल अति सुकमाल ।।
मति श्रुति अवधि जु तीनो ज्ञान । उपज तहां थैं साथ बखांन ।।५।।

तीन पल्य की पूरी आय । छह हजार धनक की काय ।।
बेर प्रमाण आहार जु करै । सोऊ तीनि दिवस में लहैं ।।७।।
पूरै दश विधि उत्तम दान । कल्पवृक्ष सब के ग्रह जान ।।
सो तरु दश प्रकार बरनये । तिनि के नाम सुनो गुण जये ।।८।।

कल्प वृक्षों के नाम

चौपई

तूरज मध्य विभूषा जानि । स्रग अरु ज्योति द्वीप गुण खानि ।।
ग्रह भोजन भाजन अरु भास । सुनि अब इनको दान प्रकास ।।९।।
मद्य वृष्यमादिक दातार । तूर्य देय वाजित्र विकार ।।
आभरण देइ विभूषा रुप । स्रग तरु देइ पुष्प विनु दूष ।।१०।।
सूर्य समान हरै तम जाल । ज्योति वृक्ष असो गुणमाल ।।
दीपदान दीप तैं जानि । ग्रह दाता ग्रह रुप बखान ।।११।।
भोजन तरुवर भोजन स्यामि । भाजन पातर वृक्ष सौलागि ।।
बसन सकल देइ वस्त्र उदार । कल्पद्रुम ए दश परकार ।।१२।।
इहिं विधि सुष सौ काल बिताइ । आव जहां नौ मास रहाइ ।।
नारी गर्भ होइ तिहिं समै । पूरौ होइ जुगल तह जमैं ।।१३।।
माता छीक पिता जभाइ । ततषिणवे बदलै परजाइ ।।
सकल शरीर जाइ षिरि ऐसें । पवमैं तै कपूर उड जैसे ।।
कर्म बेदनी की नही पीर । अगनी दाह नहीं करै शरीर ।।१४।।
वे दोऊ मरि स्वर्ग अवतरे । जिनवाणी प्रकाश यो करै
दोऊ शिशु अगुठा रस पीय । दिन उंचास तरुण वपु कीय ।।१५।।
जनमतै भया वह नव पांन । तरुण भये पति नारी जांन ।।
सनै सनै बहु बीतै काल । परिवर्त्तौ दूजौ गुणमाल ।।१६।।

सुषमा काल वर्णन

चौपई

सुषमा नाम ताको स्तुत कहैं । जुगल जीव तामें हू रहैं ।।
कोराकोरी सागर तीनि । काल मर्यादा कही नवीन ।।१७।।

दोइ पल्य प्रायु उतकिष्ट । धनसहस्रद्वै काय वरिष्ठ ।।
लेइ प्राहार गये दिन दोइ । परमित तसु बहेरा जोइ ।।१८।।
कल्पवृक्ष करैं मध्यम दान । महिमा काल तनि यह ज्ञानि ।
इह विधि काल दुसरौ जाइ । काल तीसरौ तब सरसाइ ।।१६।।

सुषमा दुषमा काल वर्णन

सुषम दुषम है ताको नाम । जीव जुगल ताके अभिराम ।।
कोरा कोरी सागर दोइ । काल तनी मर्यादा होइ ।।२०।।
धनक सहस दोइ की काय । एक पल्य की प्राव विहाय ।।
लेइ प्राहार एकांतरै जीव । कह्यौ प्रावले भरि जु सदीव ।।२।।
दान जघन्य कल्प तरु देहि । जीव सकल प्रारति से लेहि ।।
अष्टम प्रस पल्लि को कह्यौ । तृतीय काल मे बाकी रह्यौ ।।२२।।
गुप्त भए कल्पद्रुम घोर । जुगल धर्म तब लइ मरोर ।।

चौदह कुलकर

भया चतुर्दश मनु प्रौतार । चद्र सूर उगे निरधार । २३।।
पहलो कुलकर प्रतिश्रुत जान । दूजो सनमति सुभग बखानि ।।
क्षेमकर तीजे को नाम । क्षेमधर चौथो अभिराम ।।
सीमकर पचम मनुराय । सीमधर षष्टम बरलाय ।।
विमलवान सप्तम बर्नयो चक्षुष्मान तहा अष्टम भयौ ।।२५।।
प्रसेनजित नोमौं जानियें । अभिचन्द्र दशमौं मानिये ।।
चन्द्रप्रभ ग्यारहौं बषान । हेमदेव द्वादशमो जान ।।२६।।
प्रस्नजीत तेरमौं मनुचन्द । चोदहो कुलकर नाभिनद ।।
परम विशुद्ध सकल गुणलीन । सब जीवन मे महाप्रवीन ।।२७।।
लोप होइ कल्पद्रुप ज्यो ज्यौं । कुलकर भाषै प्रागै त्यों त्यो ।।
भावी काल बखानै यथा । कहैं सकल जीवन सो कथा ।।२८।।

दोहा

इह विधि चौदह ए भए, कछु कछु अन्तरकाल ।
तीन ज्ञान सजुगत सब, मति श्रुती अवधि बिसाल ।।२९।।
अब सुनि चौथे काल की, महिमा अधिक अनूप ।
प्रगटै चउबीसी जहाँ, भवहर मुक्ति स्वरूप ।।३०।।

चौपई

तहाँ मुक्ति को मारग खुले । तजि मिथ्या सब उद्दिम रूलैं ।।
सागर कोराकोरी जानि । सहस बयालीस घटती मानि ।।३१।।
इह मर्यादा चतुर्थम काल । आयु कोडि पूरव विसाल ।
धनुक पांचसै काय जु कही । अनुक्रम घटत जाइ जो सही ।।३२।।
जुगल धर्म्म मिट्यौ तिहिकाल । प्रकटे सकल जीव गुणमाल ।
असि मसि कृषि वाणिज्य उपजाइ । गये कल्पतरु यह अधिकाइ ।।३३।।
मेघ पटल जुरि बर्षा करैं । तिनकी वृष्टि कृषि बहु करै ।
बादल भुवि तै जोजन चारि । ऊँचे रहैं स्रवैं जलधारि ।।३४।।
सबको बेल प्रमाण आहार । निति प्रति भुंक्तं होइ करार ।
हैं सुकाल सदा तिहि काल । परैं न कबहूं नहीं अकाल ।।३५।।
अब सुनि पंचम दुष विचार । रहैं वर्ष इकईस हजार ।।
मुक्ति पथ को भयो निरोध । रहै न तत्व पदारथ बोध ।।३६।।
सो और बीस वर्ष की आयु । भली त्रिभंगी होइ बधायु ।।
अशुभ त्रिभंगी साधन हार । अल्प भाव धरि दुषी अपार ।।३७।।
कहौ त्रिभंगी को सुनि भेद । जैसो जिनवर भाष्यो बेद ।।
बाल तरुण बिरधा पे चार । त्रिभंगी प्रथम याहि विचार ।।३८।।
तिनि के उदै मध्य अरु अस्तु । दुतीय त्रिभंगी भेद प्रशस्त ।।
निर्धन धन बालरहि तसु जान । तृतीय त्रिभंगी ताहि बखांन ।।३९।।
बीज सबनि कौं मन बचकाय । इनि त्रिभंगनि को परम सहाय ।।
इनि समयनि मेभाव जु होइ । शुभ अरु अशुभ बंधता होइ ।।४०।।
तासु प्रताप आवको बंध । पाप पुण्य ते घटि बधि बध ।।
जितक आयु धारी जाइ धरौ । ताको लेहु भाग तीसरौ ।।४१।।
वामें बधे आगिली आयु । श्री जिनमार्ग यह ठहराय ।।
तहां न होइ जो बंध विचार । भाग करो यह बिधि नव बार ।।४२।।
नवम भाग तीजो वर जानि । आयु समो अन्तमौं सो जान ।।

होइ अब मवंध तहा जो सही । ऐसी जिनवानी तें लही ।।
एक समे गति बार्षे जीव । चार्यौं गति मे फिरैं सदीव ।।४३।।
जीव देह को त्यागे जबै । आनपूरवी आवै तबै ।।
बंधी होइ जोग तिहुकाल । ले पहुँचावै तहाँ सम्हालि ।।४४।।
तासौं मूढ कहैं जमराज । जीव निकासैं करि दुख काज ।।
साढे तीन हाथ की काय । जीव अनेक कहैं मुनिराय ।।४५।।
कृषि तें पोषे जीव शरीर । अलप सुकाल काल बलवीर ।।
सबकी भूष तनौं सुनिमान । फल कुषमाड जानि परमान ।।४६।।
तृप्ति नही भक्षे एक बेर । जेंबें दुपहर साझ सबेर ।।
मध्यम वृष्टि मेघ सब करै । धर्म विक्षिप्ति तही पर वरें ।।४७।।
ता पीछै होइ छठम काल । दुषमा दुषम महा विकराल ।।
मिथ्यादृष्टि सब जीवनि तनी । धर्म्म वासना रंच न गनी ।।४८।।
बेटी बहिन न मानें कोइ । सबैं कुशील नारी नर जोइ ।।
काल मर्यादा कही श्रुत ज्ञान । बरस हजार बीस एक जानि ।।४६।।
हाथ जुगल देही उत्तग । बीस वरष लो आव प्रसग ।
जबकें सहस वर्ष गत होइ । षोडश वरष आव अवलोइ ।।५०।।
कृषि विनाष होइ सब ठोर । जीवे जीव आहार अवलोइ ।।
जलचर नभचर जोवन षाइ । तृप्ति बिना सब क्षुधित फिराइ ।।५१।।
सजम तप नही दीसे रच । पाप अधर्म्म तनो तहा सच ।।
अनुक्रम होइ काल को अन्त । रवि शशि निकट उदैत करत ।।५२।।
तिहि के तेज सकल कौ नाम । वृष्यादिक जे सुष निवास ।
प्रलय समीर बहै परचड । विनासीक सब कहै विहड ।।५३।।
जीव सकल तिथि ऐसी करें । जाइ चतुर्गति मे अवतरें ।।
अवसर्पिणि यह काल कहावे । फिरि उत्सर्पिणी काल प्रभावे ।।५४।।
ज्यो ज्यो अनुक्रम ओरें गिलें । त्यो त्यो उतसर्पिणी उगिलें ।।
छठो पाचमो पहिलो जोइ चौथो तीजे कै सम होइ ।।५५।।
तीजे मे चउबीसी कही । पाप निवार जग निवारण सही ।।
ऐसें फिरित रहै छहकाल । है अनादि कौं ऐसौ ख्याल ।।५६।।

अनन्तानन्त चोबीसी जानि । या लेखें परतक्ष प्रमाण ।।
केवल बिना न जानी जाइ । यातैं अनंतानंत कहाइ ।।५०।।

दोहा

जब जब होइ चतुर्थमे, सतजुग अठतालीस ।
गए चोबीसी सु होइ, तहां हु डासर्प्पिनि इस ।।५८।।
ऊण शलाका पुरुष, जहां दर्प रूप पांखड ।
होई उपसर्ग जिनद कौ, चक्री मान बिहंड ।।५६।।
छहौं काल फिरिते रहैं, ज्यौं अरहठ कौ हार ।
भरथ ऐरावत क्षेत्र मे, जे बरनैं दश सार ।।६०।।

इति षट्काल बर्णनं

ऋषभदेव गर्भ कल्याणक बर्णन

चौपई

अब सुनि तू फिरि उतपत्ति सिष्ट । ज्या जुक्ति जो कही बरिष्ट ।।
तीजें काल अन्त मनु वृन्द । चौदहौं कुलकर नाभि नरिंद ।।१।।
मरुदेव्या राणी कौ नाम । शीलवत सब गुण अभिराम ।।
आयु कोडी पूरब की दीस । काय धनक शत पच पचीस ।।२।।
आयुभूमि कौ सावें राज । सुख साता के सर्वे समाज ।
तीन ग्यान सयुक्त नरिंद । सब जीव कौं मेटें दंद ।।३।।
निसि दिन धर्म नीति सौं काम । दुखी न दीसें काउ तिहि ठांम ।।
ऐसी भाति काल बहु गयो । अवधि सुरपति चिंतितु भयौ ।।४।।
धनपति कौं लियौ तब बुलाइ । जिन आगमन कह्यौ समझाइ ।।
सो आयौ चल आर्य मझार । नगरी रचना रची सवार ।।५।।
नव जोजन चतुरी निरमई । बारह जोजन लांबी ठई ।।
सब कें कनक मई आवास । रत्नजड़ित बहु बिधि परकाश ।।६।।
बन उपवन तहाँ रचे अनूप । घर घर कामिनि परम स्वरूप ।।
बापी कूप तड़ाग अनत । निर्म्मल अंब कमल विकसंत ।।७।।

तब धन पनि भागै नवमास । घर घर बरषाई नग रासि ।।
आई आठ जु देवी तबै । प्रासुक उसथ लाई सबै ।।८।।
जननी की सेवा आचरै । देऊपथ गर्भ षोधना करैं ।।
देह जनित के जिते विकार । दूरी किय नही रहे अहार ।।६।।
जिम माता सोवत सुख चैन । सुपने देखैं पश्चिम रैनि ।।
गज देष्यौ सुर गज सम तोलि । धवल धुरधंर रूप अमोल ।।१०।।
केशरी सिंघ महा बलवान । कमला रूप मनोहर जान ।।
सुन्दर रवि शशि मडल चंग । मीन सुभग चंचल अति रग ।।११।।
पूरण सजल द्वै हाटक रूप । कमल कुलित सर सुभग अनूप ।।
सिंहासन अमुपम अविकार । देखें जननी स्वपन विचार ।।
अमर विमान महा रमनीक । फणिपति सुभग रु सुन्दर नीक ।।
विमल प्रचुर रत्न की रासि । जरन अग्नि उत्तम परगास ।।
ए षोडश सुपनें अवलोइ । दर वेदन भव जाग्रत दोइ ।।१४।।
जिनमाता षोडष देषई । चक्री की द्वादश पेषई ।।
नारायण की देखें आठ । वेदराम की इह श्रुत पाठ ।।१५।।
उत्तम जलसै मुख प्रक्षाल । पहिरे नौतन वसन रसाल ।।
नव सत साज सिंगार अनूप । चलि आई जहां बैठे भूप ।।१६।।
भक्ति जुक्ति सौ सीसु नवाई । राजा की ढिग बैठी जाइ ।।
स्वपन वृत्तांत सकल उच्चर्‌यौ । फल सुनवे को चित्त अनुसर्‌यौ ।।१७।।
सुनत नृप हिय अधिक हुलास । अवधि ग्यान बल फल परगास ।।
नाभिराय फल कह्यौ विचारि ।तुम सुत ह्वं हो त्रिभुवन तार ।।१८।।
प्रथम तीर्थंकर जनम मही । तुम्हरी कूष जानियो सही ।।
प्रथक प्रथक स्वपनें गुणमाल । वर्णन सुनाऊ सुनी उहो नारि ।।१६।।
पहलौ देष्यौ गज मय मंत । तुम सुत ह्वं हैं श्री अरहृत ।।
वीर्य बलादिक ग्यान अनंत । वदे देवी देव अन्नत ।।२०।।
धवल रूप कौ सुनि फल सार । जग जेष्टी जग गुरु सिरदार ।।
इन्द्र नरेन्द्र खगेसर देव । ज्योतिक व्यतर करैं पद सेव ।।२१।।
सिंह प्रताप महा बलवीर । भयो न ह्वं हैं कोऊ न धीर ।।
अनन्त मर्यादा कह्यौ बल तास । अनन्त ज्ञान मैं करै विलास ।।२२।।

सुनि लक्ष्मी दरशन को भाव । बहुतैं लक्ष्मी करैं सहाव ।।
जनमतें इन्द्र मेरु ले जात । करैं कल्याणक धन विपराव ।।२३।।
पुहप दाम को फल जु अनूप । कीरति उज्वल काम सरूप ।।
जस बल्ली पसरी त्रियलोक । हरैं सकल प्राणी का शोक ।।२४।।
हिमकर देषण को परताप । तू सब मेटैं जग आताप ।।
सूरज फल प्रतापी जोर । मेटैं पाप तिमिर की सोर ।।२५।।
क्रीडा करत जु देखें मीन । तू बसतु सुषगर परबीन ।।
पूरण घट को यहै विचार । बिना पढ़ैं विद्या सु भण्डार ।।२६।।
सरवर फुलित तनो फल एह । शुभ लक्षण सब सुत की देह ।।
सख्या सहस आठ की सुनौं । तिनैं सुमिरैं सब पापनि हनौं ।।२७।।
देख्यौ सागर उठत तरंग । केवलज्ञानी पुत्र अभंग ।।
लोकालोक तनो विस्तार । यथा जुगति प्रकटे संसार ।।२८।।
सिंघासन फल एसो जानि । लछिन अनेक मुक्ति निर्वानि ।।
सुर विमान तैं राज समाज । रूप सोभाग बहुत गजराज ।।२९।।
नागरूप जनमत त्रिय ज्ञान । तीन लोक के नाथ बखांन ।।
रत्नरासि फल उत्तम जोइ । सुत श्रुत गुण के सागर होइ ।।३०।।
प्रभु जित अग्नितनें परभाव । ध्यान अगनि बसु कर्म अभाव ।
कलुष दुष्ट संपूरण जारि । तू बसैं मुक्ति रमणी भरतार ।।३१।।
फल सुनि परम अनंदित भई । धर्म बुद्धि अधिक ईसई ।।
सर्वार्थसिद्धि तें चले जगदीस । मुक्ति आव सागर तेतीस ।।३२।।
कारी दूँज आषाढ को मास । मरुदे गर्भ कियौ जु निवास ।।
गर्भ कल्याण पूजो देव । इन्द्रादिक सब करइ सेव ।।३३।।
करैं कुमारी छप्पण सेव । सकल दुहिले पूरहैं हेव ।।
है अनादि की ऐसी रीति । सेवा करैं सबैं धर प्रीति ।।३४।।
निसवासर सब सुख सौं जाइ । नव महीनैं जब पूरे थाय ।।
जननी हृदय परम आनन्द । कब ह्वै हैं सुत त्रिभुवन चन्द । ३५।।

दोहरा

महिमा गर्भ कल्याणक की, सुनो भव्य धरि हेत ।
अघहारी सुख करणहैं , पहुंचावैं शिवखेत ।।३६।।

इति श्री गर्भकल्याणक वर्णन

जन्म कल्याणक वर्णन

चौपई

अब सुनि जनम कल्याणक रीति । करे इन्द्र सब मन धरि प्रीति ।।
चैत्र सुदी नौमी के दिना । उत्तराषाढ़ जनम भागिना ।।१।।
भुवि अवतरे जगत के नाथ । मति श्रुति अवधि विराजैं साथ ।।
कछू कष्ट नहि मातें होइ । सुष साता सौं प्रसवैं सोइ ।।२।।
तब इन्द्रनि जान्यौ बल ज्ञान । पुहुमि औतरे श्री भगवान ।।
हर्षित लोक तिनि सुनिए लोक । दूरि बहाये ससय सोक ।।३।।
कल्पवासी घटा ध्वनि करैं । और अनाहद रव ऊचरैं ।।
ज्योतिकी सघनाद पूरियौ । करि उछाह अशुभ चूरियौ ।।४।।
भवनवासि गृह भयो आनद । सिंघ रूप गर्जै सुर वृन्द ।।
पटह बजायौ व्यतर देव । पहुलास करि है प्रभु सेव ।।५।।
भवनवासि चालीस अनूप । व्यतर दोइतीस शुचि रूप ।।
कल्पवासी चौबीस महत । आवैं पूजन श्री भगवत ।।६।।
रवि शशि नर तिरयच जु चारि । ए सब मिलें शत इन्द्र विचार ।।
जान्यौ जनम लीयौ जिनराज । गज ऐरावत लाए साज ।।७।।
अब वरणौं वा गज शृंगार । जो गुरु कही जिनागम सार ।।
एक लाख जोजन गज सोइ । ताके मुख इकशत अवलोय ।।८।।
बदन बदन पर आठ जु दंत । रदन रदन इकसर ठाठ ।।
सर प्रति कमलनि सो पच्चीस । एक लाख कमलनि सब दीस ।।९।।

राजहिं कमलनि प्रति पनवीस । कमल भए सब लाख पचीस ॥
कमल कमल प्रति दल सौ आठ । दल दल एक अपछरा ठाठ ॥१०॥
नर्त्त करै बहु आनंद भरी । हाव भाव नैंनवि भावरी ॥
सब मिलि कोटि सताईस नारि । करैं नर्त्त गज मुष पर सार ॥११॥
कनककिंकिणी औ घनघंट । ऐसे ऐरापति के कठ ॥
चमर पताका धुजा विशाल । त्रिभुवन कौ मनमोहन जाल ॥१२॥
ता हाथी पर ह्वैं असवार । आयौ इन्द्र सहित परिवार ॥
सब मिलि पुर प्रदक्षरण करैं । मुष तैं जय जय रव उच्चरैं ॥१३॥
गई गुप्त इन्द्र की सची । जिन जननी कौ निद्रा रची ॥
माया मई राष्यौ शिशु अंग । श्री जिनबिंब लयौ उछंग ॥१४॥
निरषत रूप त्रिपत नहि होइ । परम हुलास हृदय नहिं सोइ ॥
ऐसो जपे बारबार । मेरें लोचन होहु हजार ॥१५॥
निरषौं नयननि रूप अथाह । होहु पुनीत परम पद पाइ ॥
आनद भरि ले आइ तहां । हरषत बदन इंद्र सब जहां ॥१६॥
प्रथम इद्र करि लेइ उठाइ । प्रभु चरननि कौ सीसु नवाइ ॥
गज आरूढ भए भगवान । छत्र लियें सौधर्म ईशान ॥१७॥
सनतकुमार देव जो दोइ । ढारें चमर अनुपम सोई ॥
शेष शक्र जय जय उच्चरैं । देव चतुर्विध हर्षित फिरैं ॥१८॥
ले गए गगन उलध्य अपार जोजन नन्यानवें हजार ॥
मेरु शिखर राजै वन चारि । सघन सजल कबहून पतझार ॥१९॥
सुमन पांडुक नदन बन्न । भद्रशालि लषि चित्त प्रसन्न ॥
कल्पांत वात नही परसें कदा । फूलें फलें छहो ऋतु सदा ॥२०॥
चारयौ दिसा मेरु की लसें । पहिलैं भद्रशाल बन बसें ॥
ता ऊपर नदन बन संच । उंचो है जोजन सत पंच ॥२१॥
तितनो ही जानौ विस्तार । नदनवन कौ गिरदाकार ॥
ता ऊंचे सुमनस बन होइ । मेरु पाषली सोमें सोइ ॥२२॥
तासु फेर की गणती कहौं । सहस्त्र साठि द्वं लषौं लहो ॥
अधिक पांचसें जोजन जानि । तापर पांडुक बन शुभथांन ॥२३॥

जोजन सहस्र छत्तीस उत्तंग । सुमनस वन तें दीसें चंग ।।
चौराणवैं अधिक सो चारि । वन विराजत बलयकार ।।२४।।
चारि सिला पांडुक हैं जहां । जनम कल्याणक महोछव तहा ।।
वन वन प्रति चैत्यालय देव । पूरब दिसा आदि दे भेव ।।२५।।
ऊंचे चोरे को परवान । और ग्रन्थ तें सुनियौ जान ।।
मंदिर प्रति प्रतिमा जिन तनी । अट्ठोत्तर सो संख्या गनी ।।२६।।
सत्रहसें अठविशति सदा । बनें अकृत्रिम नास न कदा ।
धनक पांच सै बिंब उत्तग । तीन काल बदौं मनरग ।।२७।।
सकल पुरदर हरषित भए । पाडुक वन विचित्र ले गये ।।
तहां बिराजै पाडुक शिला । जानौं अर्द्धचन्द्र की कला ।।२८।।
चौरी हैं जोजन पचास । सो जोजन लाबी परगास ।।
वसु जोजन की ऊंची गनी । ललित मनोहर सोभा सनी ।।२९।।
तहाँ रच्यौ मडप मणि मई । ता मध्य सिंघासन छबि दई ।।
भरी ताल कसाल जु छत्र । दप्पर्ण चमर कलस ध्वज पत्र ।।३०।।
प्रथम धरै हैं मगल अष्ट । रचे कलस तहा महा वरिष्ट ।।
वदन उदर औ गहि परिणाम । एक च्यारि वसु जोजन जान ।।३१।।
तापर पधराए जिनईश । पूरबमुष कमलासन ईस ।।
पूजा पाठ पढै सब इन्द्र । द्रव्य आठ साजें प्रति इन्द्र ।।३२।।
जलगंधाक्षत पुष्प अनूप । नेवज प्रचुर दीप अरु धूप ।।
फल जुत आठ द्रव्य परकार । पूजा करें भक्ति उरधार ।।३३।।
करें आरती पढइ जयमाल । गावे मगल विविध रसाल ।।
बाजै ताल मृदग जु बीन । दुंदुभि प्रमुख धुरि ध्वति छीन ।।३४।।
नत्तित सुर गधर्व की नारि । हावभाव विभ्रम रस भारि ।।
सची सकल मनोहर नैन । चन्द्रवदन विहसत सुख दैन ।।३५।।
अग मोरि भंवरी अब लेहि । देसी विषै परम सुष देहि ।।
धिगदि धिगदि तत थेई ताल । झिमक झिमक झालरी कमाल ।।३६।।
थिगदि थिगदि मुष की थथकार । दिगदि दिगदि सगीत सुतार ।।
द्रुमकि द्रुमकि बाजें दुरमुरी । घुमिकि घुमिकि करि किंकन करी ।।३७।।

ठनन ठनन घटा ठनराय । झनन झनत भेर मन लाइ ॥
ताताथैं ताताथैं ताताथैं तात । तन थगु लय गावे सुर ताल ॥३८॥
बीना बंश मुरज झनकार । संत बिलत घने सुखकार ॥
नूपुर ध्वनि थकित सुबंश । जिन गुण कहत मनो कलहंस ॥३९॥
मगल नाद करें सब कोइ । सुर नर सब यह कौतिक जोइ ॥
सुरसरि कलस लेहि एक साथि । क्षीर समुद्र तैं हाथि हि हाथि ॥४०॥
तब सुरेश सौधर्म ईशान । प्रभु कौं करैं अभिषेक विधान ॥
दही घीव मिष्टादिक आनि । ग्रवठोरत रस सकल्पित मान ॥४१॥
ज्यौं पंचामृत परमत कहैं । ताही समेलो गनिए नहैं ॥
इद्रनि कीनी इनकी धार । बिना क्षीर प्रभु कें सिरमाल ॥४२॥
जो मम बचन न मानैं कोइ । देखो आदि पुराण मे जोइ ॥
सहस अष्टोत्तर कलस विचित्र । ढाले जिनवर सीस पवित्र ॥४३॥
और प्रमुख शृगार आचार । इन्द्रनि कियो सकल निर्द्धार ॥
भए जग ज्येठ वरिष्ठ अभिराम । ऋषवदेव राष्यौ प्रभुनाम ॥४४॥
फिरि उछाह सहित वें फिरे । आय अजोध्या मे अनुसरे ॥
तहा कियो बहु विधि आनद । माता कौ सौंप्यौ जिनचन्द ॥४५॥
धनपति कौं प्रभु सेवा राखि । इन्द्र सकल निज ग्रह आए भाखि ॥
याही तें धनपति धनराय । प्रभु की सेव करैं चितु लाइ ॥४६॥

दोहरा

इह महिमा जिन जनम की, पढत सुनत अघ नास ।
निज स्वरूप अनुभव करै, बहु बिन गर्भ निवास ॥४७॥

इति श्री जन्म कल्याणक वर्णन

ऋषभदेव जीवन

चौपई

नाभिराय अजोध्या माह । आनद बढ्यौ न अंग समाइ ॥
गुरुजन पुरजन सब एहु धाम । मंगल करैं सकल नर बाम ॥१॥

पच शब्द बाजे अनवार । मोतिन भूलैं बदनबार ॥
रत्नचूरि सो चोक पुराइ । फिरि जिनको अभिषेक कराइ ॥२॥
जग व्योहार करण विस्तार । फेरि किए सब प्रमुखाचार ॥
बदी जन बहु दीनें दान । तिनही कौ नही सकों बखान ॥३॥
जुग की आदि भयौ अवतार । आदिनाथ धर्यो नाम विचार ॥
श्रमजल सब मल रहित सदीव । रुधिर वरण जैसो गोक्षीर ॥४॥
प्रथमसार सघनन स्वरूप । सहज सुगध सुलक्ष अनूप ॥
मधुर वचन बल अतुल न मान । भाव विचित्री सब सो जांनि ॥५॥
ए दश अतिशय सहजोत्पन्न । तीर्थंकर बिन होइ न अन्न ॥
अमर आइ वैक्रिय बल फोर । कोऊ मराल ह्वैं कोकिल मोर ॥६॥
विविध रूप ह्वैं प्रभु सो रमैं । बाल विनोद करत दिन गमैं ॥
देव पुनीत सकल सिंगार । सुर दिनें मल्यावै त्रिय बार ॥७॥
पहिरावै प्रभु को धरि हेत । निरषत तात मात सुष लेत ॥
और अनूपम भोग विलास । भोगै प्रभु जूनै सुखरासि ॥८॥
बीस लाष पूरब लौ जानि । कुमार काल भुक्त्यो भगवानि ॥
पाछै दीयो नृप पद भार । नाभि नरेन्द्र परम उदार ॥९॥
बैठें सिंघासन श्रीजगदीस । युगल धर्म्म निवारयौ ईस ॥
खेती बिनज लिखन चाकरी । परजा पालन कौ बिस्तरी ॥१०॥
पुत्री काहू की आनियै । सुत काहू कौ तहां जानियै ॥
करें विवाह लगन शुभ वार । इहि विधि बढत चल्यौ ससार ॥११॥
सो मोपै वरण्यौ क्यो जाइ । हौं मतिहीन वियनके माइ ॥
भए प्रछन्न कल्पतरु भूमि । क्षुधा तृषा की बाढ़ी धूम ॥१२॥
परजा सब दुख पीडित भई । नाभिराय के आगें गई ॥
जो कुछ कहो सु कीजे नाथ । क्षुधा तृषा करि भए अनाथ ॥१३॥
पुद्गल जर्जरी भूत प्रतक्ष । बिनु आहार न कोइ रक्ष ॥
नाभि नरेश सुनि यह बात । चिंता उपजी उर न समात ॥१४॥
चलि आए जहा त्रिभुवन राय । दुख परजा को कह्यो सुनाय ॥
श्री भगवत विचारयौ ग्यान । भूत भविष्यति औ वितमान ॥१५॥

ग्रैसी ही ग्रनादि की रीति । सबको समझाई धरि प्रीति ॥
पुहमि करष उपजाउ जाइ । ता फल भषि पोषो निज काय ॥१६॥
जो लो कृषि फल उपजै मही । तोलों एक करो तुम सही ॥
ए ग्रनादि के इक्षुपु दंड । ले ग्रावो इनि करो जु खंड ॥१७॥
पेलि पेलि रस काढतु जाव । काया पोषोया कर भाव ॥
सब परजा ग्रानदित भई । क्षुधा पीर ते बन महि गई ॥१८॥
लीये इक्ष दंड सब तोरि । रस काढयो तिनको करि मोरि ॥
भक्षित भागी भूख पियास । घर घर ग्रानद परम हुलास ॥१६॥
सब जुरि ग्राए देन ग्रसीस । तुम इक्ष्वाकु वंश जगदीश ॥
तब तैं प्रभु को वंश इक्ष्वाकु । वरणे सुर नर किंकर नाक ॥२०॥
तब जान्यौ प्रभु यह निज बंश । थाप्यौ ग्रौर तीन ग्रवतस ॥
कुरु ग्ररुउग्र नाथ ए तीनि । प्रभु ने नाम प्रतिष्ठा दीन ॥२१॥
करे परसपर व्याह विधांन । तजि निजवश सगारथ जांन ॥
प्रभु के राज दुखी नहिं कोइ । घरि घरि जैन धर्म ग्रवलोइ ॥२२॥
तिहि पुर मद गयंद सौं रहैं । मदिरा नाम ग्रौर नहिं कहैं ॥
मारु सोइ जो बल बुधि होइ । पुष्प पत्र लें बाधें सोइ ॥२३॥
दंड सोइ जो जोगी लेइ । ग्रौरण दंड न कोऊ देइ ॥
चचल चोर कटाक्ष तिया के । जो नित चोरै चित्त पिया के ॥२४॥
चक्रवाक बिनु कोइ न ग्रान । निशि के समे विरह दुख खानि ॥
बिरहाकुल पिक बिना न कोइ । बिरहाकुल पिय पिय रट सोइ ॥२५॥

दोहा

दीपदु बधिक बसे तहां, ज्यौं निस बधे पतंग ।
ग्रवधपुरी ऐसो चलन, रच्यौ ईस मन रग ॥२६॥

चौपई

सबकें होइ चतुर्विध दांन । जिनपूज ग्रौर गुण सनमान ॥
धर्म्म राज बरतें संसार । पाप न दीसे कहूं लगार ॥२७॥

नाभिराय तब हुलस्यौ चित्त । तरुण भए प्रभु परम पवित्र ।।
कीजै ब्याह सकल सुखरासि । बंदी जन की पूजैं ग्रास ।।२८।।
ग्रंसे जगत जीव यह रीत । करैं सकल हिरदे धरि प्रीत ।।
इह प्रकार विरचै संसार । होइ प्रवर्त्तै लोकाचार ।।२९।।

तब प्रभुस्यौ विनवै मनुराय । तुमतो जगत पिता जिनराय ।।
आदि अन्त बिनु वरतो सदा । जनम मरण को दुख न कदा ।।३०।।
जो मोहि दियो पिता पद ईस । तो मम वचन सुनो जगदीस ।।
पाणिग्रहन करौ धरि प्रीति । जगमें जोइ यह बाढें रीति ।।३१।।

लोक बढत नैं धर्म अधिकार । यह प्रभु जू कौ है उपगार ।।
जो मम बचन न करि हों कान । पिता वचन की निश्चय हानि ।।३२।।
पुत्र सपूत कहावैं तबैं । पिता बचन प्रतिपालै जबै ।।
तब प्रभु होनहार सब जान । वैं कियौ फिर बहु सनमान ।।३३।।
नाभि नरेन्द्र फूल बहु भई । सकल नृपति के घर सुधि लई ।।
कच्छ महाकच्छ ए द्वै भूप । तिनिके द्वै दुहिता जु अनूप ।।३४।।
कच्छ तनी नंदा गनि बाल । नमि कुमार बेटो गुणमाल ।।
जस्ववती महाकछ की सुता । विनमि पुत्र सब गुण संजुता ।।३५।।
वे हैं प्रभु कौ ब्याही राय । आनंद मगलाचार कराय ।।
भोग विलास करत सतोष । तब सब भिराणी को कोष ।।३६।।
भरथराय आदि सो पूत । उपजे सुन्दर सुभग सपूत ।।
ब्राह्मी सुता पवित्र अवतार । पूर्व पुन्य लीयौ जु विचार ।।३७।।
अब सुनि दुतिय रागनी बात । नदाराणी परम विख्यात ।।
पुत्र जन्यौ बाहूबलि नाम । सुता सुन्दरी गुण अभिराम ।।३८।।
यह विधि बढयौ परिग्रह घोर । एक तें एक प्रतापी जोर ।।
वानारसि नगरी कौ भूप । नाम अकपन काम स्वरूप ।।३९।।
सेनापति बडो सब कहैं । लाम नाथ वश बेदता बहैं ।।
प्रभु के आइ चरण सिर नई । दर्श लहें आनंद अधिकाई ।।४०।।
बिनती करी जुगल करि जोरि । असरण सरण नाथ हों मोरि ।।

तनुजा मम गृह भई अभिराम । सुलोचना ताकौ है नाम ।।४१।।
भई बर जोग सुता वह ईस । देउं काहि भाषौ जगदीश ।।
तब प्रभु भावी काल विचार । भाष्यौ चलें जगत व्यौहार ।।४२।।
निजु इच्छा काहू को देइ । चक्रीमान भंग रस लेइ ।।
जो चक्री सब परनतु जाइ । तौ कैसे संसार घटाइ ।।४३।।

स्वयम्बर वर्णन—

मात पिता इच्छा गुण और । सबल निबल परिकरि हैं दौर ।।
तातें रच्यौ स्वयम्बर जाइ । तहां सकल नृप लेहु बुलाय ।।४४।।
वरमाला कन्या को देउ । पुत्री निज इच्छा वर लेहु ।।
ताहि बरन कोऊ मानैं बुरो । ताको मान भंग सब करो ।।४५।।
इह सुनि भरथ परम आनंद । राजनीति भाषी जिनचन्द ।।
सुनि राजा अपनें घर गयौ । प्रभु भाषी सो करतौ लयौ ।।४६।।
देश देश के चाले राय । सुता स्यम्बर कौं ठहराय ।।
अर्क्क आदि भरथ सुत चले । कदर्प्प रूप विराजै भले ।।४७।।
और सकल आये महिपाल । जिनदेखत नासें उरसाल ।।
रचि विभूति अपनी सब तहां । आए सकल स्वयम्बर जहां ।।४८।।
कन्या के कर माला दई । आइ स्वयम्बर ठाढ़ी भई ।।
कन्या के संग दासी दीन । सबके गुण जानत परवीन ।।४९।।
एक ओर तैं बरनती चली । नाम राजजु स्तुत करि भली ।।
भावी के बस पहुँची तहाँ । गजपुर धनौ विराजैं जहाँ ।।५०।।
भरथ तनौ सेनापति सार । नाम तास है जयकुमार ।।
रतिपति देखत रूप लजाइ । बल उनमान कह्यौ नहिं जाइ ।।५१।।
कुरुवंशनि को नाथ प्रवीन । जाके राज न कोऊ दीन ।।
सुलोचना देख्यौ वह रूप । कंठ करि वरमाल अनूप ।।५२।।

जय जयकार शब्द तब भयो । जयकुमार उत्तम वर लयो ।।
सकल नरेश चले निज गेह । उपज्यो कोह अर्क्क के देह ।।५३।।
प्रभु देषित क्यो सेवा करैं । दीठ पनौं क्यौं देषी परै ।।
दयो निसान जुद्ध कै काज । लेउ छुडाइ मगे तरु आज ।।५४।।
तब मंत्रिनि मिलि यह बुधि दीन । पहले पठऊ दूत प्रवीन ।।
मागे देइ जुद्ध मति करो । नहि तो मनवांछित आदरो ।।५५।।
पठयो दूत ततक्षिण तहाँ । जयकुमार बैठो जहाँ ।।
दूत वचन सुनि वह पज्जरचौ । मानो अगनि मे पूलो परचौ ।।५६।।
सुन रे दूत मूढ मति मद । अविवेकी भयो प्रभु को नन्द ।
यह मरजाद पितामह तनी । तोरचौ चाहत धरि सिरमनी ।।५७।।
भरथ सुनैं दुउ पावे घनौं । क्यो निज प्रभुता चाहै हन्यौ ।
हम सेवा तोहि लौ करैं । जो लौ नीति पथ पग धरैं ।।५८।।
लोप्यो चाहै जो इह रीति । तो मौसो नहि सकि है जीनि ।।
वह नहि जानत हे बलवंत । जानें भरथ राय गुणवंत ।।५९।।
पर्वत गुफा फोरि मैं दइ । भव छह खड तनी जय भई ।।
काहे हो राणो अग्यान । क्यो मिलि हैं जु बरी बलवान ।।६०।।
दूत गयो फिर जहा कुमार । सुनि ता बचन भयो असवार ।।
आनि जुद्ध कीनौ परचड । जयकुमार तब दीनौ दड ।।६१।।
अर्ककुमार बाधि ले गयौ । करि विवाह निजु घर ले गयो ।।
ह्वा ते कुँवर दयो तब छोडि । आदर सो दयो लच्छ करोडि ।।६६।।
भरथ निरषि सुत कीयौ धिकार । करैं सु पावैं यह निर्द्धार ।।
जयकुमार को कियौ पसाव । हय गय देश बहुत सिर पाव ।।६३।।
राजनीति तुम कीन्ही सही । नतर कुवात बिचरती मही ।।
सेवक सुत सम तजो जानि । जो प्रभु की मेटैं नहि आनि ।।६४।।
तब तैं यह जग बरती रीति । करें स्यम्बर नृप धरि प्रीति ।।
जाहि वरैं सोही ले जाइ । फिरि न ताहि कोउ सकै सताइ ।।६५।।

इति स्यम्बर नीति वर्णनं

पूर्व लाष श्रेसठि लौं जानि । करचौ राज श्री कृपानिधान ।।
या अंतर इक दिन जिन राज । बैठे हुते सभा सुख साज ।।१।।
नीलजना नटी कौ नांम । नृत्ति करण आई बहु ठाम ।।
वीन उपम वासुरी बाजै । डाडी यंत्र अमृती राजै ।।२।।
सुर मंडल बाजै घन तनी । सारंगी विनाक बहु भनी ।।
जलतरग अमृत कुंडली । कु भर वाव मिलै ध्वनि भली ।।३।।
ए बाजे सब बाजन लाग । तब मिलि जु अलापहिराव ।।
प्रथम सप्त स्वर साधि जु लीन । पुनि मिलि सकल सुर एक कीन ।।४।।
रगभूमि पातुरि पग धरचौ । रव संवति बदन उचरचौ ।।
सुर सुर कुम कुम धमपि बोलैं । तार धार संग लागें ठोलैं ।।५।।
तत थेई तत थेई तत करैं । ततकि ततकि मुषतें उच्चरैं ।।
अग मोरि भवरी जब लई । धरि धरिवि मृतक ह्वै गई ।।६।।
परमहंस दूजी मति भयौ । देखत सबनि अचंभो भयौ ।।
प्रभु वा मरण विचारचौ चित्त । उर उपज्यौ वैराग्य पवित्त ।।७।।

बारह भावना वर्णन

दोहरा

अध्रुव असरण जग भ्रमण, एक अनंत अशुद्ध ।
आश्रव सवर निर्जरा, लौक धर्म दुर्लभ ।।८।।
ध्रुव वस्तु निश्चल सदा, अध्रू भाव पज्जाव ।
स्कध रूप जो देखियै, पुद्गल तनौं विभाव ।।९।।

चौपई

जिते पदारथ वल्लभ जांनि । गगन नगर सम भणौ समान ।।
धन जोबन जल पटल जु होत । सजन नारि सुत तडित उदोत ।।१०।।
जल बुद बुद जो बरतें सदा । विनासीक थिर नाही कदा । ।
इनसौं जहाँ न उपज्यो मोह । कहै भावना अथिरण सोइ ।।११।।

दोहरा

असरण वस्तु जु परिणमन, सरण सहाई न कोइ ।
अपनी अपनी सक्ति कैं, सबैं बिलासी जोइ ॥१२॥

चौपई

असरण समे कायरता त्यागी । रत्नत्रय के मारग लागी ॥
पुष्पनाल कुम्हलाई देव । करितु फिरै सबही के सेव ॥१३॥
राखि सकै नहीं कोऊ ताहि । सरणक जोहे वपु माहि ॥
ताके सरणत कै मुनिराव । इह असरण भावना कहाव ॥१४॥
अरहंतो असलीमत्वो तारण लोया । इदीह ससारे मग्गइं ॥
देसाइं कुसुलाइ, जे तरंति तेम भालमाई ॥१५॥

दोहा

ससार रूप कोऊ नहीं, भेद भाव अग्यान ॥
ग्यांन दृष्टि करि देखिये, सब जिय सिद्ध समान ॥१६॥

चौपई

परग्रहण जहां प्रीति बहु होइ । भांति भांति के दुख सुख जोइ ॥
चारधौं गति में हिंडतु फिरैं । स्वाग लाख चौरासी धरैं ॥१७॥
जो स्वछन्द वरतें त्रय काल । ता स्वभाव दीजें दृग चाल ॥
डरि दई सब पुदगल रीति । तब संसार भावना प्रीति ॥१८॥

दोहा

एक दिसा मानिजु देखि कैं, आपा लेहु पिछान ॥
नाना रूप विकलपना, सोतो परकी जांनि ॥१९॥
बोलत डोलत सोवता, थिर मानैं जग भाति ॥
आप स्वभाव आप मुनि, जित तित अनु अनभांति ॥२०॥

चौपई

करि जन्म धरधौ मरहै कौंन । छिन में बिनसि जाइ ज्यौं लौन ॥
स्वर्ग नरक दुख सुख कों सहैं । मुक्ति सिला पर जाइ जु रहैं ॥२१॥

ए सब जीव द्रव्य के खेल । पुदगल सौं नहीं दीसै मेल ॥
बल वीरजु सुख ज्ञान महत । सहजानंद स्वभाव अनंत ॥२२॥
धरयौ ध्यान जोऊ ता रूप । सदा अकेलो विमल स्वरूप ॥
जहां जू जाकौ होइ प्रभाव । एकतानू भावना कहाव ॥२३॥

दोहा

अन्न अन्न सत्ता धरें, अन्न अन्न पर देश ॥
अन्न अन्न तिथि माइला, अन्न अन्न पर वेश ॥२४॥

चौपई

तू नित अन्य जीव सब काल । पुदगल अन्य परिग्रह जाल ॥
सपे पुत्र कलित्र शरीर । कोइ न तेरो सुनि बल वीर ॥२५॥
या दिन हंस पयानौ करै । संगी ह्वै कोऊ न संग धरै ॥
जहि सेवग साहिब नही मान । अनतानू भावना कहान ॥२६॥

दोहा

निर्मल मति जो जीव की, विमल रूप त्रियकाल ।
अशुचि अ ग जो देखिये, पु ज वरगना जाल ॥२७॥

चौपई

अशुचि खांनि कहियै यह देह । तासौ जीव कहा तोहि नेह ॥
रक्त पीवुरु मूत पुरीख । इनि सौं भरी सदाई दीख ॥२८॥
हाड चाम केशनि के कु ड । यातें नेह नर्क कौ कु ड ॥
या सो जीव रचे नहीं जहा । अशुचि अग बखानै तहा ॥२९॥

दोहा

ज्यौं सवछिद्र नौका विषै, आवै चउदिशि नीर ॥
त्यौं स्तावन द्वार ह्वै, होइ जु आश्रव भीर ॥३०॥

चौपई

जो परद्रव्य तनौ है भार । राग द्वेषरु करण स्वभाव ॥
बसु मद अौ संकल्प विकल्प । सकल कषाय ग्यांन गुण अल्प ॥३१॥

उपजै इनके कर्म अनेक । सो सब पुदगल तनो विवेक ।।
इणें छांडि जिन आपा गनें । आश्रव भाव सकल तब बमै ।।३२।।

दोहा

छिद्र मूदिए नाव के, बहुरि न जल परवेश ।
सचो सूचो काल बल, सवर को यह भेष ।।३३।।
इह जिय संवर आपनो, आपा आप मुनेय ।
सो सवर पुदगल तनो, करम निरोध हि हेय ।। ३४।।

चौपई

आवत देखें जल ही अपार । तब जिय ऐसी बुद्धि विचार ।।
मू दे सकल नाव के छिद्र । राग दोष जल करें न षद्र ।।३५।।
करण विषै मद आठ प्रकार । इनि तजि अपनो करे सम्हारि ।।
इ किरिया तब षेवै नाव । सवर तनो कहावै भाव ।।३६।।

दोहा

वियोगी अपने वियोग सो, न्यारो जानत जोग ।
याकें देख न सकति है, वा गुण धारण जोग ।।३७।।
इह योगी की रीति है, मिलि करें सजोग ।।
तामों निर्जर कहत हैं, बिछुरण होइ वियोग ।।३८।।

चौपई

जनम जनम जे जोरे कर्म । अब जानो इनको गुण मर्म ।।
ता नासन को उद्दिम रच्यौ । चारित बल रीति तब पच्यौ ।।३९।।
उष्ण काल गिरि पर्वत बास । सीत समे जल तट हि निवास ।।
वर्षा ऋतु तरुवर के तलैं । सहैं परीसह नेकु न हलै ।।४०।।
मन चचल को थामे घोर । इन्द्री दड देइ अति जोर ।।
पूरब कृत थिति पूरी होइ । आगैं बहुरिण सचै कोइ ।।४१।।

यह व्यवहार निर्जर की रीति । निश्चय नय अब आतम प्रीति ।।
तजें जीव परबुद्धि प्रसंग । यह निर्जर भावना सुरंग ।।४२।।

दोहा

सकल द्रव्य तिय लोक में, मुनि के पटतर दीन ।
जोग जुगति सों थापना, निश्चय भाव नवीन ।।४३।।

चौपई

तीन लोक सब पुरुषाकार । चौदह राजू उचित विचार ।।
जुगपद ए निगोद हैं दोइ । पिंडुरी नर्क सात अवलोइ ।।४४।।
घम्मा वसा मेघा जांनि । अजन अरिठा मध्य हैं ठाम ।।
मघवा सप्तम नर्क विचार । आव तीनि तीस निधिवार ।।४५।।
अघस्थान परे थल चारि ।द्वीप नाग औ असुर कुमार ।।
बसे भवनवासी तिहिं ठोर । ऊपरि मध्य लोक की दोर ।।४६।।
उदर समान कह्यौ भुवि लोक । असंख्यित द्वीप समुद्र को थोक ।।
ज्यौ पजरहे लगराकार । त्यौंही सो रहैं सुरग विचार ।।४७।।
प्रथम सौधर्म्म ईशान जु दोइ । सनतकुमार माहेन्द्र है जोइ ।।
ब्रह्म ब्रह्मोत्तर दो अभिराम । लातव अरु कापिष्ट सु नाम ।।४८।।
शुक्र महाशुक सुर गेह । सतार महासतार सनेह ।।
आनत प्राणत ए सुरधाम । आरण अच्युत षोडस नाम ।।४९।।
वक्ष स्थान है ग्रीवक तीन । अधो मध्य ऊरध परवीन ।।
नवनवोत्तर कठ स्थान । एक भवातरी तहा जान ।।५०।।
तापर पचानोत्तर नाम । अहिमिद्रनि के पांच विमान ।।
सो कहियें सरवारथ सिद्धि । बदन ठौर जानियौ प्रसिद्ध ।।
मुक्ति स्थल ललाट पर गनौ । लोकाकाश यहि तुम भणौं ।।५१।।
त्रिय वलेन वेढयौ केम । छालि लपेटयौ तर वर जेम ।।
घनाकार है तासु विसाल । रज्जू तीनसें और तेताल ।।५२।।

छहो द्रव्य करि यो भरि रह्यौ । ज्यौं घृत परि पूरण घट भर्यौ ॥
यातें अपर अलोकाकाश । तहा सदा ही सुन्नि निवास ॥५३॥
यह अनादि की थिति अवतार । करता तासुन को निर्द्धार ॥
निवसे सिद्धि रूपता सीस । जीव सदैव दे आप शरीस ॥५४॥
तजो अजोग ठौर जिय जान । तब लोकानुभावना बखान ॥
आयु छाडि जो थिर मैं अत । तो न बने लोकानु सतु ॥५५॥

दोहा

धर्म करावे और करें, क्रिया धर्म्म नहीं और ।
धर्म्म जु जानु जु वस्तु हैं, ज्ञान दृष्टि धरि सोइ ॥५६॥
करन करावन ज्ञान नहिं, पढन अर्थ इह और ।
ज्ञान दृष्टि बिनु ऊपजै, मोप तरनी जु झकोर ॥५७॥

सोरठा

धर्म न कियें स्नान, धर्म न काया तप तपै ।
धर्म न दीये दान, धर्म न पूजा जप जपै ॥५८॥

दोहरा

दान करो पूजा करो, जप तप दिन करि राति ॥
जानन वस्तु न बीसरो, यह करणी बड बात ॥५९॥
धर्म जो वस्तु स्वभाव है, इह आनौ जो कोइ ।
ताहि और क्यो बूए, सहज ही उपजै सोइ ॥६०॥

चौपई

छिमा आदि जो दश विध धर्म्म । षोडशकारण शिव पद मर्म ॥
दान बिना पूजादिक भाव । नव्योहार धर्म जु कहाव ॥६१॥
जौ लौंहे सराग चारित्र । तौ लो इन गुण महा पवित्र ॥
वीतराग चरित्र जब होइ । आपुकौ आप मुनैं सब कोइ ॥६२॥
यह धर्म भावना विचार । करतें भवदधि पावै पार ॥
इह अनादि को व्यापक अंग । कोऊ तजो मति धर्म प्रसम ॥६३॥

सोरठा

दुर्लभ पर को भाव, जाकी प्रापति ह्वै नहीं ।
जो आपनी स्वभाव, सो क्यों दुर्लभ जानिये ।।६४।।

चौपई

जब जिय चरतें मध्य निगोद । दुर्लभ सप्तम नरक विनोद ।।
जब आवें सातो पाथरे । एकेन्द्री दुर्लभ मन धरें ।।६५।।
एकेन्द्री यह् करै सदीव । पानी तेज वाय के जीव ।
सात सात लाष परजाय । वनस्पति दश लाष गनाइ ।।६६।।
प्रथ्वी काइ सात लख जानि । चौदह लाख निगोद बखांन ।।
तामे इत निगोदी सात । उनिके दुषनि की अगनित बात ।।६७।।
ज्यौं लुहार कौ सडसो आहि । कवहू अगनि कबहूं जल मांहि ।।
सेष सात लष इतर निगोद । अब सुनि उनके दुष विनोद ।।६८।।
सास उस्वास एक मे सार । जामन मरण अठारह बार ।।
वायु तनी सष्या नही तास । एकेन्द्री शरीर दुष रासि ।।६९।।
सब मिलि एकेन्द्री की जाति । थावर पच प्रकार विख्यात ।।
तामे मूब जल हरित जु तीन । कहैं अनंत काय परवीन ।।७०।।
मसूरी दारि तनें परमान । रहे जीव तिनिके सुख मानि ।।
वै जो जीव होइ मरि कोक । तौ भरि उपलटैं तीनौं लोक ।।७१।।
र्तति इन्द्री दुर्लभ होइ । द्वै लख जाति तासु की जोइ ।।
यो थास खुलासा पग डारि । लाट गडोई की उलिहारि ।।७२।।
रसना दोई इन्द्री गनी । श्री जिन आगें ऐसी भनी ।।
यातें इन्द्री दुर्लभ तीनि । द्वै लख जाति ठीकतादीन ।।७३।।
जोक मांकड बीछू आदि । देह नाक रसना कौ स्वाद ।।
यातें चौइन्द्री गति दूरि । द्वै लख जाति रही भरिपूर ।।७४।।
बर डांस माखी रु और काय । भृंगी भवरी कीट पतंग ।।
रसना नाक आंखि औ देह । चौइन्द्री को विवरण एह ।।७५।।

बे सब मिलि अट्ठावन लाख । लाख छबीस पंचेंद्री भाषि ।।
त्रस चारि बिनु हाड न होइ । बेइन्द्री लो जानें सोइ ।।७६।।
ताहू मे सम्मूर्छन गना । यौं कहि गए सकल मुनि गना ।।
तामे चौदस लख नर जाति । चारि लाख तिरयंच विख्यात ।।७७।।
ताहू में च्यौरें परवीन । जलचर नमचर थलचर तीन ।।
नभचर सब पक्षि पहिचानि । जलचर मीनादीक बषानि ।।७८।।
सर्प्प चतुष्पद पशु औतार । ए सब थलचर नाम विख्यात ।।
लाख चारि गति देवनि तनी । सोऊ चारि भेद करि सुनी ।।७६।।
भवनवासी कल्प जु दोइ । ज्योतिग व्यंतर सु होइ ।।
कल्पवासी स्वर्गनि मे रहैं । सुखसों सकल आपदा दहैं ।।८०।।
दशविधि भवनवासी सुर जानि । पृथक पृथक गुण कहौं बखानि ।।
पहलें असुरकुमार हैं जोइ । दड देहैं नरकनि को सोए ।।८१।।
नागकुमार दूसरे रहैं । तिनिसौं अष्ट कुली जग कहैं ।।
विद्युत तीजो नाम कहत । चपला दामिनि जो चमकत ।।८२।।
सुपरण चौथो नाम बखान । अगनिकोल पचम सुर जानि ।।
षष्टम वात बखानी सही । जाते अधिक प्रवल बल मही ।।८३।।
सप्तम सतति देव बिचार । जो नभ मडल गर्जय सार ।।
अष्टम आवध नाम जु धरयौ । जासौ कहैं बज्र भुवि पर्यौ ।।८४।।
नवमौ दिव्य ध्वनि आदेव । दशमे दश दिगपाल गनेय ।।
ज्योतिग देव तनौ परिवार । रवि शशि आदि पंच प्रकार ।।८५।।
ग्रह नक्षत्र तारागन सुनो । ऊँचे चलो ताहि अब भणो ।।
पृथ्वी तें जोजन से तात । और नवे ऊँचौ अधिकात ।।८६।।
रतन जटित ज्योतिगी विमान । तिनिकी ज्योति चमक परवान ।।
शशि विमान अजन मनि लसैं । ता प्रतिबिंब चन्द्रवपु ग्रसे ।।८७।।
वह स्यामता निरष मति मंद । थाप्यौ जगत कलकी चद ।।
पथ चलित आप पर धरो । तिनितें अगनि कोल भुव बिषें ।।८८।।
मरयौ देव कुमति यो कहैं । और टरयौ तारो सब कहैं ।।
राहु केतु द्वै ग्रह ए स्याम । निकट न हो रवि शशि के धाम ।।८६।।

हूं रवि शशि इनि ऊपरि भलें । जोजन एक अधो ए चलें ।।
शशि अरु केत दोऊ एक जोट । दयो चलें छाया की ओट ।।९०।।
ज्यो ज्यो छाया छूटति जाइ । त्यो त्यो चन्द्र विमल प्रगटाइ ।।
पून्यों के दिन केतुम अग । सोहल पूरण कहा मयक ।।९१।।
यहां काहू जिय सशय भई । श्री गुरु सो उन विनती ठई ।।
सुनियौ जो पून्यों को नाथ । केतु तजे हिमकर । को साथ ।।९२।।
तौ काहू तें चन्द्र अनूप । कबहूं कबहूं स्याम सरूप ।।
तब गुरु कहैं सुनौ बुधिवत । कहों प्रगट जो कही सिद्धन्त ।।९३।।
ता दिन दबें राहू की छांह गहन कहैं अवनी सब मांहि ।।
ताको भेद कह्यो निरधार । ज्योतिग ग्रन्थनि के अनुसारि ।।९४।।
फिरि परिवा ते दाबें केतु । छाया तरउ पति कौं लेत ।।
मावस के दिन सुनौ प्रबीन । दीसें हिमकरि कला विहीन ।।९५।।

दोहरा

रवि शशि सुरह सतमौ, होइराय एकत ।
चन्द्रग्रहण तब होइसी, वादहि वरीय सत ।।९६।।
जासु नक्षहि रवि बसें, तासु अमावसु होइ ।।
राहु सूर सो जब मिले, सूर ग्रहण तब होइ ।।९७।।

चौपई

अब सुनि व्यन्तर देव विचार । कहिये सकल अष्ट परकार ।।
किंनर औ पुरुष बिरांम । गधर्व और महोरग नांम ।।९८।।
राक्षस जक्ष पिशाच रु भूत । इहि विधि देव कहैं गुण जूत ।।
नारक गति लाख जु चारि । लाख चौरासी सब मिलि सार ।।९९।।
निकसि पाथरिनि बाहिर परे । तिर्यंग सुख दुर्लभ अनुसरे ।।
तिर्यंग कौं दुर्लभ नर देह । तिनिकौं दुर्लभ खग सुर गेह ।।१००।।
ए दुर्लभ लहि भटक्यौ सदा । श्रावक कुल उपज्यौ नहिं कदा ।।
कबहु धरयौ नपुसक रूप । तातैं दुर्लभ नारि स्वरूप ।।१०१।।

नारी भएं अधिक दुख खानि । दुर्लभ पुरुष वेद प्रधान ॥
कर्म शभाशुभ उदै प्रमाण । पायौ नर शरीर शुभथान ॥१०२॥
सत गुरु मुख सुनियौ उपदेश । जान्यौ निज स्वरूपको भेस ॥
....रस विक्रिय क्षेत्र क्रिया सार ॥१०३॥
तामें प्रथम बुद्धि रिद्धि कहो । भेद अठारह तामे लहौ ॥
केवल अवधि जानियौ दोइ । मनपरजय तीजी अवलोय ॥१०४॥
अब दुर्लभ शिव सरवर तीर । जामे विषें रहित शुचि नीर ॥
अब वह नीर हियौ जिय जाइ । कर्म्म आताप सकल बुझि जाइ ॥
लेन न जाउ कहूं तुम दूरि । आतम ताल रह्यौ भरपूरि ॥१०५॥
तू जिय निर्मल हस सुजान । और न कोऊ ताहि समान ॥
पीवत लहै मुक्ति पद घोर । यह दुर्लभ भावना झकोर ॥१०६॥

दोहा

ए शुचि बारह भावना, जिनते मुक्ति निवास ।
श्री जिनवर के चित्त मे, तबही भयो प्रकाश ॥१०७॥

इति बारह भावना

ऋषभ देव गृह त्याग वर्णन

चौपई

तब आए लौकातिक देव । कुसुमाजलि दे कीनी सेव ॥
पंचम सुरग है सु विशाल । यह नियोग आवै तिहिकाल ॥१॥
जग अनित्य ताकी सब रीति । वरन सुनाऊ महा पुनीत ॥
तुम प्रभु हो त्रिभुवन के ईश । अरु दिवाकर हो रजनीश ॥२॥
प्राणनाथ अविचल गुणवृन्द । अनभो ईडित मोल अमद ॥
अगम अघट अध्यातम रूप । गिरातीत औ अलख अनूप ॥३॥
केवल रूपी करूणाकार । नित्यानंद रहित अविकार ॥
इहि विधि बहु स्तत परकार । श्री जिन आगैं बरनी सार ॥४॥
जो वह बुद्धि न प्रभु कौं होइ । जगत जीव निस्तरेइ न कोइ ॥
प्रभु समुझाइ गए निज धाम । तब जिनराज महाबल साम ॥५॥

भरतराय को लियो बुलाइ । सौंप्यौ राज भार समुझाइ ।।
सकल देश बांटत तब भए । बाहूबलि पोदनपुर गए ।। ६ ।।
और सुतनि जो जो चाहौं ठोर । बाटि दीयौ स्वामी सिरमोर ।।
इतनें अंतर और जु देश । थापें प्रभुनें अपर नरेश ।।८।।
भरथ तनी सेवा मनि धरें । आज्ञा भंगन कोऊ करे ।।
प्रथम ही चक्रवत्ति भरतेश । सावें षंड छहूंनि के देश ।।९।।
इहि विधि सबको करि सनमान । जोगारूढ होत भगवान ।।
सविकार चित्र विचित्र आनियौ । चैत बदि नौमी को जानियौं ।।१०।।
तामे बैठा श्री जिनचद । नाभि नरेश धरे निजु कद ।।
सात पैंड लौं वे चले । भाव सहित मन अति ऊजले ।।११।।
सुर नर देव सकल अभिराम । ले गए नदन वन अभिराम ।।
इद्रनि कियौ अति उछव तबै । जय जयकार उच्चरे जबै ।।१२।।
बट तरवर वहां परम पुनीत । तातरि रिद्धि तजि भए अतीत ।।
नम सिद्ध मुख तें उच्चरयौ । पचमुष्ठि लोच तब करचौ ।।१३।।
मडे पच महाव्रत घोर । त्यागौ सकल परिग्रह जोर ।।
मणिमय भाजन मे धरि केश । क्षीर समुद्र मे डारत भयौ ।।१४।।
पुष्करार्द्ध पर पहुँच्यौ जबै । न्यौहर गए करतें कच सबै ।।
भाव द्रव्य ले मघवा गयौ । षीर समुद्र मे डारत भयौ ।।१५।।
नाषि चिहुरसो निज पद जाय । सजम बल प्रभु अधिकाय ।।
सजम तें मनपर्यय ज्ञान । प्रभु के हृदय भयौ सुख खांनि ।।१६।।
मौंन सहित तपु करत दयाल । तहा बीत्यौ तब किंचित काल ।।
प्रगट भई आप बसु रिद्धि । श्री जिनवर की परम प्रसिद्धि ।।१७।।
अब सुनि पृथक पृथक गुण तास । हाइ सकल मिथ्यामत नास ।।
बुद्धि औषधी बल तप चार । रस विक्रिय क्षेत्र किया सार ।।१८।।

बद्धि औषधी बल ऋद्धि—

तामे प्रथम बुद्धि ही रिद्धि । अठारह तामे लहो प्रसिद्ध ।।
केवल अवधि जानियौ दोय । मनपरजय तीजी अवलोय ।।१९।।
बीज चतुर्थम पंचम गोष्ठ । षष्टम संभिन्न श्रोष्टता सोष्ट ।।
सप्तम पादार सारिणी बुद्धि । दूरस परसन अष्टम शुद्ध ।।२०।।

दूरा रसन नवम बुद्धि जान । दूरा घ्राण दशम बखान ।।
चतुर्दश पूरब तेरम गनी । प्रत्येक बुद्ध चौदही भनी ।।
निमित्त ग्यान पन्द्रही अनूप । बाद बुद्धि षोडशमे स्वरूप ।।२२।।
प्रग्या हेतु सत्रही विचित्र । दश पूर्वा अष्टा पद पवित्र ।।
अब वरणौं सबके गुण जुदे । जाके सुनत होइ मन मुदे ।।२३।।
केवल रिद्धि कहावै सोइ । जहाँ सर्व दृष्टि जिन होय ।।
तीन लोक प्रतिभासे जेम । जल की बूंद हस्त पर एम ।।२४।।
अवधि बुद्धि को कारण यहै । गत आगत भव सात जु कहै ।।
बिनि पूछै नही अवदात । कहै जब कोऊ पूछै बात । २५।।
सोइ अवधि तीन परकार । देश परम सरवावधि सार ।।
देश एक की मानें बात । सो देशावधि नाम विख्यात ।।२६।।
मानुषोत्र लौ वरने भेद । परमावधि जानै जिनवेद ।।
तीन लोक सबधी कहै । सर्वावधि ऐसो गुण लहै ।।२७।।
मनपरजय जब उपजै भेद । मन विकार तजि निर्मल शुद्धि ।।
सबके मनकी जानें जीय । जैसी जाके बरते हीय ।।२८।।
वाहू मे द्वै भेद बखान । रिजु विपुल भाखे भगवान ।।
सबके मन को सरल स्वभाव । रिजुमति बारै कौ जु लखाव ।।२९।।
सूधी टेढी सब जानई । विपुलमति ताको मानई ।।
बीज बुद्धि जब उदय कराइ । पठन एक पद श्री जिनराय ।।
पद अनेक की प्रापति होइ । यह वा बुद्धि तनो फल जोइ ।।
एक श्लोक अर्थ पद सुने । पूरण ग्रन्थ आपते भने ।।३१।।
रह्यौ न भेद छिप्यौ कछु तहा । कोष्ठ बुद्धि प्रगटत है जहा ।।
नव जोजन की है विस्तार । बारह जोजन लाम्बो सार ।।३२।।
चक्रवर्त्ति दल जितक प्रमाण । देश देश के नर तहा जान ।।
एक ही बेर जो बोलें सबै । पहिचानै सब के बच तबै ।।३३।।
सभिण श्रोष्टता बुद्धि विशेष । प्रतक्ष प्रगटै ऐसे गुण दोषि ।।
आदि को एक अन्त की एक । पढ ग्रन्थ पद सुनौ विबेक ।।३४।।

होइ समस्त अर्थ को ज्ञान । कठ पाठ सब ग्रन्थ बखान ।।
एह पादुनासारिता बुद्धि । जिनबानी तें पाई सुद्धि ।।३५।।
गुरु लघु रूक्ष उष्ण जो सीत । तिक्त कटुक चिक्कन रस रीति ।।
आठ प्रकार जिनेश्वर कहे । सपरसन रस इन तें गुण लहैं ।।३६।।
द्वीप अढाई ते जु अभग । परसे रिद्ध धनि के अ ग ।।
इह मरजादा पर उतकिष्ट । जोजन नो तै गणो कनिष्ट ।।३७।।
सब गुण जुदे कहन को इच्छ । दूरी परसन बुद्धि प्रतक्ष ।।
मीठो करुवो अो चरपरो । चिकनो और कसेलो धरे ।।३८।।
रसन भेद ए वरणं पाच । दीप जुगल अर्थ तेलहि साच ।।
जो कोऊ सब खोलइ तहा । खाद बखानै रिद्धि बल इहा ।।३९।।
दूरा रसन बुद्धि बलवत । जिन आगम भाषित अरहत ।।
दुर्गंधा अरु परम सुवास । ए नाना के परम विलास ।।४०।।
पूर्व्वरीति जानें रिद्धिवान । यह कहिये बुद्धि दूरा घ्राण ।।
रिसभ निषाद गधार बखान । षडज अो मध्य धैवत जान ।।४१।।
पचम सकल मिले सुर सात । मुनि इनके प्रगटन की जात ।।
पुरुष नाभिख रिष भगवान । सुर निषाद नभ गरज प्रमान ।।४२।।
पचम कठ कोकिला जेम । सप्तम सुर जु उचारे एम ।।
कहा कहा प्रगटै सुर सात । पच शब्द कहिय विख्यात ।।४३।।
प्रथम शब्द जो चर्म बजत । दूजा फूक तीमरी तन्त ।।
चौथी झाझि मजीरा ताल । पचम जल तरग को ख्याल ।।४४।।
पूर्व रीति ते दोइ लखाव । दूरा श्रवन बुद्धि परभाव ।।
श्वेत पीत अरु रक्त सुरग । हरित कृष्ण गुरु चक्षु अ ग ।।४५।।
वाहा भाति दूरते ग्यान । रिद्धि दुराव अवलोकन जान ।।
दश पूरब अरु ग्यारह अग । विनुम सकति विष्वाजा अ ग ।।४६।।
रोहिणी आदि पचसो जानि । क्षुलक आदि सातसो मानि ।।
ए देवी सब ता ढिग आव । करें कटाक्ष हाव अरु भाव ।।४७।।
तिनिको चचल चित्त कदा । करत आर्षे न होइ थिर सदा ।।
अर्थ सकल मुख कहों विचार । दशपूर्व बुद्धि के अनुसार ।।४८।।

जहाँ चतुर्दश पूरब पढे । ग्यारह अंग बिना श्रम बढे ।।
बुद्धि चतुर्दश पूरब एह । सोहै रिद्धवत की देह ।।४६।।
सजम अौ चरित्र विधान । बिनु उपदेशनि दुहुनि के धाम ।।
दया दमन इन्द्री तप घोर । इह प्रत्येक बुद्धि को जोर ।।५०।।
इन्द्र आदि को विद्यावान । आवै वाद करण धरि मान ।।
उत्तर प्रथम रहैं सब मनी । इह बल वादि बुद्धि के धनी ।।५१।।
तत्त्व पदारथ सजम संतु । तिनिके सूक्ष्म भेद अनन्त ।।
द्वादशाग बानी बिनु कहैं । प्रज्ञा बुद्धि होइ गुण लहै ।।५२।।

दोहरा

अन्तरीक्ष भौमग सुर ब्यंजन लछिन छिन्न ।
स्वपन मिलें जब देखिये, आठ निमत्तम अन्न ।।५३।।

चौपई

सूर सोम ग्रह नक्षत्र प्रशस्त । तिनिकौ ग्रहन अरु न उदयस्त ।।
शुभ अरु अशुभ जानत फल तास । अतीत अनागत सकल प्रकास ।।५४।।
वर्त्तमान जैसो कछु होय । अन्तरीक्ष को वर्णन सोइ ।।
निमित्त अंग पहिलो यह भलौ । अन्तरिक्ष कहिये निर्म्मलो ।।५५।।
छिपी वस्तु जो भूमि मझार । द्रव्य आदि नाना परकार ।।
जथा जुगति सौ देय बताइ । स्वय बुद्धि पर कौन सहाय ।।५६।।
भूमिकप फल बरते जेम । सब बिधि वरण सुनावें तेम ।।
भूमि भेद कछु गोप्य न रहै । भूमि ऐसो गुण कहैं ।।५७।।
नर निरयच अंग प्रत्यग । तिनिके दरसय परस प्रसंग ।।
दुख सुख सब कऊन जानइ । वैद्यक सामुद्रिक मानइ ।।५८।।
करुणाजुत भाषै उपचार । सब जग पर उनिकौ उपगार ।।
लक्षण प्रगट कोप ग्यान । अब नाम ऐसो गुण जान ।।५६।।

खग चौपद की भाषा जेती । प्रगटै आनि हृदय सौ तेती ॥
तिनितें जो कछु भावी काल । प्रगट बखान्यो दीन दयाल ॥६१॥
सुख दुख को आगम यही । अब जग सगुण कहावै सही ॥
इह निमित्त को चौथो भेद । सुर कहि नाम बखानें बेद ॥६२॥
तिलम से औ लसन है आदि । सामुद्रिक तें जुदे अनादि ॥
तिनिके फल को पूरण ज्ञान । व्यंजन अ ग तनों गुण जांनि ॥६३॥
श्रीवच्छादि लाछरण लीक । अष्टोत्तर सौ तिनिकौं ठीक ॥
कर पतरत शुभा शुभ जेम । लक्षण केबल भाखें तेम ॥६४॥
वस्त्र शस्त्र उमापति छत्र । आसन सेनादिक अरु वस्त्र ॥
राक्षस सुर नर अन्स मझार । मूषक कटक शस्त्र पहार ॥६५॥
गोमय अगनि बिनासौ होइ । शुभ औ अशुभ तास फल जोइ ॥
प्रगट बखानैं ससे नाहि । यह अधिकारी छिन के माहि ॥६६॥
सकल पदारथ जो जग रचे । जब वे आइ स्वपन मे पचे ॥
तिनिमे प्रगट सुख औ ताप । वरणि सुनावै स्वपन प्रताप ॥६७॥
इह विधि जे अष्टाग निमित्त । बरण सुनावैं तहां पवित्त ॥
सबकी ससे खावै घोर । बुद्धि निमित्त प्रतिग्या जोर ॥६८॥

दोधरा

इह अष्टादश अ ग जुत, । बुद्धि रिद्धि गुण गेह ।
विमल रूप प्रगटै सदा, आइ तपोधन देह ॥६९॥

इति बुद्धिऋद्धि वर्णनं

अथ औषधी रिद्धि वर्णनं

चौपई

अब सुनि रिद्धि औषधी भेद । अष्ट प्रकार बखांनी बेद ॥
विटुमल आमज्जल शूल अ ग । सर्व दृष्टि बिष महा अभग ॥१॥

तिनिकी विष्टा लेपें गात । सकल रोग को होई निपात ।।२।।
निर्म्मल अमल निरोग शरीर । विट प्रताप यह परम गंभीर ।।
दात कान नासा को मैल । देखत रोग सबै गहै गैल ।।३।।
सकल धातु को होइ कल्याण । मल प्रताप यह ररम गभीर ।।
रोग ग्रसत औदारिइ हन्यो । भागहीन चिंता करि सुन्यो ।।४।।
हाथ छुवत सावासव छोर । आम अ ग की ह्यालोदौर ।।
श्रमजल मे रज जागे अ ग । सुख साता दुखहरण अभग ।।५।।
टले असाता लागत देह । जल्ल अ ग है सब सुख गेह ।।
लार षषार थू कि ते जानि । व्याधिहरण औ धातु कल्यान ।।६।।
पूरण करै मनोरथ महा । थूल अ ग गुण उत्तम कहा ।।
परसें अ ग तो आवै ठाइ । जिनको लगै परम सुखदाइ ।।७।।
हरे अताप करे अघ नास । सर्व अ ग को इह परगास ।।
काटयौ होइ सर्प नैं काई । कै काहू विष पीयो होई ।।८।।
दृष्टि परै अतापन रहै । दृष्टि अंग ऐमो गुण लहै ।।
जो कोऊ नै विषु देइ । व्यापै नही परम सुख लेइ ।।९।।
बचन योग सबको बिस हरै । अ ग असन विषं यह गुणधरै ।।
सर्प्पादिक लहि उनिकी बास । बरै नही मुनि निकट निवास ।।१०।।

दोहरा

यह विधि आठ प्रकार जू, रिद्धि औषधी सार ।
प्रगटै श्री मुनिराज कौ, तप बल यह निरधार ।।११।।

इति औषध रिद्धि वर्णन

बल ऋद्धि वर्णन

चौपई

अब तुम सुनो रिद्धि बल सार । मन वच काय त्रिविध परकार ।।
भिन्न भिन्न गुण तिनि के गहो । ऐसो गुण आगम मे लहो ।।१।।

श्रुत आवरणी कर्म प्रधान । ताके छय उपशम तें जानि ।।
अन्तर महूरत विर्षे समर्थ । द्वादशांग बानी को अर्थ ।।२।।
तिनके मनमे करे विलास । यह कहिये मन बल परकास ।।
द्वादशांग बानी अध्ययन । करत महासुख उपजै चैन ।।३।।
तिनको कष्ट न होइ लगार । अंग वाक्य बल के अनुसार ।।
बानी पठत देह श्रम नाही । पढइ मंत्र महूरत माही ।।४।।
काय अखडित बल को करै । अंग काय बल यह गुण धरै ।।
अतुल अखड बली बलवीर । सोहै जिनको सुभग शरीर ।।५।।

दोहरा

यह बल रिद्धि गभीर गुण, प्रगट बखानी देव ।
उदय होइ तप जोग तें, यह जिनवानी मेव ।।६।।

इति बल ऋद्धि वर्णन

तप ऋद्धि वर्णन

चौपई

सुनो भव्य अब तप ऋद्धि सार । तामै सात अग निरधार ।।
घोर महत औ उग्र बनत । दीप्त गुण घोर अनंत ।।१।।
सप्तम ब्रह्मा घोर बखान । अब तिनके गुण सुनो सुजान ।।
महानसान भूति अनि होइ । जोग धरै रुचि सों मुनि जोइ ।।२।।
सहै उपसर्ग धुरधंर घोर । याही सें कहिये तप घोर ।।
सिंघनि क्रीडित आदि उपवास । तिनको करै सदा अभ्यास ।।३।।
मौन अन्तराय सो यह पाल । इह कहिये तप महतिरमाल ।।
वेद काय बसु द्वादश मास । इत्यादिक जे औ उपवास ।।४।।
करैं निर्वाह योग आरूढ । यह तप उग्र तनो गुण गूढ ।।
करत उपवास घोर बहु भांति । घटै नही देही की कान्ति ।।५।।

उपजैं नहीं दुर्गन्ध शरीर । यह कहियें तप दीप्त गंभीर ॥
तप्त लोह गोला पर नीर । परत ही सूकें सहै नही पीर ॥६॥
लियें ग्राहार निहारन जहां । तप्त अग तप जानौं तहां ॥
प्रतीचार बिनु मुनि अभिराम । घोर गुण तप याको नाम ॥७॥
दुषमादिक होइ न तास । घोर ब्रह्मचर्य गुण भास ॥
व्रत शत और आठ निरधार । तितिके मुनिवर साधन हार ॥

दोहरा

तप ऋद्धि के सात गुण अभ्यासें मुनिराज।
अनुक्रम तातें जानिये, केवल ज्ञान समाज ॥६॥

×....×....×....×....×...×....×....×....×....×..×..×..×

काष्ठा संघ उत्पत्ति वर्णन

समोसरण श्री सनमति राय, आरजखड परयौ सुखदाइ ।
अन्ति समै पावापुर आनि. पुन्य प्रकृति कीन्हें गई हानि ॥१॥
सुदि आषाढ चौदसि के दिनां । धार्यौ जोग सकल मुनि जना ॥
पुर की सीम नखे नहिं कोइ । पार न जाइ नदी ज्यो होइ ॥२॥
कातिग सुदि चौदशि आवई । ता दिन मुनि चौदिसि धावई ॥
च्यारि मास पूरो भयो योग । देव ठान भाखें सब लोग ॥६॥
गौतम आदि सकल मुनि चग । ता तल धर्यौ जोग प्रभु सग ॥
हुतो तडाग तहां शुचि रूप । एक कूट ता मध्य अनूप ॥४॥
तापर निबसे श्री भगवांन । हिरदें तुरीय पद शुकल जु ध्यांन ॥
कातिग वदि मावस की रीति । चारि घडी जब रह्यौ प्रभात ॥५॥
श्री जिन महावीर तीर्थेश । पचम गति कौ कियो प्रवेश ॥
मुक्ति सिलापर सिद्ध सरूप । परमातमा भए चिद्रूप ॥६॥
जो मुनि देखें नैन निहार । कूट नही प्रभु प्रतिमा सार ॥
उनि समान सुनि सुधि डारि । प्रभुजू नें किल कियौ बिहार ॥७॥
भटकत डोलें चउदिसि मुनी । गौतम ज्ञान रिद्धि तब सुनी ॥
श्री गौतन मुख बानी खिरी । सब के जिय कौ संसय हरी ॥८॥

आए इन्द्र सकल जुरि तहां । प्रभु निर्वान ज्ञान मुनि जहां ।।
कियौ महोछौ पूरव रीति । मुनि सों कहैं इन्द्र धरि प्रीति ।।९।।
काहे कों मुनि जन श्रम करधौ । जोग दिसा क्यौं सुधि बिसरधौ ।।
सिद्ध सिला निवसें भगवान । काहे को तुम चित्त मलान ।।१०।।
तब मुनि कहे सुनी सुरपती । जोग दिसा तजि दी रे जती ।।
आग्या मिटी भयो व्रत भग । करें कहा अब भाख्यौ चंग ।।११।।
तब सुरपति जिय सोच अपार । आवतु है पंचम अनवार ।।
धर्म रहित परमादी जीव । बरतेंगे ता काल सदीव ।।१२।।
जो हो इनिसो कहो प्रकार । पूरौ करौ जाइ चौमास ।।
मति डरयो व्रत भग जु भयौ । तुम प्रभु कें हित हो चित दयौ ।।१३।।
सो पचम परमादी लोग । संख्या तोरि करेंगे जोग ।।
ता तैं आज भलौ दिन जांनि । श्री गौतम भयौ केवल ज्ञांन ।।१४।।
उछव करि सब करधौ बिहार । ज्यौं अखण्ड व्रत की नहि हार ।।
तबते आहूठ मास कौ जोग । ५चम काल धरें मुनि लोग ।।१५।।

दोहरा

वाही निशि श्री वीर कौं पूजैं पद निर्वान ।
कथा काष्ट जु संघ की, आगें करौ बखांन ।।१६।।

इति चतुर्मास भेद जोग वर्णनं

चौपई

गुप्तागुप्त आचारज रिष्य । भद्रबाहु मुनि तिनि के शिष्य ।।
तिनि के पट्ट जु माघनदि मुनि । ज्यां चरननि मे जाइ गुनी ।।१७।।
उनके पट्टाधीश बखांनि । श्री कुन्दकुन्द आचारज जांन ।।
तिनिके पट्ट जु उमास्वाति । जिनतें तत्त्वारथ बिख्यात ।।१८।।
तिनिके पट्ट लोहाचारज भए । जिन काष्ठासघ निरमये ।।
आचारज विद्या भण्डार । साक्षात सारद अवतार ।।१९।।

तिनके तन क्यौं उपज्यो रोग । श्राय बन्यो मरवाको जोग ।।
वाय पित्त कफ घेरी देह । भव श्रीगुरु धरि श्राए नेह ।।२०।।
ह्वै दयाल दीनौं सन्यास । जब जीवन की रही न श्रास ।।
पुन्य प्रभाव बेदनी घटी । व्याधी सकल मुनिवर ते हटी ।।२१।।
क्षुधा पिपासा व्यापी श्रग । बिनती जु गुरु सो चग ।।
टली श्रसाता श्रायु प्रताप । श्रब कीजें जो श्राज्ञा श्राप ।।२२।।
श्रीगुरु कहे तब श्रागया श्रान । करि सन्यास मरण बुद्धिवान ।।
ज्यो श्रागे परमादी जीव । प्रतिपाले जो व्रत जोग मदीव ।।२३।।
लोहाचारज धरी न कान कियौ श्राहार श्रन्न रु पान ।।
गुरु मुनि गच्छ बाहिरे । पट्टाधीस श्रौर श्रनुसरे ।।२४।।
लोहाचारज सांच बिचार । गुरु तजि कीयौ देश बिहार ।।
सवत त्रेपन साल सें सात । विक्रमराय तनौ विख्यात ।।२५।।
श्राए चले नदीवर ग्राम । जाको है श्रगरोहा नाम ।।
वा पुर श्रगरवाल सब बसें । धनकरि सब लोकनि कौ हंसें ।।२६।।
परमत कौ जिनके श्रधिकार । श्रौर धर्म कौ गनें न सार ।।
श्रब उनिकि उतपत्ति साभलैं । मत मिथ्यात सकल दल भलौ ।।२७।
श्रगर नाम रिष हे तप धनी । वनवासी माता वा भनि ।।
एक दिवस बैठें धरि ध्यान । नारी शब्द परयो तब कान ।।२८।।
मधुर वचन श्रौर ललित श्रपार । मानो कोकिला कठ उचार ।।
छूट गयौ रिष ध्यान श्रनूप । लागे निरिखन नारी रूप ।।२९।।
व्याप्यौ काम धीर नही धरै । त्रिय प्रति तब बोलन श्रनुसरै ।।
तब वोली नारी वह जान । नाग तनी मोहि कन्या जान ।।३०।।
जो तुम काम सताये देव । जाच्यो मम पिता कौं करि सेव ।।
निरिखि वरन न धरि है मान । तुरत करेंगो कन्या दान ।।३१।।
सुनत वचन उठि ठाडे भए । ततक्षिन नाग लोक को गए ।।
नाग निरिख तपस्वी श्रवतार । कीनौ श्रादर भाव श्रपार ।।३२।।
तब ऋषिराय प्रार्थना करी । तव कन्या हमि जिय मे बरी ।।
श्रब तुम देहु हमें करि दान । ज्यो सतोषु लहे मम प्रान ।।३३।।

नाग दई तब कन्यां बांहि । कर गहि अगर ले गए ताहि ।।
ताके सुत अष्टादश भए । गर्ग आदि सुतमे बरनए ।।३४।।
तिनिको बश बढ्यो असगल । ते सब कहियें अगरवाल ।।
उनिके सब अष्टादश गोत । भए रिषि सुत नाम के उदोत ।।३५।।
तिनिके सुन्यौ एक आयौ मुनी । पुर के निकट बहु उतर्‍यौ गुनी ।।
भिक्षुक जानि सकल जन नए । भोजन हेत विनयवत भए ।।३६।।
तब मुनि कहे सुनौं धरि प्रीति । हम तपसीनि की ऐसी रीति ।।
जो कोऊ श्रावक धर्म कराइ । मिथ्यामत जाकों न सुहाइ ।।३७।।
सो अपने घरि आदर करें । ले करि जाइ दया तब धरैं ।।
और ग्रेह नहीं आहार । यह हम रीति सुनी निर्द्धार ।।३८।।
तब पुर जन जिय विसमय भई । यह कैसो मुनि आयो दई ।।
जो न देइ हम जाहि आहार । तौ आवैं हमरे पन हार ।।३९।।
कछुक लोग तब जैनी भए । श्री मुनिराज चरन आइ नए ।।
धर्म समझि लेहि गुरु उपदेश । तब गुरु जुत कियो नगर प्रवेश ।।४०।।
दयो भली विधि मुनि आहार । आनद उछव करें अपार ।।
यह विधि प्रतिबोधें विख्यात । श्री मुनी अगरवाल सो सात ।।४१।।
तब जिनभवन रच्यौ बहु चग । रची काष्ट प्रतिमा मन रग ।।
पूजा पाठ बनाए और । गुरु विरोधि हित कीनि दोर ।।४२।।
चली बात चलि आई तहां । उमा स्वामि भट्टारक जहाँ ।।
मुनि जिय चिन्ता भई अगाध । करी काठ की नई उपाधि ।।४३।।
भली भई परमत किये जैन । सुनत बात उपज्यो उर चैन ।।
चलि आये तहां श्री मुनिराइ । नदीपुर वर जैनसमाइ ।।४४।।
आवत सुनी श्री निज गुरु भले । आगें हो न आचारज चले ।।
जीनैं सकल नबर जन सग । बाजत अति बाजे मन रग ।।४५।।
निरखि मुनी तब पकरे पाइ । आनद बढ्यो न अग समाइ ।।
तब मुनिराज दई आसीस । लयो उठाइ चरन तें सीस ।।४६।।
तब पुरजन सब बदन करें । उमास्वामि धर्म वृद्धि उच्चरें ।।
अगोनी करि लाए गांम । राजतु हैं जहाँ जिनवर धांम ।।४७।।

भोजन हित विनती सब करें । तब श्री गुरु मुख तें उचरे ।।
जो देहै हम गुरु को सीख । और आचारज मानै सीख ।।४८।।
तौ हम लेही या पुर चरी । तब आचारज विनती करां ।।
आग्या होइ करौ सोइ नाथ । भयौ हमारो जनम सनाथ ।।४६।।
तब मुनि कहैं सुनो गुन जूत । शिष्यन मे भए तुम भए सपूत ।।
परमत भजन पोखन जैन । धर्म बढायौ जीत्यौ मैन ।।५०।।
वही सीख हमरे करि धरघो । काठ तनी प्रतिमा मति करो ।।
अग्नि जरावे धन जिह दहैं । अ ग भग नहिं जिन गुन लहे ।।५१।।
जल डारे चचल तसु छान । लेख किये सदोष यह जानि ।।
तब आचारज करी प्रमान । भाखें गुरु सौ वचन निदान ।।५२।।
पाठन फेरो दीन दयाल । कर पीछी सुरही के बाल ।।
गुरु मानी वाढ्यो अतिरग । जेउ न उठे शिष्य गुरु सग ।।५३।।
तब तें काष्ठासघ परवरघौ । मूलसघ न्यारो विस्तरघौ ।।
एक चना कीज्यौ द्वै दारि । त्यौं ए दोऊ सघ विचार ।।५४।।
जैन बहिर्मुख कोऊ नाहिं । नाम भेद दीसें गुरु माहिं ।।
तातै भव्य भ्रान्ति जिय तजौ । मन वच तन आतम है भजो ।।५५।।

दोहरा

कह्यौ काष्ठासंघ कौ, भेद सकल निरधार ।
गुरु प्रसाद आगे कहो, पच स्तवन विचार ।।५६।।

इति काष्ठा संघ उतपत्ति बर्णन

जैसवाल जाति उत्पत्ति इतिहास—

चोपई

श्री जिनदेव ऋषभ महाराज । जब बाटचौ सब महि को राज ।।
अवधपुरी दई भरथ नरेश । बाहूबलि पोदनपुर देश ।।१।।
और सुनत माग्यो ठाम । श्रीप्रभु तें दीयो अभिराम ।।
कुंवर शक्तिजित बाट नरेश । चलि आए जहाँ जैसलमेर ।।२।।

वें मण्डल को साधें राज । सुख साता तें सबै समाज ।।
तिनिकौ वंश बढ्यो प्रसराल । जैन धर्म पालै महिपाल ।।३।।
उनिके वंश नृपति एक जान । तिनि कीयौ परमत सों प्रांन ।।
जिनमत की छांडी सब रीति । कल्पित मत सो बाधी प्रीति ।।
शुभ कर्म घटै घटि गयो प्रताप । प्रवनीमद फले सब पाप ।।
और इकदिन चढ़ाई कीन । गयौ देश या पें ते क्षीन ।।
पर जाकरि राखें ...... ठौर । भ्रष्ट भए देश सिरमौर ।।
राज भृष्ट ह्वं कृषि प्रादरी । कोऊ वनिज कोऊ चाकरि ।।६।।
इहि विधि रहित गयो बहुकाल । छूटि गयी जिनमत की चाल ।।
महावीर प्रभु प्रकटघो ज्ञान । रची सभा प्रमरनि प्रांन ।७।।
सकल सुरासुर पुन्न प्रचण्ड । ताहि ले फिरें प्रारजा खंड ।।
खड सकल परस्यौं चो फेर । चलि प्राए जहां जैसलमेर
प्रायो समोसरण वन माहि । सब ॠतु वृष्य सफलाइ ।।
वन माली राजा पै प्राय । प्रभु प्रागमन कह्यौ समुझाय ।।९।।
सुनि राजा चल्दौ वन्दन हेतु मान रहित पुर लोक समेत ।।
प्रथम नमैं श्री जिनवर राय । फिर नर कोठे बैठे जाइ ।।१०।।
पूछत भए श्री प्रभु को बात । जे ए बात वंश बिख्यात ।।
रहो कृपा करि सुर महाराज । घटचो क्यो हमतें सुबिराज ।।
तब बोले गौतम बल राइ । जैन त्यागो रे भाइ ।।
जो वह फेरि प्रादरो धर्म । बिहुर जाइ तुमतें दुख कर्म ।।१२।।
तब करि जौर अथारथ सार । धर्म लयो जन चारि हजार ।।
वावा बंध सबनि मिलि धरयौ । जिनवर जैन धर्म प्रादरयौ ।।१३।।
तिनही सों प्रपनौ व्यौहार । खांम पांन प्ररु सगपन सार ।।
इनि तजि प्रौरजु कों प्रादरें । तजें ताहि दोष सिर धरें ।।१४।।
यह ठहराइ धर्म ले फिरि । सब प्राए पुर जैसलमेप ।।
समोसरण प्रायौ पंच पहार । मगध देश राज ग्रह सार ।।
वें सब जेसवाल प्रतिपाल । खोयौ उरतें मिथ्य साल ।।
रच्यौ नगर जिन प्रालय चंग । जिन पूजन तहा करें प्रभंग ।।१६।।

देई चतुविध संघहि दान । निसि दिन रुचि सो सुनें पुरान ॥
दालिद्र गेह हुते जे लोग । तिनिके नाना विध के भोग ॥१७॥
सब कें अटल लजि घर भई । सकल त्याग बनिज बुधि ठई ॥
या अन्तर एक श्रावक धान । कन्या रूप भई अभिराम ॥१८॥
तास रूप की सब पुर वास नृप जिय उपजी ब्याहनि बात ॥
पठयौ दूत कह्यो हम देहु । कन्या दान तनो फल एऊ ॥१६॥
सुनत सबनि के विसमय भई । कौन बुद्धि राजा यह ठई ॥
पच सकल जुर करि आइयो । अब हम जैन धर्म व्रत लयो ॥२०॥
अपर जाति सो रह्यो न काज । खान पान अरु सगपन साज ॥
दूत कह्यो राजा सो जाइ । हठ किए विसमय अधिकाइ ॥
सुनि राजा कहि पठयो फेरि । तो तुम त्यागो जैसलमेर ॥
जहाँ लहो न लगी मेरी आन । रजा ऐसी कही निदान ॥२२॥
तब वे सकल चले तजि ठांम । जैन मती जिन ते अभिराम ॥
जिहि पुर आइ संघ यह परें निरिखि सबै कोऊ पूछन करें ॥२३॥
कौन देश तें आयौ सघ । कौन जाति कही कारण चग ॥
उत्तर देई सबै गुणमाल । वश इक्ष्वाक जेसवाल ॥२४॥
जेसवाल तब ही ते जान । जेसवाल कहित परवान ॥
चले चले आये सब जहाँ । हुती तिहूँ गिरी नगरी जहाँ ॥२५॥
ता पुर हुतो निकट वन चग । उतरयो तहाँ जाइ वह सघ ॥
पार्यें यह जहाँ चातुरमास । सकल सघ ऊहा कियो निवास ॥२६॥
बीतें रहाइ दिन जबें । वन क्रीडा नृप निकस्यो तबै ॥
कटक दृष्टि नृप के जब परयो । सबनि को पूछन अनुसर्यो ॥२७॥
का को कटक कौन आइयो । जा वन तूं पूछाइयौ ॥
कहे मन्त्री ए जेसवाल । सबनि लियो मत जैन रसाल ॥२८॥
नृप कन्या न दई याह । दई नही रूस्यो नर नाह ॥
निज पुर तें ए दये निकार । चलि आये या देश मझारि ॥२६॥
चातुर्मास आबडो आइयो । नाद बहि तन छाइयो ॥
राजा कहे सुनो परधान । क्यो न मिलि हैं हम को आन ॥३०॥

सचिव कहें इनें गर्व अपार । याही त नृप ए दीए निकार ।।
सुनि राजा कर मूछनि धर्‌यो । मन मे रोस सच पर कर्‌यो ।।३१।।
मुख तें कछू न करौ उचार । आए महीपति नगर मझार ।।
सघ तने कछु बालक चंग । क्रीडित हुते तहां मनि रंग ।।३२।।
तिनि मे हुतो एक बुधिवान । नृप चरित्र सब वह पहिचांन ।।
चलि आयो सिसु सग मझार । बैठो जहाँ सकल परिवार ।।३३।।
बालक सबसो भाषी बात । नृप को बेगि मिलो तुम तात ।।
नही तो मान भग तुम होय । सत्य बचन मानौ सब कोइ ।।३४।।
तब सब कहुकर उठें अकुलाइ । चलो जाइ देखें पुर राइ ।।
मनि मानिक मुक्ता फल भले । राजा भेट काज ले चले ।।३५।।
पहुँचे जाइ नृपति के द्वार । भेट धरी अरु करघो जुहार ।।
राजा पूछै ए को हेत । जिनि मे प्रीत तनो उद्देत ।।३६।।
सचिव कहे ए सब सुनो भूपाल । हम चित नही सर्व को साल ।।
नृप अनीत त्यागे निज देश । चलि आए तुंव शरण नरेश ।।३७।।
करी हुती जहाँ जिय मे चित । बीतें भादव बरत पुनीत ।।
देखें जाइ चरण प्रभु तनौं । और मनोरथ चित के भनौ ।।३८।।
मांगि लेऊ कछू भूमि विसाल । तहाँ बसें हम जैसवाल ।।
अब जब सुनि राय रीस धरी । तब हम आइ भेट अब करी ।।३९।।
तब नृप जिय विसमय अधिकाइ । मैं निज रीस काहू न जताइ ।।
तुम क्यो जान्यौ मेरो क्रोध । बिनु भाषें किहि विधि भयो बोध ।।४०।।
तब सब मिलि नृप सो विनए । जा दिन तुम प्रभु क्रीडा वन गए ।।
पूछी सकल हमारी बात । सचिव कही जैसी इह तात ।।४१।।
तहां एक बालक हमरो हुतौ । बुधिवांन क्रीडा संजुतौ ।।
तिनि सब बात कही समझाय । वेगि मिलौ तुम नृप को जाइ ।।४२।।
क्रोध कियें हम ऊपरि चित्त । मैं भाषी सब सो सब सत्ति ।।
या पर हम जिय में बहु सके । आप मिलिन महा भय थके ।।४३।।
सुनि करि तब बोल्यो क्षिति पाल । वेगि बुलावो अपनो बाल ।।
जिनि मम जिय की पाई बात । पूछौं बोध तनो अवदात ।।४४।।

तब उन बालक दयो बुलाब । रूप निरिख नृप आनन्द थाय ।।
पूछै महिपति सुनि रे बाल । तैं क्यों जानो मम उरसाल ।।४५।।
बालक कहैं उभय करि जोरि । जब प्रभु निज कर मूंछ मरोरि ।।
क्रोध बिना मूंछ नही हाथि । यासैं हम जान सके नरनाथ ।।४६।।
सुनि राजा परिफुल्लित भयो । कर गहि कट लागि शिशु लयो ।।
आदर सहित दिवाए खांन । बिदा दई राख्यौ बहु मान ।।४७।।
रहिबे कौ दयौ पुर मे ठाम । मन्दिर तहां सुभग अभिराम ।।
बसे आनि जब वीत्यो जोग । करें तहा बहु विधि के भोग ।।४८।।
नृप पठयो एक दूत सुजान । जेसवाल सुनौ बुधिवान ।।
मम जिय बात तुम ऐसी मनौ । इह बालक जो है तुम तनौ ।।४९।।
तको देऊ सुता मम तनी सेवा करौ बहु तुम तनी ।।
सुनत बात बोले सब लोग । यह तो होइ न कोई जोग ।।५०।।
जो हम ऐसो करते काज । जैसलमेर न तजते आज ।।
बात सुनत नृप रिस होइ । पकरि मगायो बालक सोइ ।।५१।।
निज कन्या दीनी परनाइ । कछू न काहू तौ न बसाइ ।।
बालक नृप अनीति पहिचानि । छोडि दियो भोजन अरु पानी ।।५२।।
मात पिता देखौं जब नैन । तब ही मो जिय उपजै चैन ।।
नही तो प्रान तजौं निसन्देह । कोन काज मेरो नृप गेह ।।५३।।
तब नृप जिय सोच अपार । बाल करे अपजस सिर नाइ ।।
तब बालक को सब परिवार । गढ़ लाए वाही परकार ।।५४।।
और हितू जे हे उनि तने । तेऊ जाइ बसे गढ घने ।।
घर हजार द्वै नीचै रहैं । जिन गुरु वचन प्रेम सो गहैं ।।५५।।
तिनि सब मिलि यह ठहराव । मेइ विसौं अब परम अभाव ।।
कोऊ हमरौ उनिकैं नही जाइ । उनिकौ ह्यां कोऊ धरे ने पाइ ।।५६।।
गुरु बचननि की छांडी टेक । कहा भयो बालक गयौ एक ।।
धनु अरु जीवन सब निर्जाउ । धर्म तनौ मलि होइ अभाउ ।।५७।।
तातें अब हम सो नहि खेल । गुरु वचननि कीए सीसु खेल ।।
इह विधि स्यो गयो काल वितीत । राज काल कियौ अनंकित ।।५८।।

यह मन्त्रिनि मिलि कीयौ काज । थाप्यौ जन पद सिर राज ।।
जब वह भयौ पहुमि कौ राइ । निजनिकु सब लियौ बुलाइ ।।५६।।
वकोश देश बांधि के दयो । आप तिहुन नगर राजा भयौ ।।
बाभन कुल प्रोहित थापियो । तौ में पत्र तिनें लखि दयौ ।।६०।।
जाके व्याह पुत्र को होइ । लिखि देई बाभन को सोइ ।।
रूपे के रूपैया सो पाच । एक अधिक नहीं ताभे बांच ।।६१।।
तब इह मनमे आयी बात । बिछुरि कछु हमतें जात ।।
एकाकी जिए ताहि मनाइ । जाति मिले आनन्द अधिकाइ ।।६२।।
तब नृप सहित सकल परिवार । आए गढ़ नीचें सागार ।।
बैठें जिनमन्दिर नृप आहि । सकल पच तहा लए बुलाइ ।।६३।।
विनती करी जोरि के हाथ । सोई करो जो हो इक साथ ।।
बगसौं चूक जु हम मैं परी । बडो सोइ जो चित्त न धरी ।।६४।।
अब सब बरतो पूरब रीति । दुविधा मनतें करौ वितीत ।।
तब सब पचनि कियो विचार । कीजे नहि नृप मान प्रहार ।।६५।।
विनती करी राय सों सबै । आग्या देहु अब हम तबै ।।
व्याहु काज नही नरेश । हठ करौ तौ तज हैं देश ।।६६।।
तब मन मे सौचियो नरेन्द्र । हठ के किये मही आनन्द ।।
मानि बात नृप गढ पें गये । जैसवाल दो विधि तब भये ।।६७।।
उपरोतिया जु गढ पर रहे । तिरोतिया जे नीचे कहे ।।
काज समे उपज्यो यह नाम । बोलि पठावै इहि विधि धांम ।।६८।।
उपरोतिया थये गुरु देव । काष्ठा सघ करें तसु सेव ।।
मूल सघ गुरु परम पुनीत । तरोतिया उर तिनिकी प्रीति ।।६६।।
इहि विधि बीत गयो कबु काल । राजा परयो जाइ जम जाल ।।
राजधनी भयो ओरें आय । तिहिनपाल नाम कहवाइ ।।७०।।
तिनि सब जैसावाल सु वश । तहाते काटि दिए अवतंस ।।
या अन्तर उपजी एक भली । जम्बू स्वामि अन्त केवली ।।७१।।
मथुरा नगर निकट उद्यान । तहाँ प्रगटयौ प्रभु केवल ज्ञान ।।
तावत सबकौं खग लोइ । जुरि आये मथुरा बन सोइ ।।७२।।
छांडि तिहुवन गिरि उठि धाइयौ । जेसवाल बाल आंनियौ ।।
प्रभु दरसन लइए नवि हुंड । दुरमति करि मारि सत खण्ड ।।७३।।

जम्बू स्वामी भयौ निरवान । पाई पचमगति भगवान ।।
जेसवाल रहे तिहि ठाम । मन मान्यौ जु करइ काम ।।७४।।
कारज गाम गोत परनए । इह विधि जेसवाल बरनए ।।
उपरोतिया गोत छतीस । तिरोतिया गनि छह चालीस ।।७५।।

दोहरा

जैसवाल कुल बरनयौ, जिहि विधि उतपति तास ।।
अब कवि अपने नाम को, करै विवर परगास ।।७६।।

कवि प्रशस्ति

चौपई

तरोतिया तिनि मे एक जाति । पूरण **प्रश्न प्रताप** सुव जानि ।।
राजाखेरा को चउधरी । अर्गलपुर की आनु जु बरी ।।७६।।
ताके पाच पुत्र अभिराम । अनुज **लालचन्द** तसु नाम ।।
ता सुत हीय प्रीति जिनचन्द । सब कोऊ कहै बुलाखीचन्द ।।७७।।
तासु हिरदे उपजी यह आनि । कीजे क्यो जिन कथा बखान ।।
वृन्दावन सागरमल मित्र । जिनधर्मी अरु परम पवित्र ।।७८।।
तिनिकी की आज्ञा ले सिर धरी । बचनकोश की रचना करी ।।
भाषा ग्रन्थ भयो अति भलो । वचनकोश नाम जु उजलौ ।।७६।।
विनसै तासु पढत मिथ्यात । सांची लगै न परमत बात ।।
क्षयोपशम को कारण यही । वचन कोस प्रगटचो यह मही ।।८०।।
श्रवन करे रुचिसो नर नारि । लक्ष्मी होइ सुभग निरधार ।।
लक्ष्मी होइ न राग आकुलौ । याकै पढै होइ मति भलो ।।८१।।
जिनवानी की कीरति घनी । कहाँ लौं वरनि सकै नहीं मुनि ।।
सुनें तासु न पावें पार । मानि सकति जु बुधि बल सार ।।८२।।

दोहरा

सवत सत्रह सै बरस, ऊपरि सप्त रु तीस ।
बैसाख अंधेरी अष्टमी, वार बरनऊ नीस ।।८३।।

वर्द्धमानपुर नगरी सुभग, तहां बुद्धि को जोस ।
रच्यो बुलाखीचन्द ने, भाषा वचन जु कोश ।।८४।।
मुनी पढ़ैं जो प्रीति सो, चूकहिं लेइ सम्हारि ।
लघु दीरघ तुक छन्द को, छमियो चतुर विचारि ।।८५।।

इति वचन कोष भाषा बुलाखीचन्द जेसवाल कृत विरचित
सम्पूर्ण समाप्तं ।।
सम्वत १८५३ वर्ष मास चैत्र बदी ११
भृगु वासरे ।।

२

कविवर बुलाकीदास

कविवर **बुलाकीदास** इस भाग के दूसरे कवि हैं जिनका यहाँ परिचय दिया जा रहा है। वे अपने समय के ऐसे कवि थे जिनकी कृतिया समाज मे अत्यधिक लोकप्रिय बनी रही। राजस्थान के जैन ग्रन्थालयो मे उनके पाण्डवपुराण की पचासो पाडुलिपियां सग्रहीत है।काव्य सर्जना की प्रेरणा उन्हें अपनी माता से प्राप्त हुई थी। वैसे कवि का पूरा परिवार ही साहित्यिक रुचि वाला था। बुलाकीदास के समय मे आगरा नगर कवियो का केन्द्र था। समाज द्वारा उस समय काव्य रचना करने वालो का खूब सम्मान किया जाता था। **बुलाकीचन्द**, हेमराज एव स्वय **बुलाकीदास** सभी के लिए आगरा नगर साहित्यिक केन्द्र था।

बुलाकीदास गोयल गोत्रीय अग्रवाल जैन थे। कसावर उनका बैंक था। उनका मूल स्थान बयाना था। सवत् १७४७ मे रचित अपनी प्रथम कृति प्रश्नोत्तर श्रावकाचार मे कवि ने अपना परिचय निम्न प्रकार दिया है—

दोहरा

अगरवाल सुभ ज्ञात है, श्रावक कुल उत्पत्ति।
पेमचन्द नामी भलौ, देहि दान बहुनित्त ॥१३॥
धारै व्योक कसावरी, दया धर्म की खानि॥
जैन वचन हिरदै धरै, **पेमचन्द** सुरभान ॥१४॥
अगज ताको कज छवि, **श्रवनदास** परवीन।
ताकै पुत्त सपुत्र है, **नन्दलाल** सुखलीन ॥१५॥
नन्दलाल सुभ ललित तन, सेवत निज गुरुदेव॥
सकल ऋद्धि ताके निकट, आवत है स्वयमेव ॥१६॥

नन्दलाल गृह गेहिनी, जैनुलदे सुभनाम ।
ते दोऊ सुखस्यौं रमै, ज्यों रुकमनि अरु स्याम ॥१७॥
धर्मपुत्र तिनके भयौ, बूलचन्द सुभ नाम ।
तिहि जैनुलदे यो चहै, ज्यो प्रानी उरप्रान ॥

लेकिन इसी परिचय को प्रश्नोत्तर श्रावकाचार के सात वर्ष पश्चात् निबद्ध पाण्डव पुराण मे निम्न प्रकार दिया है—

नगर बयानो बहु बसै, मध्य देश विख्यात ।
चारु चरन जह आचरै च्यारि बर्ण बहु भाति ॥२४॥
जहां न कोऊ दालदी, सब दीसै धनवान ।
जप तप पूजा दान विधि, मानहि जिनवर आन ॥२५॥
बैश्य वंश पुरुदेव नै, जो थाप्यौ अभिराम ।
तिसही बस तहा अवतरचौ, साहु अमरसी नाम ॥२६॥
अगरवाल सुभ जाति है, श्रावक कुल परवान ॥
गोयल गोत सिरोमनी, व्यौक कसावर जान ॥२७॥
धर्म्म रसी सो अमरसी, लछिमी कौ आवास ।
नृपगन जाकौ आदरै, श्रीजिनन्द को दास ॥२८॥
पेमचन्द ताकौ तनुज, सकल धर्म को धाम ।
ताकौ पुत्र सपुत्र है, श्रवनदास अभिराम ॥२९॥
उतन बयानौ छोडि सो, नगर आगरै आय ।
अन्न पान सयोगतैं, निवस्यौ सदन रचाय ॥३०॥
बुधि निवास सो जानिए, श्रवन चरन कौ दास ।
सत्य वचन के जोग सौं, वरतै नो निधि तास ॥३१॥
गनिए सरिता सील की, वनिता ताके गेह ।
नाम अनन्दी तास कौ, मानौं रति की देह ॥३२॥
उपज्यौ ताके उदर तै, नन्दलाल गुन वृन्द ।
दिन दिन तन चातुर्यता, बढै दोज ज्यौं चन्द ॥३३॥
मात पिता सो पढन कौ, भेज दियो चटसाल ।
सब विद्या तिन सीखि कै, धारी उर गुनमाल ॥३४॥

हेमराज पंडित वसै, तिसी आगरे ठाइ ।
गरत गोत गुन आगलो, सब पूजैं तिस पाइ ।।३५।।
जिन आगम अनुसार तैं, भाषा **प्रवचनसार** ।
पंच अस्ति काया अपर, कीनें सुगम विचार ।।३६।।
ऊपजी ताकैं देहजा, जैनी नाम विख्यात ।
सील रूप गुन आगली, प्रीति नीति की पाति ।।३७।।
दीनी विद्या जनक नैं, कीनी अति वितपन्न ।
पंडित जापै सीखिलैं, धरनी तल मैं धन्न ।।३८।।

सवैया

सुगुन की खानि किधौ सुकृत की वानि,
सुभ कीरति की दानि अपकीरति कृपान है ।
स्वारथ विधनि परमारथ की राजधानी,
रमाहु की रानी कियौ जैनि जिनवानी है ।
धरम धरनि भव भरम हरिनि किधौं,
असरनि सरनि कि जननि जहान है ।
हेम सौ उपनि सील सागर रसनि,
भनि दुरित दरनि सुर सरिता समान है ।।३९।।

दोहरा

हेमराज ताहा जानि कैं, **नन्दलाल** गुन खानि ।
वय समान वर देखि ह्वी, पानग्रहण विधि ठानि ।। ४०।।
तब सासू नैं प्रीति सौ मोतिन चौक पुराय ।।
लीनी गृह सुभ नाम धरि, जैंनुलदे इहि भाइ ।।४१।।
नारि पुरुष सुख सौ रमैं, धारैं अन्तर प्रेम ।
पूरव पुण्य फल भोगवैं जय सलोचना जेम ।।४२।।
अल्पबुधि तिनकै भयौ, बूलचन्द सुख खानि ।
तहि जैंनुल दे यौ चहै, ज्यौ प्रानी निज प्रान ।।४३।।
अन्नोदक सम्बन्ध तैं आइ इन्द्रपथ थानि ।
मात पुत्र तिष्टे सही, भनैं सुनैं जिनवानि ।।४४।।

इस प्रकार कवि ने अपना वंश परिचय बहुत ही उत्तम शब्दों में दिया है।

पाण्डव पुराण मे कवि ने अपना वंश परिचय साहु अमरसी के नाम से प्रारम्भ किया है जबकि प्रश्नोत्तर श्रावकाचार में साहु अमरसी के पुत्र पेमचन्द से प्रारम्भ किया है। दोनों ग्रन्थो के आधार पर कवि का निम्न प्रकार वंश वृक्ष ठहरता है—

(१) प्रश्नोत्तर श्रावकाचार
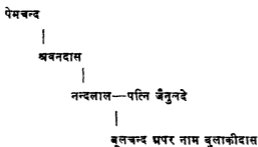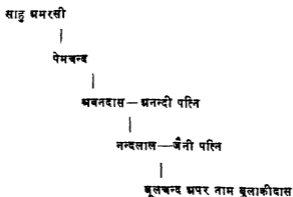
(२) पाण्डवपुराण

इस प्रकार दोनों कृतियों में से पाण्डवपुराण मे कवि ने अपने पूर्वजों में साहु अमरसी का नाम एव बुलाकीदास के पितामह अवनदास की पत्नि का नाम का विशेष उल्लेख किया हैं। शेष नाम समान हैं।

बुलाकीदास के पूर्वज साहु अमरसी बयाना में रहते थे। उस समय बयाना मध्यदेश का अग था। वहाँ चारो ही वर्ण वाले रहते थे सभी सम्पन्न दिखायी देते

थे। उनमे से दरिद्री कोई नही था। जैन परिवार अच्छी सख्या मे थे जो जप, तप पूजा एवं दान चारो ही क्रियायें करने वाले थे। इन्ही जैनो मे साहु अमरसी थे जो वैश्य वंश मे उत्पन्न हुए थे जिसे प्रथम तीर्थंकर पुरुदेव ने स्थापित किया था। वे अग्रवाल थे गोयल उनका गोत्र था। तथा 'कसावर' उनका ग्यौक था। अमरसी धर्मात्मा थे तथा जिनके घर मे लक्ष्मी का वास था। तत्कालीन राजा महाराजा भी साहु अमरसी का सम्मान करते थे। विशाल वैभव सम्पन्न होते हुए भी जिनेन्द्र भगवान के वे दृढ भक्त थे।

साहु अमरसी के पुत्र का नाम पेमचन्द था। वह सुपुत्र था तथा अनेक गुणो की खान था। उसका जीवन पूर्णत धार्मिक था। पेमचन्द के पुत्र श्रवनदास थे। श्रवनदास अपने पूर्वजो का नगर बयाना छोडकर आगरा आकर रहने लगे। अपनी जन्मभूमि छोड़ने का मुख्य कारण आजीविका उपाजन था इसलिए बुलाकीदास ने "अन्नपान सयोग तै" लिखा है लेकिन आगरा मे बसने के साथ ही उन्होने वहा अपना मकान (सदन) भी बना लिया था। श्रवनदास बुद्धिमान थे तथा भगवान जिनेन्द्र देव के भक्त थे। वे पूर्णतः सत्यभाषी थे इसलिए सभी ऋद्धिया उनके घर मे व्याप्त थी। उनकी पत्नि जिसका नाम अनन्दी था अत्यधिक सुन्दर तो थी ही साथ मे शील की खान थी। उन दोनो के पुत्र का नाम नन्दलाल था जो गुणो का मानो समूह ही था। कुछ बडा होने पर माता पिता ने उसे पढने चटसाल भेज दिया। वहा उसने सभी विद्याए पढ ली।

उसी आगरा नगर मे पडित हेमराज रहते थे। वे गर्ग गोत्रीय अग्रवाल जैन थे। सारा नगर उनके चरणो का दास था। हेमराज ने उस समय तक 'प्रवचनसार' एवं 'पंचास्तिकाय' जैसे कठिन ग्रन्थो का हिन्दी भाषानुवाद कर दिया था। उसके घर मे एक पुत्री जैनी ने जन्म लिया जो रूप एव शील की खान थी। जैनी को उसके पिता हेमराज ने खूब पढाया और अत्यधिक व्युत्पन्न कर दिया। हेमराज ने नन्दलाल को उचित वर जान कर उसके साथ अपनी पुत्री जैनी का विवाह कर दिया। दोनो समान वय के थे। फिर क्या था चारो ओर प्रसन्नता छा गयी और जब जैनी ने वधू के रूप मे अपने श्वसुर श्रवनदास के घर मे प्रवेश किया तो उसकी पत्नि (सास) ने मोतियों का चौक पूरा। गृहप्रवेश के अवसर पर उसका नाम जैनुलदे रखा गया।

नन्दलाल एवं जैनुलदे पति पत्नि के रूप में सुख से रहने लगे। दोनों में अत्यधिक प्रेम था तथा वे जयकुमार सुलोचना के रूप में सर्वथा विख्यात थे। प्रश्नोत्तर श्रावकाचार में इन्हें रुकमणि और श्याम के रूप में लिखा है। उन्हीं के पुत्र के रूप में बूलचन्द ने जन्म लिया जो अपनी माता के लिए प्राणों से भी प्यारा था। कविवर बुलाकीदास का बचपन मे बूलचन्द ही नाम था।

बूलचन्द बड़े हुए। आजीविका के लिए आगरा से इन्द्रप्रस्थ (देहली) आ गये और जहानाबाद रहने लगे। उनकी माता जैनुलदे भी अपने पुत्र के साथ ही देहली आकर रहने लगी। वहां माता एव पुत्र दोनो ही रहने लगे। ऐसा लगता है कवि के पिता का जल्दी ही स्वर्गवास हो गया था। अपने पुत्र के साथ जैनी का अकेला आने का अर्थ भी यही लगता है। वहीं पं० अरुणरत्न रहते थे जो सभी शास्त्रो में प्रवीण थे। संस्कृत प्राकृत के वे अच्छे विद्वान थे। वे ग्वालियर (गोपाचल) के रहने वाले थे। बुलाकीदास ने देहली मे उन्हीं के पास ग्रन्थो का विशेष ज्ञान प्राप्त किया था।[1]

बुलाकीदास सस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे। उन्होंने विवाह किया अथवा नहीं। इसके बारे मे दोनो ही कृतिया मौन हैं। क्योंकि यदि उनका विवाह होता तो पत्नि का परिचय भी अवश्य दिया जाता। वे सम्भवतः अविवाहित ही रहे होंगे।

प्रथम रचना

बुलाकीदास ने सर्व प्रथम 'प्रश्नोत्तर श्रावकाचार' का हिन्दी में पद्यानुवाद किया। प्रश्नोत्तर श्रावकाचार मूल संस्कृत भाषा मे निबद्ध है जो भट्टारक सकलकीर्त्ति की रचना है पद्यानुवाद करने के लिए कवि की माता जैनुलदे ने इच्छा व्यक्त की थी।

> तब सुख देकें यौं कही, सुनो पुत्र सुभ बात।
> प्रश्नोत्तर सुभ ग्रन्थ की, भाषा करहु विख्यात ॥२२॥

---

१. यह हेत करि प्रसन्न मैं दयो ज्ञान को भेद।
तब सुबुद्धि घर में जगी करि कुबुद्धि तिम छेद ॥२२॥

जासौ श्रावक भव्य सब, लहइ अरथ तत्काल ।
धारैं ते चित भाव धरि श्रावक धर्म विसाल ।।२३।।
जननी के ए वचन सुनि, लीने सीस चढाइ ।
रचिवे कौ उद्दिम कीयौ, धरि के मन वच काइ ।।२४।।

ग्रन्थ की रचना होने के पश्चात् जैनुलदे ने उसे पूर्ण रूप से सुना तथा अपने पुत्र को खूब आशीर्वाद दिया । उसे मानव जीवन को सार्थक करने वाला कार्य बतलाया । कवि ने यद्यपि मूलग्रन्थ का पद्यानुवाद किया है लेकिन व्रत विधान वर्णन अपनी बुद्धि के अनुसार किया है[1]

प्रश्नोत्तरश्रावकाचार का रचनाकाल संवत् १७४७ वैशाख सुदी द्वितीया बुधवार है । कवि ने ग्रन्थ के तीन भाग जहानाबाद दिल्ली मे तथा एक भाग पानीपत जलपथ) मे पूर्ण किया था ।

सत्रहसै सैंताल मै दूज सुदी वैशाख ।
बुधवार भैरोहिनी, भयौ समापत भाष ।।१०४।।
तीनि हिसे या ग्रन्थ के, भए जहानावाद ।
चौथाई जलपथ विषैं, वीतराग परसाद ।।१०५।।

द्वितीय रचना–पाण्डवपुराण

पानीपत मे कवि कितने समय तक रहे इसका कही उल्लेख नही मिलता लेकिन कुछ वर्षों पश्चात् वे वापिस अपनी माता के साथ इन्द्रप्रस्थ देहली आगये और वही रहने लगे । वहा माता एव पुत्र का जीवन सुख एव शान्तिपूर्वक चलता

---

१. ऐसी विधि यह ग्रन्थ सुभ, रच्यौ बुलाकीदास ।
सौ सब जैनुलदे सुन्यौ, धारयौ परम उल्हास ।।८८।।
बहु असीस सुत कौ दई, बाढ्यौ धरम सनेह ।
धन्य पुत्र तुव जन्म कौ, रच्यौ ग्रन्थ सुभ एह ।।८९।।
व्रत विधान वरने विविध, अपनी मति अनुसार ।
वरनत भूलि परि जहां, कविकुल लेहु सवार ।।९०।।

रहा। प्रतिदिन शास्त्र स्वाध्याय एवं शास्त्र प्रवचन सुनने में समय व्यतीत होने लगा। उस समय माता ने अपने पुत्र के समक्ष पाण्डवपुराण की भाषा करने का निम्न शब्दो मे प्रस्ताव रखा—

सब सुख दै तिन यौं कही, सुनौ पुत्र मो बात।
सुभ कारज तै जग विषै, सुजस होय विख्यात ॥४७॥
महापुरिष गुन गाइए, ताही तैं यह जांनि।
दोइ लोक सुख दाइ है, सुमति सुकरिति थांन ॥४८॥
सुनि सुभचन्द्र प्रतीत है, कठिन अर्थ गम्भीर।
जो पुराण पाण्डव महा, प्रगटै पण्डित धीर ॥४९॥
ताको अरथ विचारि कैं, भारथ भाषा नाम।
कथा पाडु सुत पचमी, कीज्यौ बहु अभिराम ॥५०॥
सुगम अर्थ श्रावक सबै, भनैं भनावैं जाहि।
असौ रचि कैं प्रथम ही, मोहि सुनावो ताहि ॥५१॥

बुलाकीदास की माता स्वय विदुषी थी इसलिए उसने अपने पुत्र से भट्टारक शुभचन्द्र प्रणीत पाण्डवपुराण का हिन्दी में सुगम अर्थ लिखकर सर्वप्रथम उसे सुनाने के लिए कहा जिससे भविष्य मे उसकी निरन्तर स्वाध्याय हो सके। बुलाकीदास की माता के प्रति अपार भक्ति थी इसलिए उसने तत्काल साहस बटोर करके लेखन कार्य प्रारम्भ कर दिया। जितने अश की वह भाषा लिखता उतना ही अंश वह अपनी माता को सुना देता।

इहि विधि भाषा भारती सुनी जिनुलदे माइ।
धन्य धन्य सुत सौ कही, धर्म सनेह बढाइ ॥५॥

अन्त में ग्रन्थ समाप्ति की शुभ घड़ी आगयो और वह भी सवंत् १७५४ आषाढ सुदी द्वितीय गुरुवार को पुष्य नक्षत्र की घड़ी। इस प्रकार प्रथम ग्रन्थ के ७ वर्ष पश्चात् कवि अपनी दूसरी कृति साहित्यक जगत् को भेट करने में सफल रहे। पाण्डव-पुराण को कवि ने महाभारत नाम से सम्बोधित किया है। कवि की यह कृति जैन समाज में अत्यधिक लोकप्रिय बनी रही। इसकी पचासो पाण्डुलिपियां आज भी राजस्थान एवं अन्य प्रदेशो के ग्रन्थागारो में सग्रहीत है।

लघु कृतियां

बुलाकीदास की दो प्रमुख कृतियो के अतिरिक्त निम्न कृतियो के नाम और मिलते हैं—

१. प्रश्नोत्तररत्नमाला

२ वार्ता

३. चौबीसी

१. प्रश्नोत्तर रत्नमाला—दो पत्रो मे निबद्ध यह कृति सस्कृत भाषा की है तथा जिसकी एक मात्र पाण्डुलिपि दि० जैन पार्श्वनाथ मन्दिर बून्दी के शास्त्र भण्डार मे वेष्ठन सख्या ११० मे संग्रहीत है। यह प्रति सुभाषित के रूप मे है।[1]

२. **वार्ता**—प्रश्नोत्तर श्रावकाचार मे से सग्रहीत वार्ता के रूप मे यह दि० जैन मन्दिर कोट्यो नेणवा के शास्त्र भण्डार के एक गुटके मे उपलब्ध होती है। गुटका सम्वत् १८१४ का लिखा हुआ है।[2]

इसका उल्लेख काशी नगरी की प्रचारिणी पत्रिका में हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थो के पन्द्रहवें त्रैवार्षिक विवरण मे हुआ है। पत्रिका के सम्पादको को इसकी प्रति 'माँगरोव गुजर' के रहने वाले श्री दुर्गासिंह राजावत के पास प्राप्त हुई थी। मागरोव का डाकखाना रुनकता तहसील किरावली जिला आगरा है। इसमे १६६ अनुष्टुप छन्द है। भगवान आदिनाथ की वन्दना मे एक छन्द इस प्रकार है—

वन्दो प्रथम जिनेश को, दोष अठारह चुरी।
बेद नक्षत्र ग्रह औरष, गुन अनन्त भरी पुरी।
नमो करि फेरि सिद्धि को, अष्ट करम कीए छार।
सहत आठ गुन सो भई, करै भगत उधार।

---

१. राजस्थान ने जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूची पञ्चम भाग —पृष्ठ सख्या ६८८

२. वही पृष्ठ संख्या १०२२

३. देखिये भक्त काव्य और कवि,-डा० प्रेमयागा -पृष्ठ संख्या २६२-६३

आचारज के पद णमो दूरी अन्तर नति भाउ ।
पंच प्रवरजा सिद्धि ते, भारै जगत के राउ ।

कविवर बुलाकीदास ने इन रचनाओं के अतिरिक्त, अन्य कितनी रचनायें निबद्ध की थी । इस सम्बन्ध मे निश्चित जानकारी देना कठिन है । लेकिन सम्भव है आगरा, मैनपुरी, राजाखेड़ा एव इनके आसपास के नगरो में स्थित शास्त्र भण्डारों की पूरी छानबीन एवं खोज मे बुलाकीदास की और भी रचनायें मिल जावें ।

वैसे मिश्रबन्धु विनोद में कवि की एक मात्र कृति पाण्डवपुराण का उल्लेख किया हुआ है ।[1] डा० नेमिचन्द्र शास्त्री ने भी "तीर्थंकर महावीर एवं उनकी आचार्य परम्परा" मे बुलाकीदास के परिचय में केवल पाण्डव पुराण का ही उल्लेख किया है ।[1] प० परमानन्द जी ने "अग्रवालो का जैन संस्कृति मे योगदान" लेख में बुलाकीदास की दो प्रमुख रचनाओ प्रश्नोत्तरश्रावकाचार एवं पाण्डवपुराण का उल्लेख किया है ।[3]

शेष जीवन

बुलाकीदास की जन्म तिथि के बारे मे कोई उल्लेख नहीं मिलता । लेकिन उनका बाल्यकाल आगरा मे ही व्यतीत हुआ । शिक्षा भी यही हुई । प० अरुण रत्न जो देहली के पण्डित थे, इनके पास बुलाकीदास ने संस्कृत भाषा का अध्ययन किया तथा साथ ही मे अपनी माता जैनुलदे से विशेष शिक्षा प्राप्त की थी । जैनधर्म एवं साहित्य की शिक्षा उनको पैतृक रूप में प्राप्त हुई । संवत् १७४५ से १७५४ का दश वर्ष का जीवन उनका साहित्यक जीवन रहा जिसमे वे 'प्रश्नोत्तरश्रावकाचार' एवं 'पाण्डवपुराण' जैसे ग्रन्थों की रचना करने मे सफल हुये । इसके पश्चात् वे कितने वर्षों तक जीवित रहे इस सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं मिलती । फिर भी बुलाकीदास का समय संवत् १७०० से १७६० तक माना जा सकता है ।

---

१. मिश्र बन्धु विनोद—पृष्ठ संख्या ३४०
२. तीर्थंकर महावीर एवं उनकी आचार्य परम्परा—चतुर्थ भाग—पृष्ठ २६३
३. देखिये अनेकान्त वर्ष २० किरण—४ पृष्ठ १८३–१८४

बुलाकीदास के दो प्रमुख ग्रन्थों का अध्ययन

१. प्रश्नोत्तर श्रावकाचार

जैनधर्म में एकदेशधर्म एव सर्वदेशधर्म नामसे धर्म पालन की दो प्रक्रियायें बतलायी गयी है । इनमे एकदेशधर्म श्रावको के लिये एव सर्वदेशधर्म का पालन साधुओं के लिए कहा गया है

प्रथम धर्म श्रावक करै कह्यौ जु एको देस ।
द्वितीय धर्म मुनिराज को, भाषित सर्वोदेस ।।४९।।
सुगम धर्म श्रावक करै, धरै जु गृह को भार ।।
कठिन धर्म मुनिराज को, सहै परीसह सार ।।५०।।

बारह अंगो के ग्रन्थो मे सातवा अग उपासकाध्ययनांग है जो वृषभ गणधर द्वारा कहा गया है । ये आदिनाथ स्वामी के गणधर थे । अजितनाथ ने भी श्रावकक्रिया का पूर्ण रूप से बखान किया । अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर एव उनके पश्चात् होने वाले गौतम, सुधर्मा एव जम्बुस्वामी ने श्रावक धर्म का विस्तार से वर्णन किया । इसके पश्चात् विष्णुकमार मुनि ने द्वादशाग वाणी का कथन किया । लेकिन धीरे धीरे आयु और बुद्धि दोनों मे कमी आती गयी । आचार्य कुन्दकुन्द ने श्रावकधर्म का प्रतिपादन किया । उनके पश्चात् जिस रूप में श्रावक धर्म चलता रहा तथा श्रुत ज्ञान प्राप्त किया उसी रूप मे आचार्य सकलकीर्ति ने श्रावक धर्म का वर्णन किया । भट्टारक सकलकीर्त्ति द्वारा प्रतिपादित श्रावक धर्म का वर्णन संस्कृत मे था वह सामान्य बुद्धि वालो के लिए भी कठिन रहता था इसलिये उसे ही बूलचन्द अर्थात बुलाकीदास ने हिन्दी मे छन्दोबद्ध किया ।[1]

---

१ घटी आयु अरु मेधा अग, घट्यो धर्म कारन तिहि संग ।
कुन्दकुन्द आचारज कह्यौ तासौं ज्ञान सरावग लह्यौ ।।६४।।
कम सौं चल्यौ जसोई धर्म, कछुक जान्यौ श्रुत को मर्म ।
सकलकीर्ति आचारज कह्यौ, श्रावक धर्म जु जासौं लह्यौ ।।६५।।
सकलकीर्ति शुभ संस्कृत कह्यौ, कठिन अर्थ पंडित ही लह्यौ ।
लियौ जु सोई अरथ विचार, बूलचन्द मति थोरी सार ।।६६।।

सर्व प्रथम कवि अपनी लघुता प्रकट करते हुये धर्म की महिमा का वर्णन करता है—

> मेघ बिना नहि चावर होहि होइ मेघ तब उपजै सोइ।
> धर्म्म बिना त्यौं सुख भी नांहि, सुख निवास इक धर्म्म जु आहि ॥७४॥

दोहा

> जैसे अजगर मुख विषै नांही सुधा निवास।
> पाप कर्म के करन त्यौं लहै न सुख की वास ॥५॥

प्रथम प्रभाव मे ८४ पद्य हैं। दूसरा प्रभाव अजितनाथ के स्तवन से प्रारम्भ किया गया हैं। इसके पश्चात् श्रावक निम्न प्रकार प्रश्न करता है—

> तहा प्रश्न श्रावक करै, कहै ज स्वामी अनूप।
> कैसे दरसन पाइये, कहीयत कौन सरूप ॥५॥

इस प्रश्न का उत्तर निम्न प्रकार है—

> सप्त तत्व कौ सर्द्दहन, कह्यौ जु दरसन एहु।
> भव्य जीव तातै प्रथम, तत्त्व ठीकता लेहु ॥६॥

इसके पश्चात् जीव अजीव आदि सात तत्वो मे से जीव तत्व का व्यवहार एव निश्चय की दृष्टि से कथन किया गया है। अजीव द्रव्य के कथन मे पुद्गल धर्म, अधर्म आकाश और काल द्रव्य का सामान्य लक्षण कहने के पश्चात् आस्रव द्रव्य का वर्णन किया है। पुण्य पाप का लक्षण जोड़ कर नो पदार्थों का वर्णन हो ही जाता है। पुण्य का कवि ने निम्न प्रकार कथन किया है—

> पुन्य पदारथ सोइ, सुख दाइक ससार मैं।
> अर ऊरध गति होइ, जो निर्म्मल भाव निबधइ ॥१०४॥

बुलाकीदास ने प्रभाव (अध्याय) समाप्ति पर निम्न प्रकार अपना परिचय दिया है—इति श्रीमन्महाशीलाभरण भूषित जैनी सुनु लाल बुलाकीदास विरचितायां प्रश्नोत्तरपासकाचार भाषाया सप्त-तत्त्व नव-पदार्थ प्ररूपणो नाम द्वितीय. प्रभावः।

तीसरे प्रभाव मे सम्यग्दर्शन के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है जिसका एक पद्य निम्न प्रकार है—

वीतराग जो देव है, धर्म अहिंसा रूप,
गुरु निग्रन्थ जु मानिए, यह सम्यक्त्व सरूप ।।३।।

अरहन्त के ४६ गुणो का विस्तृत वर्णन करने के पूर्व केवली के आहार का निषेध किया गया है । कवि ने अपने बूलचन्द के नाम का भी प्रयोग किया है ।

छयालीस गुन ए कहे, पढो भव्य सुभ लीन ।
बूलचन्द यौं वीनवैं, राखो कठ सदीव ।।५६।।१२।।

इस प्रकार तीसरे प्रभाव मे देव, धर्म एव गुरु के स्वरूप पर अच्छा प्रकाश डाला है जो १०२ पद्यो मे समाप्त होता है ।

चतुर्थ प्रभाव मे अष्टांग सम्यग्दर्शन का ५६ पद्यो मे वर्णन किया है । पञ्चम प्रभाव सुमति जिन की स्तुति से प्रारम्भ होता है । इसके पश्चात् सम्यग्-दर्शन के आठ अगो की कहानी को निम्न प्रकार विभाजित किया है —

पञ्चम प्रभाव–	निशंकित अग–अञ्जन तस्कर कथा—		१४० पद्य
षष्टम प्रभाव–	नि.कांक्षित अग–अनन्तमतीकथा—		पद्य ६४
सप्तमप्रभाव–	निर्विचिकित्सा एवं अमूढ दृष्टि अग –उद्दायन राजा रेवती रानी कथा—		पद्य ७३
अष्टम ,,–	उपगूहन एवं स्थिति करण अग–	जिनेन्द्र भक्त श्रेष्टि एवं वारिषेण मुनि—	७० पद्य
नवम ,, –	वात्सल्य अंग–	विष्णुकुमार मुनि—	७० पद्य
दशम ,, –	प्रभवाना अग–	वज्रकुमार मुनि—	६४ पद्य
एकादश ,, –	सम्यक्त्व महात्म्य–	अष्ट मदो का वर्णन —	५३ पद्य
द्वादश ,, –	अष्ट मूलगुण, सप्तव्यसन अहिंसा अणुव्रत वर्णन–	—	१०० पद्य

अष्ट मूलगुणो को एक सवैय्या छन्द में निम्न प्रकार गिनाए हैं—

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८
मदिरा आमिष मधु वट फल पीपल जु ऊवर कठूवर औ पिलुखन जानियैं ।
इनको खाइ नर सोइ महापाप धर सुमति कौ नास कर कुमति जु मानियैं ।

तेरी कोरी इन आदि नीचकुल उतपात
अथवा नरक गति तिरजंच ठानियें।
इनकौ जु त्यागी नर सोइ मूल गुन
वाही कौ मुकति वर आगम बखानियें।

इसी प्रभाव मे यमपाल चाडाल एवं धनश्री की कथा भी दी हुई है।

त्रयोदश प्रभाव	सत्याणुव्रत एवं धनदेव सत्यघोष की कथा	— ७४
चतुर्दश प्रभाव	अदत्तादान विरतिव्रत एव महाराज कुमार श्री बारिषेण तापस कथा	— ६१ पद्य
पञ्चदश प्रभाव	स्थूल ब्रह्मचर्याणुव्रत नील्या रक्षक कथा	— ७० पद्य
षोडशम प्रभाव	परिग्रह परिमाणव्रत जयकुमार कथा	— ७७ पद्य
सत्रहवा प्रभाव	तीन गुणव्रतो का वर्णन	— ६५ पद्य
अठारहवा प्रभाव	चार शिक्षाव्रतो मे से देशावकाशिक एव सामाइक व्रत का वर्णन	— १२० पद्य
उगनीसवा प्रभाव	प्रोषधोपवास व्रत वर्णन	— ३२ पद्य
बीस्वा प्रभाव	चतुर्विधदान वर्णन (वैय्यवृत्त)	— १४७ पद्य
इक्कीसवा प्रभाव	चतुर्विधदान कथा, जिन पूजा कथा श्रीषेण, वृषभसेन आदि कथा	— १६५ पद्य

इस प्रभाव मे पूजा पाठ भी दिया हुआ है।

बाईसवा प्रभाव	सल्लेखना, ग्यारह प्रतिमा वर्णन में से सामायिक प्रतिमा तक वर्णन	— ६६ पद्य
तेईसवा प्रभाव	ब्रह्मचर्य प्रतिमा तक वर्णन	— ८४ पद्य
चौबीसवा प्रभाव	शेष दो प्रतिमाओ का वर्णन एव ग्रन्थकार प्रशस्ति	— १०५ पद्य

ग्यारह प्रतिमाओ का वर्णन बुलाकीदास ने आचार्य समन्तभद्र के रत्नकाण्ड श्रावकाचार के अनुसार लिखा है ऐसा उसने संकेत किया है—

रतनकरंडक ग्रन्थ सौ, देखि लिखो यह बात।
बचन समन्त जु भद्र के, जानौं सत्य विख्यात ।।८१।।

ग्रन्थ के ग्रन्त में कवि ने ग्रपने गुरु ग्ररुणरत्न, तत्कालीन बादशाह ग्रौरंगजेब तथा ग्रपनी माता जैनुलदे के प्रति ग्राभार व्यक्त किया है जिनके कारण वह ग्रन्थ रचना में सफल हो सका।

नगर जहानाबाद मैं, साहिब ग्रौरंगसाहि ।
विधिना तिस छत्तर दियौ, रहै प्रजा सुख मांहि ।।९४।।
ताके राज सुचैन मैं, वन्यौ ग्रन्थ यह सार ।
ईति भीति व्यापै नहीं, यह उनकौ उपगार ।।९५।।
धन्य जु माता जेनुलदे, जिन बनवायो ग्रन्थ ।
जाके सुभ सहाइ तैं, सुगम भयो सिव पंथ ।।९६।।
ग्ररुन रतन गुरु धन्य है, जिनके वचन प्रभाव ।
कठिन ग्रर्थ भाषा रच्यौ, लह्यौ सब्द ग्ररथाव ।।९७।।

× .... × .... × .... × .... × .... × ....

गोयल गोत सिरोमनी, नन्दलाल ग्रमलान ।
जस प्रताप प्रगटौ सदा, जब लग ससि ग्ररु भान ।।१०३।।

पाण्डव पुराण

बुलाकीदास की यह सबसे बडी विशालकाय कृति है। पाण्डवपुराण की मूल कृति भट्टारक शुभचन्द्र द्वारा सस्कृत मे संवत् १६०८ मे निबद्ध की गयी थी उसी के ग्राधार पर पाण्डव पुराण की हिन्दी पद्य कृति बुलाकीदास द्वारा निबद्ध की गयी पाण्डवपुराण को ग्रत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई है इसलिये राजस्थान के कितने ही शास्त्र भण्डारो में इसकी पाण्डुलिपिया सग्रहीत है।

पाण्डवपुराण का प्रारम्भ सर्वज्ञ नमस्कार से किया है। ग्रतिम श्रुत केवली भद्रबाहु का स्मरण करते हुए ग्राचार्य कुन्दकुन्द का निम्न शब्दो मे गुणगान किया गया है—

---

१ प्रश्नोत्तर श्रावकाचार भाषा – पद्य संख्या ११० – ग्राकार १० + ४ इन्च। ग्रन्थाग्रन्थश्लोक सख्या २५७२ - लेखन काल - स० १८०७ वर्ष श्रावण बदि ६ लिखंत सुधाराय ब्राह्मण। लिखायत खुशालचन्द्र छाबड़ा पठनार्थं हेतवे। शास्त्र भण्डार दि० जैन बडा तेरापंथी मन्दिर जयपुर।

ब्राह्मी जिन पाषान की, उर्ज्जयन्त गिरसीस ।
या कलि मे वादित करी, कुन्दकुन्द मुनि ईस ।।१६।।

इसके पश्चात् आचार्य समन्तभद्र, पूज्यपाद, अकलंक स्वामी, आचार्य जिनसेन गुणभद्र एव अपने गुरु अरुणरतन का गुणानुवाद एव उनके सुकृत्यों का स्मरण किया गया है। वर्णन अच्छा एव ऐतिहासिक प्रतीत होता है इसलिए उसे अविकल रूप से यहा दिया जा रहा है—

देवागम जिन स्तवन सौं प्रगट सुरागम कीन ।
समंतभद्र भद्रार्थमय, गुन ग्याक गुन लीन ।।१७।।
जिन वारधि व्याकरन कौ, लह्यौ पार मुनिराय ।
पूज्यपाद निति पूज्य पद, पूजौ मन वचकाय ।।१८।।
नि कलंक अकलक जस, सकल शास्त्र विद जेन ।
मायादेवी ताडिता, कुम्भथिता पादेन ।।१९।।
चिरजीव जिनसेन जति, जाकौ जस जग माहि ।
जिन पुरान पुरदेव कौ, वरन्यौ वन्दौ ताहि ।।२०।।
पुराणाद्रि परकासकौ, सूर्यापित है जोइ ।
प्रभवत गुणभद्र गुरु भूतल भूषन सोइ ।।२१।।
अरुण रतन गुरु चरन जुग, सरन गहौं कर जोर ।
वरन ज्ञान के करन कौं, तरुण किरणि जिम भोर ।।२२।।

इसके पश्चात् कवि ने अपने वंश का परिचय दिया है जिसको पूर्व मे उद्धृत किया जा चुका है। कवि की माता द्वारा पाण्डवपुराण भाषा लिखने, कवि द्वारा अपनी लघुता प्रदर्शित करके। वक्ता एवं श्रोता एवं कथा के लक्षण का वर्णन किया गया है। कथा का लक्षण निम्न प्रकार कहा गया है—

कथन रूप कहिए कथा, सो है दोइ प्रकार ।
सुकथा जो जिन कही, विकथा और असार ।।८४।।
चरम सरीरी जे महा, तिनके चरित्त विचित्र ।
पुण्यहेत जहा वर्णयि, सो है कथा पवित्र ।।८५।।

पुन्यपाप फल वर्णिये, वरने व्रत तप दान ।
द्रव्य क्षेत्र फुनि तीर्थ सुभ, अरु सवेग बखान ।
जो स्वतत्व कौ थापि कै, दूरि करै परतत्व ।
ग्यानकथा सो जानिये, जहा वरनै एकत्व ।।८७।।

जम्बूद्वीप मे भरतक्षेत्र और उसमे आर्य खण्ड, वहा के राजा सिद्धार्थ एवं रानी त्रिशला के यहा वर्धमान तीर्थंकर का जन्म हुआ। वर्धमान ने साधु दीक्षा लेने पश्चात् केवल प्राप्त किया और गौतम गणधर के साथ जब उनका समवसरण मगध की राजधानी में आया। तब राजा श्रेणिक प्रभु की शरण मे गया और उनकी अमृतवर्षा युक्त दिव्य ध्वनि को सुना। ीर प्रभु वहू का समवसरण देश के विभिन्न भागो मे गया कवि ने उनके नाम निम्न प्रकार गिनाए है—

अग बग कुरुजगल ठए, कोमल और कलिंगे गए ।
महाराठ सोरठ कसमीर, पराभीर कौकण गम्भीर ।।१८।।
मेदपाट भोटक करनाट, कर्ण कोस मालवै वैराठ ।
इन आदिक जे आरज देश, तहा जिननाथ कीयौ परवेश ।।३६।।

भगवान महावीर का जब समसरण राजगृही नगरी के वैभारगिर पर आया महाराजा श्रेणिक ने महारानी चेलना सहित उनकी वन्दना की और अपने स्थान पर बैठने के पश्चात् भगवान से निम्न प्रकार निवेदन किया—

एकज विनती तुम सा कहु पाण्डव चरित सुन्यौ मैं चहुं ।
पाडव पाच जगत विख्यात, कौन वश उपजे किह भाति ।।१२।।
कुरु अन्वय किस जुग मैं भया, के के नर तिस वसहि ठए ।।
कौन कौन तीर्थंकर भए, कौन कौन सुभचक्री ठए ।
कुरवसहि वरनौ इहि भाय, ज्यौं मेरो ससय सब जाय ।।१४।।

उक्त कथा जानने के अतिरिक्त श्रेणिक ने और भी अनेक प्रश्न पूछे जिनका सम्बन्ध पाण्डव कथा से ही था। कवि ने उन सबका विस्तृत वर्णन किया है।

कवि ने भोग भूमि के पश्चात् अन्तिम कुलकर नाभि से वर्णन प्रारम्भ किया है। चतुर्थकाल के पूर्व का जीवन, नाभिराजा के प्रथम पुत्र तीर्थंकर ऋषभदेव के गृहत्याग एव जयकुमार द्वारा सम्राट भरत के सेनापति का पद ग्रहण तक वर्णन किया गया है। इस प्रभाव मे १४६ पद्य हैं।

तृतिय प्रभाव में सुलोचना उत्पत्ति, स्वयंबर रचना, जयकुमार के गले मे माला डालना, सम्राट भरत के पुत्र अर्ककीर्ति द्वारा विरोध एवं जयकुमार के साथ युद्ध का अच्छा वर्णन किया गया है ।

> धनुष कांन लगि खैंचि सुधारे तीरही,
> तिनके आनन तीक्षन अगि तन चीरही ।
> वार पार सर निकसै उर कौं भेदि कै,
> केइक मारहिं दड सुदडहि छेदि कै ।।११।।
> केइक खरगहिं खरग झराझर वीतही,
> परहिं मुंड कर धरनि इहर नरीतिही ।
> कवच टूटि जब जांहि कचाकच ह्वै परै,
> सूरन के कर शस्त्र सु लरि लरियौ मरै ।।१२।।

युद्ध मे किसी की भी विजय नही होने, अर्ककीर्ति के समझाने पर युद्ध की समाप्ति, जयकुमार सुलोचना विवाह एव भगवान ऋषभदेव के कैलाश से निर्वाण होने का वर्णन मिलता है ।

चतुर्थ प्रभाव मे कुरुवश की उत्पत्ति एवं उस वंश मे होने वाले राजाओं का सक्षिप्त वर्णन किया गया है । अनन्तवीर्य राजा के कुरु पुत्र से कुरुवश की उत्पत्ति मानी गयी है—

> अब अनन वीरज नृपति, राज करयौ बहु काल ।
> तिनही के सुत कुरु भए, सोभित उर गुनमाल ।।३।।
> भए चद कुरु वंस नभ, फुनि उपजे कुरुचद ।
> तिनके तनय सुभंकरो, नृप गन मैं अरविंद ।।४।

इस ही वंश मे १६ वें तीर्थंकर शातिनाथ हुए । जो चक्रवर्त्ति भी थे । उन्ही का ६ पूर्व भवों का वर्णन इस प्रभाव में किया गया है ।

> तिन पीछै तहां नृप भए, विश्वसेन विख्यात ।
> ताकै सुत जिन सांति कौ, वरनौ चरित सुभाति ।।१२।।

इसी वर्णन मे कन्या का विवाह कैसे वर के साथ करना चाहिये इसका निम्न प्रकार कथन किया है—

१ २ ३ ४ ५ ६
जाति अरोगी वय समान, सील श्रुती वपु जांन ।
७ ८ ९
लछि पछय परवारए, नव गुण बरहि बखान ।।२६।।

पञ्चम प्रभाव

एक बार ईसान स्वर्ग की इन्द्र सभा में वज्रायुध राजा की प्रशंसा होने लगी । वहां कहा जाने लगा कि उसके समान इस समय कोई सम्यक्त्वी नहीं हैं । इसी बात को चित्रचूल देवता ने सुन लिया । वह वज्रायुध की प्रशंसा को सहन नही कर सका और उससे वाद करने लिए वहा आ गया ।

चित्रचूल एकात नय, अनेकात नर राइ ।
इनकौं वाद बखानिये, वातैं रूप बनाइ ।।२१।।

इसके पश्चात् कवि ने अनेकात एव एकांत चर्चा को गद्य में लिखा है । इसका एक उदाहरण निम्न प्रकार है—

प्रथम ही सुर बोल्यौ – हे राजन् जीवादिक सप्त तत्व नव पदार्थ के विचार विषै तुम पडित हो । तातैं तुम कहौ । पर्याय पर्याइ विषै भेद है कि नाही । जौ तुम कहौगे की पर्यायी तैं पर्याय भिन्न है तौ वस्तु कौ अभाव होइगौ ।

राजा वज्रायुध ने एकान्तवाद कि विरोध मे अपना पक्ष बहुत ही सुन्दर शब्दो मे रखा । कवि ने पञ्चास्तिकाय मे से कुछ गाथाओ को उद्धृत किया है राजा वज्रायुध की बातो से अन्त मे वह देव अत्यधिक प्रभावित हुआ और निम्न प्रकार अपनी बात कहकर स्वर्ग चला गया —

जैसा स्वर्ग लोक विषै इन्द्र महाराज्य न कह्या था तैं सही है । यामैं सदेह नांही । ऐसैं निसदेह सुर भया । कह्या की वज्रायुध तुम धन्य हौ शुद्ध सम्यगदृष्टी हौ । (पृष्ठ ६६)

क्षेमकर अपने पुत्र वज्रायुध को राज्य सौपकर स्वयं दीक्षित हो गया । वज्रायुध चक्रवर्त्ति राजा था । वज्रायुध के पश्चात् सहस्रायुध राजा बना । इसके पश्चात् एक के पीछे दूसरे राजा बनते गये । अन्त में हस्तिनापुर के राजा विश्वसेन हुए उनकी रानी ऐरावती थी । उसी के गर्भ से १६ वें तीर्थंकर शांतिनाथ का जन्म हुआ । जब वे युवा हुए तो विश्वसेन ने उनको राज्यभार सौंप कर स्वयं वैराग्य धारण कर लिया । वे चक्रवर्त्ति सम्राट् थे । दीर्घकाल तक राज्य सम्पदा भोगने के

पश्चात् अपने ही दो रूप दिखने के कारण वैराग्य हो गया और अन्त में सम्मेद-शिखर से निर्वाण प्राप्त किया।

षष्ट प्रभाव में १७ वें तीर्थंकर कुंथुनाथ एव सप्तम प्रभाव मे अरनाथ तीर्थंकर का जीवन चरित वर्णित है। दोनों ही प्रभाव छोटे छोटे हैं।

अष्टम प्रभाव मे तीर्थंकर 'अरनाथ' के चार पुत्रो से कथा प्रारम्भ होती है।[1]

इसी बीच ऊज्जयिनी के राजा श्री वर्मा, उसके चार मन्त्रियों एवं अकंपनाचार्य संघ की कहानी प्रारम्भ होती है। मुनिसंघ के एक मुनि श्रुत सागर द्वारा वादविवाद मे जीतकर आने के साथ कथा में मोड आता है।

सातसौ मुनियो पर उपसर्ग, उपसर्ग निवारण हेतु विष्णुकुमार मुनि द्वारा बलि राजा से तीन कदम भूमि मांगना, और अकपनाचार्य आदि ७०० मुनियो पर से उपसर्ग दूर होने की कथा चलती है। जैनधर्म में रक्षाबंधन पर्व का इसीलिए महत्त्व है कि इस दिन ७०० मुनियो की विष्णुकुमार मुनि द्वारा जीवन रक्षा हुई थी।

इसी प्रभाव मे गंगासुत गंगेय द्वारा अपने पिता की इच्छा पूर्ति के लिए धीवर कन्या गुणवति को लाया जाता है। राजपुर के राजा व्यास के तीन पुत्र धृतराष्ट्र, पाडु, एवं विदुर होते हैं। इसके पश्चात् हरिवश की कथा प्रारम्भ होती है। धृतराष्ट्र के भाई पाडु द्वारा कुन्ती से समागम के प्रस्ताव का कवि ने अच्छा वर्णन किया है। कुन्ती कुंवारी थी पांडु द्वारा प्रेमपाश में फसने के कारण वह गर्भवती हो गयी। जब माता पिता को मालूम पड़ा तो वे बहुत कुपित हुए। कुन्ती के पुत्र हुआ। इसका नाम कर्ण रखा गया लेकिन लोक लज्जा से भयभीत होकर वे उस बालक को मन्जूसा में रखकर नदी मे बहा दिया। वह बहता हुआ चम्पापुर के तट पर पहुँच गया जहाँ के राजा द्वारा पुत्र के रूप मे पाला गया।

---

१. अर सुत श्री अरविंद नृप, ताकै पुत्र सुचार।
उपजे सूर सुचारतें, ताकै भूप सुसार ।।२।।

नवम प्रभाव

प्रारम्भ मे कवि ने कर्ण की उत्पत्ति पर एक व्यंग कहा है—

सुनि श्रेणिक ससार मैं, महामूढ है लोग ।
ऐसे कर्णकुमार कौ, कर्णज कहत अजोग ॥२॥
कर्ण कर्ण बातै चली, जनम समैं पुर ग्राम ।
तातै अन्धक वृष्टि नृप, कर्ण धरयौ तिस नाम ॥३॥
खाज उठी राधा श्रवन, बालक लेती बार ।
तातैं राजा भानु नै, भाष्यौ कर्णकुमार ॥४॥
कर्ण भवो जो कर्ण तै, तौ यह सारि सिष्टि ।
क्यो नहि उपजै कर्ण तै, तातै झूठ अनिष्ट ॥५॥
कर्ण नासिका नर भए, देखे सुने न कोइ ।
तातै उतपति कर्ण की, कर्ण विषै किम होइ ॥६॥

इसके पश्चात् पाण्डु एवं कुन्ती के साथ विवाह का कवि ने बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है। बरात का चढना, बरतियो द्वारा नाचगान, नगर की सुन्दरियो द्वारा पान्डु को देखने की इच्छा, आदि का अच्छा वर्णन किया है। पाण्डु का कुन्ती के साथ विवाह सपन्न हो गया। पाण्डु की दूसरी पत्नि का नाम मद्री था। कुन्ती से युधिष्ठर, भीम एव अर्जुन तथा मद्री से नकुल एव सहदेव पुत्र हुए। धृतराष्ट्र की पत्नि का नाम गधारी था। जब वह सर्वप्रथम गर्भवती हुई तो उसे सौ पुत्रो की माता होने का आशीर्वाद प्राप्त हुआ।

पूरन मास वितीते जबैं, सुख सौ तनुज जन्यौ तिन तबैं ।
तब बढवारनि नाइन धाइ, ताहि असीस दई इहि भाइ ॥२०॥
सत सुत जनियौ सुख खांनि, चिरजीयौ गधारि रांनि ।
जिहिं मग जुद्ध सु दुखतैं होइ, तातैं भनि दूर जेघन सोइ ॥२१॥

पांचो पाडवो एव १०० कौरवो को द्रोणाचार्य ने धनुर्विद्या सिखलायी।

दशम प्रभाव

एक समय पांडु एव मद्री वन भ्रमण को गये। वन की सुन्दरता, एकाकीपन एव प्राकृतिक छटा को देखकर वह कामातुर हो गया और मद्री को लेकर झुरमुट की ओर चला। वहा उसने एक मृग एव मृगी को काम वासना युक्त देख

कर अकारण उसे अपने ही बाण से मार गिराया । अकारण ही मारने से आकाश से आकाश वाणी हुई जिसमें उसे भला बुरा कहा और इस कार्य को निन्दनीय ठहराया । वहीं पर विहार करते हुए एक निर्ग्रन्थ मुनि आये उन्होने भी पाण्डु एव मद्री को संसार की असारता एवं भोगो की निस्सारता पर प्रवचन दिया ।

> इहि विधि मुनि कै वचन सुनि, पांडु भयौ भयवंत ।
> जीवन संयम तडित सम, जांनि छिनक छय संत ।।७।।
> तब चित मैं थिरता धरी, वन्दे मुनिवर पाइ ।
> अधिक भगति करि थुति करत, चल्यौ नगर को राइ ।।८।।

पांडु राजा नगर मे गये । अपने पूरे परिवार को एकत्रित किया और सबको काम विषयो की एव जगत की असारता तथा मृत्यु की अनिवार्यता पर प्रकाश डाला । अपने भाई धृतराष्ट्र को बुलाकर अपने पाचो पुत्रो को सौंप दिया और अपने पुत्रो के समान उनसे व्यवहार करने की । प्रार्थना की कुन्ती से पुत्रो को सम्हालने के लिए कहा । राज्य पाट त्याग कर गगा नदी के किनारे जाकर जिन दीक्षा धारण करली और यावत् जीवन आहार न लेने की प्रतिज्ञा ले ली, मद्री रानी ने भी वैसा ही किया और दोनों ने मरकर प्रथम स्वर्ग में प्राप्त किया ।

एक दिन महाराज धृतराष्ट्र राज्य करते हुए वन भ्रमण को चले । वहाँ की एक शिला पर विपुलमती मुनि ध्यानस्थ थे । राजा को मुनि ने उपदेशामृत पान कराया । इसके पश्चात् धृतराष्ट्र ने मुनि से निम्न प्रकार प्रश्न किये—

> ऐसी सुनि कै पूछी राइ, हे स्वामी कहीए समझाइ ।
> मेरे सुत अति पांडव साज, इनमैं कौन लहैगौ राज ।।५७।।
>
> × .... × .... × .... × .... ×
>
> पाडव पंच महाबल धनी, ह्वं है कैसी थिति उन तनी ।।६१।।
> ए मेरे सुत पृथिवी माहि, छत्रपति ह्वं है अकि नांहि ।
> मगध देस फुनि सोभित महा, राजगृही पुरि तामैं ।
> जरासंध नृप तामैं महा, प्रति केशव सों अन्तिम कहा ।

उक्त प्रश्नो के अतिरिक्त धृतराष्ट्र ने और भी प्रश्न पूछे । मुनिराज ने धृतराष्ट्र के प्रश्नों का निम्न प्रकार उत्तर दिया—

ग्रैसी सुनि मुनि बोले सही, हे राजा अब सुनीये यही ।
पाडव ग्ररु दुरजोधन ग्रादि, इनमैं ह्वं है ग्रति हि विवाद ।

दोहा

एक राज के कारनैं ह्वं है इनहि विरुद्ध ।
तेरे सुत कुरुखेत मे, मरि हैं करि कै जुद्ध ।।६८।।
दुहू उरके सुभट जहां, मरहि परस्पर धाइ ।
ग्रैसे रण मैं पाडवा, जीति लहैगे राइ ।।६६।।
हति कं तेरे सुतन कौ, गहि गजपुर राज ।
पूरव पुन्य प्रताप तै, लहि हे सब सुख साज ।।७०।।
जरासध की बात तुम, जो पूछी यह ग्रौर ।
सो नारद्दन हाथ तै, मत्ति हैं ताही ठोर ।।७१।।

ग्यारहवां प्रभाव

मुनि की बात सुनकर राजा धृतराष्ट्र भी जगत से उदासीन हो गये । ग्रौर युधिष्ठर को राजा बना कर स्वय ने जिनदीक्षा धारण कर ली । द्रोणाचार्य से पाच पाण्डवो एव कौरवो ने धनुर्विद्या सिखी । लेकिन इस विद्या मे पाण्डव प्रवीण थे । पाडबो एवं कौरवो मे धीरे धीरे विरोध बढ़ने लगा । इस विरोध को शान्त करने के लिए युधिष्ठर ने ग्राधा ग्राधा राज्य बाट दिया । लेकिन इसमे भी शान्ति नहीं मिली । जब भी कोई प्रसग ग्राता कौरव उपद्रव किये बिना नही मानते । फिर भी वे भीम एव ग्रर्जुन की बराबरी नही कर सकते थे । एक बार भीम को का जहर खिला दिया लेकिन भीम ग्रपने पुण्योदय से बच गया । एक बार धनुर्विद्या की परिक्षा मे ग्रर्जुन ने पक्षी के ग्राखो पर तीर चलाकर ग्रपनी विद्या की प्रशसा प्राप्त की । शब्दवेधी बाण चलाने मे भी ग्रर्जुन सबसे ग्रागे रहे ।

बारहवां प्रभाव

इसके पश्चात् राजा श्रेणिक द्वारा यादवो की कथा कहने की प्रार्थना करने के कारण कवि ने इस प्रभाव में यादव कथा कही है । यादव वंश मे वसुदेव शिरोमणी थे । वसुदेव के बलभद्र पैदा हुए । एक बार जरासंध ने घोषणा की जो सिंहरथ को बाधकर ले ग्रावेगा उसके साथ ग्रपनी पुत्री का विवाह करेगा । वसुदेव सेना लेकर

आगे गया और सिघरथ को बांधकर ले आया। इससे जरासध बहुत प्रसन्न हुआ। तीर्थंकर नेमिनाथ के आगमन को जानकर कुबेर ने इन्द्र की आज्ञा से द्वारावती नगरी को बसाया। वहा का राजा समुद्रविजय था। उसकी रानी का नाम शिवादेवी था। वह अत्यधिक सुन्दर एव रूपवती थी। उसने सोलह स्वप्न देखे जिनके फल पूछने वह शीघ्र ही तीर्थंकर की माता बनने वाली हैं ऐसा बतलाया। माता की श्री ह्री धृति आदि सोलह देवियां सेवा करने लगी तथा विभिन्न प्रकार से माता को प्रसन्न रखने लगी। सावन सुदी षष्टी के दिन नेमिनाथ का जन्म हुआ। स्वर्ग से इन्द्र ने आकर तीर्थंकर का जन्माभिषेक मनाया। सारे लोक मे आनन्द छा गया।

तेरहवां प्रभाव

इस प्रभाव मे श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मणि हरण एव विवाह, शिशुपाल वध, प्रद्युम्न जन्म एवं हरण आदि की सक्षिप्त कथा के पश्चात् फिर कौरव पांडवो की कथा आगे चलती है। युधिष्ठर द्वारा आधा आधा राज्य बाटने के पश्चात् कौरव सन्तुष्ट नही हुये और उन्होने पूरे राज्य के १०५ टुकडे करने पर जोर दिया। इस प्रस्ताव का पाण्डवो ने घोर विरोध किया। कौरवो ने पाण्डवों को मारने के लिए लाक्षागृह बनाया लेकिन उनका कुछ भी सफलता नहीं मिली। सभी पाडवपुत्र पूर्व निर्मित गुप्त मार्ग से निकल गये। पांचो पाण्डव नाव मे बैठकर गगा पार करने लगे। लेकिन बीच मे नाव रुक गयी। धीवर ने कहा कि गगा में रहने वाली तु डी देवी नर बलि चाहती है। सब फिर विपत्ति में फस गये। युधिष्ठर ने अपना बलिदान देना चाहा लेकिन भीम गगा में कूद पडा और तु डी को मार कर उसे अपने वश में कर लिया। और अन्त में सभी सकुशल गगा पार उतर गये। कवि द्वारा पूरा प्रभाव ही रोमाञ्चक ढग से निबद्ध किया गया है।

चौदहवां प्रभाव

सभी पाण्डव प्रछिन्न वेश में कोशिकपुर पहुचे। वहा से त्रिशृगपत्तन पहुचे। वहा के राजा के १० कन्यायें थी। तथा एक कन्या नगर सेठ के थी, एक निमित्त ज्ञानी के अनुसार सभी का विवाह पाण्डवपुत्रों के साथ होना था। इसलिए जब पांडव वहां पहुचे तो चारो ओर प्रसन्नता छा गयी एव सभी ग्यारह कन्याओं का विवाह युधिष्ठर के साथ हो गया।

पन्द्रहवाँ प्रभाव

सभी पांचो पांडव अपनी माता कुन्ती के साथ आगे बढ़ते गये । मार्ग में जब भीम जल लेने गया तो उसे वहा खगपति मिला। इसके साथ एक कन्या थी जो हिडम्बी की पुत्री थी । एक भयानक वन में भीम ने एक राक्षस पर विजय प्राप्त की । वही पर एक वणिक था । सध्या होने पर वह रोने लगा । पूछने पर मालूम हुआ की बक राजा के भक्षण के लिए आज उसके बालक का नम्बरहैं । यह सुन कर भीम को दया आयी और उसने बालक के स्थान पर अपने आप का बलिदान देने की तैयारी की भीम ने बक राजा को लडाई मे हराकर उसे भविष्य मे किसी जीव की हिंसा न करने की प्रतिज्ञा करवायी । पांचों पाण्डव आगे गये मार्ग में आने वाले सभी जिन चैत्यालयो की वन्दना करते गये । फिर वे चलकर चम्पापुरी पहुँचे । कर्ण वहा का राजा था । पाडव गण वहाँ काफी समय तक रहे । वही पर भीम ने एक मतवाले हाथी को वश मे किया । फिर वे ब्राह्मण के वेश मे आगे बढते गये । एक दिन जब भीम ब्राह्मण वेश मे भिक्षा मागने राजा के यहाँ गया तो राजा ने भिक्षा मे उसे अपनी कन्या दे दी ।

सोलहवाँ प्रभाव

पाचो पांडवो ने दक्षिण मे भी खूब भ्रमण किया । इसके पश्चात् वे पुनः गजपुर को आगये । वे सभी विप्र वेश मे घूमते थे । वहां के राजा द्रुपद थे तथा उसकी पुत्री का नाम द्रोपदी था । जिसकी सुन्दरता का वर्णन करना सहज नहीं था । उसके विवाह के लिए स्वयबर रचा गया जिसमें राजा महाराजा सभी एकत्रित हुए । गाडीव धनुष को चढाने में सफल होने वाले राजकुमार को द्रोपदी को देने की घोषणा की गयी । चारो ओर के अनेक राजा एकत्रित हुए ।

> तौ लौं नृप सब आए तही, दुर्योधन कर्ण आदिक सही ।
> जालधर अस जादव ईस, सलपति फुनि मबधी धीस ।।५०।।
> कातिवान बहु सोभित रूप, बैठे मंडप मांहि अनूप ।
> पाडव पांचौ दुजि कै भेष, आप पहुँचे सोभा देखि ।।५२।।

सभी राजाओ ने धनुष को जाकर देखा । राजाओं का परिचय करवाया गया । किसी राजा ने भी धनुष चढाने में अपनो बल नहीं दिखा सके । अन्त में अर्जुन ने विप्र के वेश मे ही धनुष चढा दिया । द्रोपदी ने उसके गले में माल डाल

दी। दुर्योधन आदि राजाओं ने अपना दूत भेजकर इसका विरोध किया। लेकिन राजा द्रुपद ने स्वयंवर के निर्णय को न्याय संगत बतलाया। दुर्योधन आदि राजाओं ने युद्ध की घोषणा कर दी। चारों और युद्ध की तैयारी होने लगी। द्रोपदी यह देखकर डर गयी। परस्पर मे खूब युद्ध हुआ। अर्जुन एवं भीम ने अपने पराक्रम से सबको चकित कर दिया। जब द्रोण ने अर्जुन को ललकारा तो अर्जुन अपने गुरु के विरुद्ध बाण चलाने के बजाय बाण द्वारा अपना परिचय दिया। पांडवों को जीवित जानकर सभी प्रसन्न हो गये लेकिन कौरव मन ही मन जलने लगे। इसके पश्चात् पाण्डव हस्तिनापुर चले गये।

सत्रहवां प्रभाव

पाण्डवो एवं कौरवों ने अपना राज्य आधा बांट लिया। तथा सुख पूर्वक रहने लगे। युधिष्ठर ने इन्द्रप्रस्थपुर, भीम ने तिलपथ, अर्जुन ने स्वर्णप्रस्थ, नकुल ने जलपथ एवं सहदेव ने वणिकपथ नामक नगर बसाकर राज्य करने लगे। कुछ समय पश्चात् अर्जुन ने सुभद्रा का हरण कर लिया। दोनो का धूम धाम से विवाह हो गया। अर्जुन को कितने ही दैविक विद्याएं प्राप्त हुई। एक दिन दुर्योधन ने पाण्डवों को पास बुलाया तथा प्रेम से द्यूत खेलने को राजी कर लिया। द्यूत मे पाडव सभी कुछ हार बैठे।

> छल करि जीते कौरव कस, धरम तनुज हारे सरबंस।
>
> हारे हार रतन केयूर, कटक सुसीस प्रकट द्युति पूर ॥७०॥
>
> दरवि देश हारे बहुमंत, हारे हय गय रथ संजूत।
>
> अन्न कनक भाजन भंडार, हारी जो क्षेत आतासार ॥७१॥

द्यूत क्रीडा मे हार के कारण पांडव सम्पूर्ण राज्य हार गये तथा बारह वर्ष तक वनवास मे रहने का निर्णय लिया। वे नगर को छोड़ कर कालिंजर वन में रहने लगे।

अठारहवां प्रभाव

वन में जाने पर पांडवो को मुनि के दर्शन हुए। मुनि श्री ने अशुभ कर्मों का फल बतला कर सब को शुभ भविष्य के लिए आशान्वित किया। उसी वन मे एक खेचर मिला। उसने पारथ नृप को रथनुपुर में रहने का आग्रह किया। अपने भाइयों के साथ वे पांच वर्ष तक वहां रहे। कौरव राज दुर्योधन ने पांडवों को मारने के

अनेक उपाय किये। पहले चित्रांगद को भेजा लेकिन वह भी बुरी तरह हार गया। फिर कनकध्वज राजा ने पाडवो को सात दिन मे मारने की प्रतिज्ञा की। भिल्ल के भेष मे वह वन मे आया और उनसे झगडा करने लगा। उसने द्रोपदी का हरण कर लिया। आपस मे खूब विग्रह हुआ। लेकिन भील राजा द्वारा उसे मार दिया गया। इसके पश्चात् वे गुप्त भेष मे विराट राजा के यहा पहुचे और विभिन्न नामो से काम करने लगे। कीचक जैसे राक्षस को यहा भीम ने मारा। इसके पश्चात् और भी उपाय किये लेकिन पाडवो की जिनभक्ति, साहस एव शौर्य के कारण कुछ भी नहीं हो सका।

उनीसवां प्रभाव

दुर्योधन पाडवो को मारने के अनेक उपाय ढूढने लगा। उसने विराट राजा की गायो को चुरा लिया। गायो को छुडाने लिए अच्छा युद्ध हुआ। उसमें कौरवो के कितने ही वीर मारे गये। पाडव गायो को छुडाने मे सफल हुए। पाडवो ने कौरवो के साथ युद्ध भी अज्ञात भेष मे ही किया। जब विराट राजा को वास्तविकता का मालूम हुआ। तब वह कहने लगे—

मै नही जाने तुम्हरो देव, धरमपुत्र तुम छमियो एव।
अब तै तुम ही स्वामी इष्ट, हम किंकर तुम पालक शिष्ट ॥५॥
याही पुर मैं बधव सग, कीजे राज सदा निरभग।
बहुत विनय सौ असे भाषि, गोष्टी मैं सब गोधन राखि ॥६॥

विराट राजा ने अपनी पुत्री का विवाह अभिमन्यु से कर दिया। विवाह मे श्रीकृष्ण, बलराम, दुर्योधन आदि सभी राजा महाराजा एकत्रित हुए। विराट राजा ने सब की खूब आवभगत की।

राजा श्रेणिक ने जब एक अक्षौहिणी सेना का सख्या बल जानना चाहा। इसका समाधान निम्न प्रकार किया गया—

सहसइकीस सतक वसु लहै,
सत्तर फुनि गज सख्या लहै ॥
ते तेहीं रथ गनीये तही,
हय सख्या अब सुनीयेसही ॥ १७ ॥

पैंसठि सहस सतक षट जानि,

दस ऊपरि हय सख्या ठानि। (६५६१०)

एक लख्य नौ सहसै मित्त,

तिनि सतक पचासहि पति ।।१०६३५०।१८।

इतनी सैना इकठी होइ,

एक अछोहिनी गनीये सोइ ।।

कुन्ती ने द्वारका मे आकर श्रीकृष्ण जी से दुर्योधन के सभी कुकृत्यों को बतलाया और पाण्डवो पर किये जाने वाले व्यवहार के बारे में बतलाया। इस पर श्रीकृष्ण जी ने दुर्योधन के पास अपना एक दूत भेजा और पाण्डवो को आधा राज्य देने की सलाह दी। लेकिन दुर्योधन कब मानने वाला था वह तो उल्टा क्रोधित हो गया।

बीसवां प्रभाव

पाडव कौरव युद्ध के बादल मडराने लगे। दुर्योधन को बहुत समझाया गया कि वह आधा राज्य पाडवो को दे दे। ऐसा नहीं करने पर जिनेन्द्र भगवान ने जो बात कही थी वही होगी। जब श्रीकृष्ण जी के दूत ने आकर उनसे सारी बात बतलाई। श्रीकृष्ण जी युद्ध के लिए अपनी तैयारी करली। पाचजन्य शंख को पूर दिया। शख की आवाज सुनते ही कुरुक्षेत्र मैदान मे सेनायें एकत्रित होने लगी। कवि ने इस मे चतुरगिनी सेना का विस्तृत वर्णन किया है। इसके पश्चात् कुरुक्षेत्र मे खडी सेना कहां कहां खडी है कितना सख्या बल है आदि सभी का वर्णन किया है। कौरव पाडवो मे घनघोर लडाई होने लगी। एक दूसरे को ललकार कर युद्ध के लिए आह्वान किया जाने लगा तथा एक दूसरे के पौरुष की हसी उडायी जाने लगी। भीष्मपितामह युद्ध मे जर्जरित हो गये और जब उनके कठगत प्राण आ गये तब उन्होंने युद्ध भूमि मे सन्यास ले लिया तथा सल्लेना व्रत धारण कर लिया। उनका अन्तिम सन्देश निम्न प्रकार था—

करो परस्पर मित्रता, तजो सत्रुता चित्त।

अब लौं क्या अैसे भये, तुम निहचै नहि कित्ति ।।६५।।

जे केई रन मे मरे, गए निंद गति सोइ।

तातैं कीजै धर्म्म अब, दस लक्षण अवलोई ।।६६।।

शुभ भाव से मरने के कारण भीष्म पितामह पांचवें स्वर्ग में जाकर देव हुए।

एक बीसवां प्रभाव

दूसरे दिन फिर युद्ध प्रारम्भ हुआ। अभिमन्यु ने भीषण युद्ध किया। इसी समय दुर्योधन का पुत्र प्रचड गति से बाण छोडने लगा। लेकिन वह अभिमन्यु के द्वारा मारा गया। इससे दुर्योधन ने योद्धाओ को अभिमन्यु को मारने के प्रोत्साहित किया। द्रोण, कर्ण कलिंगराजा सभी अभिमन्यु को मारने दोड़े। लेकिन कोई उपाय नही चला। आखिर सबने मिलकर उसे घेर लिया। दुर्भाग्य से जयद्रथ आ गया और उसके हाथ से अभिमन्यु को प्राणघातक बाण लगा। अभिमन्यु ने उसी समय सभी कषायो से विरक्ति ले कर शान्त चित्त से भगवान को स्मरण करते हुये मृत्यु को वरण किया। अभिमन्यु के मरने से कौरवो मे प्रसन्नता छा गयी जब कि पांडवो मे शोक संतप्त छा गया। जयद्रथ की रक्षा के लिये द्रोण ने पूरे उपाय किये। लेकिन अर्जुन ने जयद्रथ का उसी दिन बध करने की प्रतिज्ञा की। भयानक युद्ध के मध्य अर्जुन ने जयद्रथ को मार भी डाला और उसके सिर को पिता की गोद मे डाल दिया। इसके पश्चात् अश्वत्थामा मारा गया। जब कौरवो की हार पर हार होने लगी तो उन्होने युद्ध के सारे नियमो का उल्लघन कर रात्रि को सोते हुये पांडवो पर धावा बोल दिया। हजारो निहत्थे पाडव सेना मारी गयी फिर द्रोणाचार्य भी मारे गये। कर्ण व अर्जुन मे परस्पर मे घोर युद्ध हुआ और कर्ण भी अर्जुन के तीर से मारा गया। उधर भीम ने दुर्योधन के सभी भाइयो को एक एक करके मार डाला। इस पर भी दुर्योधन के हृदय की आग ठडी नही हुई।

> अैसैं कहि कौरव पति, चले जुद्ध को धाई।
>
> पाडव सेना सनमुखें, क्रोध प्रचड बढाइ ।।८४।।

दुर्योधन और पाडवो के बीच भीषण युद्ध हुआ ' लेकिन दुर्योधन बच नही सका और वह भी मारा गया। इसके पश्चात् शेष कौरव सेनापति भी मारे गये। अन्त में जरासन्ध भी कौरवो की ओर से लडने के लिए आया। जरासन्ध के साथ भीषण युद्ध हुआ। अन्त मे जब जरान्सध ने चक्र चलाया तो वह भी श्रीकृष्ण जी के हाथ में आ गया। और कृष्णजी ने चक्र चलाया तो उसने तत्काल जरासन्ध का शिर काट दिया। इस प्रकार १८ दिन तक भीषण लड़ाई होने के पश्चात् कौरव पांडव युद्ध की समाप्ति हुई और पर्याप्त समय तक पांडवो ने देश पर शासन किया।

बाबीसवां प्रभाव—

बहुत समय व्यतीत होने पर एक बार युधिष्ठर की राजसभा मे नारद ऋषि का आना हुआ। महलों में द्रोपदी द्वारा नारद का उचित सम्मान नही मिलने के कारण वह कुपित होकर वह उसके हरण का उपाय सोचने लगे। अन्त मे धातकीखंड के सुरकुरि के पद्मनाभ राजा के पास गये और उन्हें द्रोपदी का पट चित्राम दिखलाया। पद्मनाभ चित्र देखकर उस सुन्दरी को पाने की अभिलाषा करने लगा और नारद से उसका पूरा वृतान्त पूछ लिया। नारद द्वारा पूरा परिचय प्राप्त करने के पश्चात् वह वहाँ आया और सोती हुई द्रोपदी का हरण करके अपने यहाँ ले आया। प्रात होने पर जब द्रोपदी की नींद खुली तब उसने चारो ओर देखा। पद्मनाभ राजा ने अपना सारा वृतान्त कहा और उसके सामने रानी बनने का प्रस्ताव रखा। द्रोपदी ने राजा पद्मनाभ को पांडवों का परिचय दिया। द्रोपदी के हरण से हस्तिनापुर में भी हाहाकार मच गया। सेना सुसज्जित कर दी गयी। चारों ओर तलाश होने लगी, इतने में वहाँ नारदमुनि आये और कहने लगे कि धातकीखंड की सुनकापुरी के राजा पद्मनाभ के यहाँ उसे अश्रुवदना द्रोपदी देखी है। इस पर पाण्डव वहा अपनी सेना सहित पहुँचे। पद्मनाभ सेना देखकर घबरा गया और द्रोपदी से क्षमा मांगने लगा। आखिर उन्हें द्रोपदी मिल गई। सबने इस उपलक्ष मे जिन पूजा कीनी।

तेवीसवां प्रभाव—

सभी पाडव श्रीकृष्ण के साथ वापिस आ गये। पाण्डव अपने राज्य का समस्त भार अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित को देकर मथुरा आ गये। इधर २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ ने गृह त्यागकर दीक्षा ग्रहण की और घोर तपस्या के पश्चात् कैवल्य हो गया। भगवान का समवसरण रचा गया। कुछ समय पश्चात् नेमिनाथ का समवसरण ऊर्जयत गिरि पर आया। सभी पाण्डव उनके दर्शनार्थ गये। उन्होंने हरि राज्य एव द्वारावती कब तक रहेगी यह प्रश्न किया। इस पर नेमिनाथ ने कहा कि द्वीपायन ऋषि के श्राप से द्वारिका जलेगी तथा जरतकुमार के बाण से श्रीकृष्ण जी की मृत्यु होगी। जब जरत्कुमार ने श्रीकृष्ण की मृत्यु के समाचार पाण्डवों को आ कर कहे तो सभी पाण्डवगण रोने लगे। कुन्ती बहुत रोयी। जरत्कुमार को साथ लेकर वहाँ गये जहाँ बलदेव हरि के मृतक शरीर को लिए हुए थे। पाण्डवों ने जब दाह किया करने के लिए कहा तो बलराम बहुत क्रोधित हुए। कुछ समय पश्चात् सर्वार्थसिद्धि से देव ने आकर बलराम को सम्बोधित किया। अन्त में तुंगी गिरि पर पाण्डवो ने मिलकर उनका दाह संस्कार किया। पिहितास्रव मुनि के पास स्वयं बलराम ने भी जिन दीक्षा ले ली।

चौबीसवां प्रभाव—

पाण्डव वहाँ से द्वारिका आये। लेकिन द्वारिका जल चुकी थी स्वर्गपुरी के समान वह नगरी अब राख का ढेर थी। कवि ने द्वारिका की दशा का अच्छा वर्णन किया है—

> होते नित जिन तै आनन्द, वे सब बिनसे कूंवर वृन्द।
> रुकमिनि आदिक रानी यह, तिनके सदन भए दह वह।
> जे नित करती हास विलास, बिनसि गई ज्यौं नीरद रासि।
> अहो सुजन की संगति रमयां, छिनक छई है सरिता समां ॥८॥

जगत की असारता जान कर पाचो पाण्डव नेमिनाथ के पास पहुँचे और उनकी स्तुति करने लगे। भगवान नेमिनाथ ने पाण्डवो को उपदेशामृत का पान कराया। इस रूप मे कवि ने जिन धर्म के मूल तत्वो पर अच्छी तरह प्रकाश डाला है। पाण्डवो ने तीर्थंकर नेमिनाथ से अपने २ पर्वभवों को सुना।

पच्चीसवां प्रभाव—

इस प्रभाव में भी पाण्डवो एव द्रोपदी के पूर्वभवो का वर्णन किया हुआ है।

छब्बीसवां प्रभाव—

अपने पूर्व भवो को सुनने के पश्चात् पाण्डवो को भी जगत् से वैराग्य हो गया। और सभी पाँचो भाइयो ने जिन दीक्षा ले ली। कुन्ती द्रोपदी, सुभद्रा आदि रानियो ने भी आर्यिका राजमती के पास जाकर सयम धारण कर लिया। तथा स ध्वी दीक्षा अगीकार कर ली। वे घोर तपस्या करने लगे। एक बार उनको तपस्या करते देख दुर्योधन के भानजा को अत्यधिक क्रोध आया और उसके हृदय मे प्रतिशोध की अग्नि जलने लगी। उसने सोलह भूषण अग्नि मे लाल करके उनको पहिना दिये। लेकिन वे सभी बाहर भावना भाने लगे। अन्त में अपने आप पर पूर्ण विजय प्राप्त कर युधिष्ठर, भीम एव अर्जुन ने निर्वाण प्राप्त किया तथा नकुल एवं सहदेव ने सर्वार्थसिद्धि प्राप्त की। वे दोनों पुनः नर भव धारण करके मोक्ष प्राप्त करेंगे। महा आर्यिका राजमती, द्रोपदी, कुन्ती एव सुभद्रा ने सोलहवां स्वर्ग प्राप्त किया। भगवान नेमिनाथ को भी गिरिनार पर्वत से निर्वाण प्राप्त हुआ। अन्त मे कवि ने बहुत ही विनय के साथ ग्रंथ समाप्त किया है।

कवि बुलाकीदास ने तत्कालीन बादशाह का निम्न सवैया छन्द में उल्लेख किया है—

बस मुगलाने माँहि दिल्लीपति पातसाहि
तिमिरलिंग सुत बाबर सु भयो है।
ताको है हिमांऊ सुत ताहि को अकब्बर है
जहांगीर ताके वीर साहिजहां ठयो है।
ताजमहल अगन्या अवज उतम महावली
अवरंग साहि साहिन मे जयो है।
जाकी छत्र छाह पाइ सुमति के उर्दै आइ
भारत रचाइ भाषा जैनो जस लयो है ॥९॥

पाण्डवपुराण मे कौन-२ से छन्दो का किस प्रकार प्रयोग हुआ है उसका कवि ने निम्न प्रकार वर्णन किया है—

छप्पे एक करखे अठारै इकतीस से बीस चालीस
सएक सारठेई परमानिये।
छयालीस तेईसो पाद्धडी पचीसीगनिलेही
भुजंग नद छंद जैनी जग जानिये।
तीनसै तिरासी डिल्ल नौ सौ तीस दोहा भनि
ढाईसौ सतानवै सुचौपई बखानिए।
सारे इक ठौर करि ठानीये बुलाकीदास
एकादश पचसै हजार चार आनिये।

कवि ने श्लोक सख्या निम्न प्रकार बतलायी है—

सख्या श्लोक अनुष्टपी, गनीये ग्रंथ लखाइ।
सप्त सहस्र षट सतक पुनि पचपन अधिक मिलाइ ॥१०॥

इस प्रकार पूरा पाण्डवपुराण ७६५५ श्लोक प्रमाण है।

पाण्डवपुराण की विशेषताए

पाण्डवपुराण यद्यपि भट्टारक शुभचन्द्र के संस्कृत पाण्डवपुराण का पद्यानुवाद है लेकिन कविवर बुलाकीदास की काव्य प्रतिभा के कारण वह एक स्वतन्त्र काव्य ग्रन्थ के समान बन गया है। पुराण २६ प्रभावों मे विभक्त है जो सर्ग अथवा अध्याय के रूप में हैं। पुराण कथा प्रधान है। पाण्डवों के जीवन वृत्त को कहने

का काव्य का प्रमुख उद्देश्य है लेकिन कवि ने पुराण के प्रारम्भ एवं अन्त में जो प्रभाव जोड़े हैं उससे काव्य का रूप और भी निखर गया है। पुराण के प्रथम प्रभाव मे मगल पाठ एवं श्रेणिक द्वारा जिन वदना का वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव से ही पुराण प्रारम्भ होता है और सक्षिप्त रूप से काव्य रूप में कथा प्रस्तुत की जाती है। इसके पश्चात् शातिनाथ कुथुनाथ एव अरनाथ तीर्थंकरो का जीवन बुस दिया गया है ये तीनों ही तीर्थंकर थे साथ मे चक्रवर्ती भी थे। ये सब वर्णन पाण्डवो के पूर्व भवो का सम्बन्ध जोडने के लिए ही किया गया है। इसी तरह कौरव पाण्डव महायुद्ध समाप्त होने के पश्चात् भी भगवान नेमिनाथ के जीवन एव उनके उपदेशो का सक्षिप्त वर्णन, भगवान श्रीकृष्ण जी की मृत्यु, द्वारिका दहन, पाण्डवो द्वारा गृह त्याग एव उनका अन्तिम मरण का वर्णन करके पाठको को पाण्डवो के जीवन का पूरा वृतान्त बतलाया गया है।

पाण्डवपुराण का नाम दूसरा नाम भारत भाषा भी दिया गया है। शुभचन्द्र के पान्डवपुराण के अर्थ को समझकर उसके वर्णन को भारत भाषा कहा है।

> मुनि शुभचन्द्र प्रनीत है कठिन अर्थ गम्भीर।
> जो पुरान पांडव महा, प्रगटै पडित धीर ।।४६।।
> ताको अर्थ विचारि कै, भारथ भाषा नाम।
> कथा पाडु सुत पचमी, कीज्यौ बहु अभिराम ।।५०।।

इसलिए पाण्डवपुराण को जैन महाभारत भी कहा जाता है। वास्तव मे यह पूरा महाभारत है जिसमे न केवल महाभारत का ही वर्णन है किन्तु युग के प्रारम्भ से लेकर जीवन के अन्तिम क्षण तक वर्णन किया गया है।

पाण्डव पुराण वीर रस प्रधान है जिसमें युद्धो का एक से अधिक बार वर्णन हुआ है। यद्यपि पुराण शान्त रस पर्यवसायी है, तीर्थ करो के उपदेशो का वर्णन हुआ है लेकिन उसमे प्रमुख पात्रों की वीरता सहज ही देखने योग्य है। वे अकारण किसी से घबराते नहीं है, लेकिन अन्याय के सामने शिर भी नही झुकाते। पाण्डवो का जीवन प्रारम्भ से ही अच्छा रहता है। उनका कौरवो के प्रति अच्छा व्यवहार रहता है। कौरवो की सुख शान्ति के लिए वे अपने राज्य को आधा आधा बाट कर भी सुख से रहना चाहते हैं। द्यूत क्रीडा मे हारने के पश्चात् १२ वर्ष तक अज्ञातवास रहते हैं तथा अनेक कष्टो को भोगते हैं लेकिन अपने वचनो पर दृढ रहते है। युद्ध तब होता है जब दुर्योधन १२ वर्ष पश्चात् भी उन्हें कुछ भी देने को तैयार नही होता। यही नही युद्ध मे भी वे प्राय युद्ध के नियमो का पालन करते है

जबकि दुर्योधन रात्रि को सोते हुए पाण्डवों पर एवं उनकी सेना पर धोखे से आक्रमण कर देता है। पाण्डवों का पूरा जीवन जैन धर्म के सिद्धान्तों के अनुसार रहता है।

भाषा

पाण्डव पुराण के कवि आगरा निवासी थे इसलिये पुराण की भाषा पर ब्रज भाषा का सामान्य प्रभाव दिखलायी देता है। पुराण की भाषा सरल किन्तु ललित एव मधुर है। कवि ने पुराण अपनी माता जैनुलदे के पठनार्थ लिखा था तथा उसे सामने बैठाकर इसकी रचना की थी इसलिये क्लिष्ट भाषा के प्रयोग का तो कोई प्रश्न ही पैदा नहीं होता फिर भी कवि ने अपनी पूरी कृति के कथा भाग को अत्यधिक सरस एव मधुर बनाने का प्रयास किया है। प्रस्तुत पाण्डव पुराण हिन्दी की प्रथम कृति है इसके पूर्व सभी रचनायें अपभ्रंश एवं सस्कृत भाषा मे निबद्ध थी। इसलिये कविवर बुलाकीदास ने अपनी माता के आग्रह पर पाण्डव पुराण की हिन्दी मे रचना करके साहित्य मे एक नया अध्याय जोड़ा था।

बुलाकीदास मुगल बादशाह औरगजेब के शासन काल में हुए थे। उस समय फारसी एव अरबी का पूरा प्रभाव था लेकिन कवि इन भाषाओ के प्रभाव से पूर्ण रूप से मुक्त है। कवि ने सुर नृप सवाद मे गद्य का भी प्रयोग किया है। यद्यपि सवाद पूरा सैद्धान्तिक है लेकिन कवि ने इसे अत्यधिक सरस बनाने का प्रयास किया है। गद्य का एक उदाहरण देखिये—

भो मित्र तुम सुनौं यह बात ऐसी नाही जैसे तुम कहो हौ। तातै तुम सुनौ याकौ उत्तर। जिनमत के अनुस्वार तैं कहौं हौं। सो तुम सावधान होइ कै सुनौं। जो तुम क्षणिक अथवा सून्यमान हुगे। एकांत नय करि कै तौ द्रव्य सधने का नाही ॥
(पृष्ठ सख्या ६३)

गद्य की भाषा पर ब्रज का स्पष्ट प्रभाव दिखलायी देता है।

छन्द

कवि का दोहा एव चौपई छन्द अत्यधिक प्रिय छन्द हैं। उस समय येही छन्द सर्वाधिक लोकप्रिय छन्द थे। पाण्डव पुराण इन्ही दो छन्दों में निबद्ध है। लेकिन सवैया तेईसा, इकतीसा, छप्पय, सोरठा, अडिल्ल, पाद्धडी, छन्दों में भी पुराण निबद्ध किया गया है। प्रत्येक प्रभाव का प्रथम पद्य सवैया छन्द मे लिखा गया है जो क्रमश एक-एक तीर्थंकर के स्तवन के रूप मे है।

इसके अतिरिक्त पाण्डव पुराण में तत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन के लिये भी अच्छी सामग्री उपलब्ध होती है। पाण्डव पुराण हिन्दी भाषा में निबद्ध किया जाने वाला प्रथम पाण्डव पुराण है। इसकी लोकप्रियता इसीसे जानी जा सकती है कि राजस्थान के विभिन्न ग्रन्थागारों में अब तक इसकी ३० से अधिक पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हो है चुकी। सबसे प्राचीन पाण्डुलिपि संवत् १७८३ आसोज बदी ६ को लिपिबद्ध दि० जैन पचायती मन्दिर भरतपुर मे संग्रहीत है।

卐

पाण्डव पुराण

(बुलाकीदास)

रचना संवत् १७५४ (1697 A. D.)

अथ पाण्डव पुराण भाषा लिख्यते

प्रथम सर्वज्ञ नमस्कार

छप्पय छंद

सेवत सत सुर राय स्वय सिद्ध सिव सिद्धि मय ।
सिद्धारथ सरबंस नय प्रमाण संसिद्धि जय ॥
करम कदन करतार करन हरन कारन धरन ।
असरन सरन अधार अदन वहुन साधन सदन ॥
इह विधि अनेक गुन गन सहित जय भूषन दूषन रहित ।
तिहि नवमाल नंदन नमत सिद्धि हेत सरबज्ञ नित ॥ १ ॥

दोहा

वृष नाइक वृष दाइ है वृष अंक वृष भेष ।
सृष्टि विधाता बृह्ममय बंदो आदि जिनेस ॥ २ ॥
चन्द्रासकृत चन्द्र द्युति, चन्द्रप्रभू भगवान ।
चारु चरन चरचौं सदा, चित चकोर सम ठान ॥ ३ ॥
शांति रूप सिव मय सही, सकल सत्व सुखदाय ।
शांति करन सुमिरौं सदा, सब विधि सहाय ॥ ४ ॥
नगन भय अनगहा, निहकल सम नग ईस ।
नेमि धर्मरथ हेति जिन, नमो न्याय निजसीस ॥ ५ ॥
वर्द्धमान विभु वीर्य बल, वर विधान वयवत ।
विविध विधाता बोध मय, विरधो बुधि विकसत ॥ ६ ॥

गणनायक गणधर गनी, गणपति गोतम नाम।
अगति गहन को अगनि गनि, गाऊं तसु गुन ग्राम ॥ ७ ॥

जोग जुगति जस जननकौं, जननी जगत विख्यात।
जैनी वानी जिन तनी, जयौं यथावत जात ॥ ८ ॥

जोगी जती-वैंयारथी, जनम जरा जुधि जीति।
थिर थानक थिर है थप्यौ, सुथिर जुधि स्थिरमीत ॥ ९ ॥

भीम भयानक भव विषै, भ्रमत भयो भयवत।
भरम भाव भारत रच्यो, भीम नाम इहि मत ॥ १० ॥

अलख अगोचर आतमा, अनभौ इखु जु अचूकि।
अरजुन आये आप मैं, आराधी मद मूकि ॥ ११ ॥

निकुल करे कुल करम के, कलावान कविलधू।
तातै कबि कुल कहैत हैं, नकुल नाम निरविधू ॥ १२ ॥

सुगुन सहित सरवग्य सम, देव करैं जिस सेव।
सूर सुभट सुभ साहसी, सत्य एव सहदेव ॥ १३ ॥

पाई जिन या कालमैं, श्रुत सागर की थाह।
या पुराण मैं कीजिये, भद्रबाहु निरबाह ॥ १४ ॥

जाकी साख सुविश्व मैं, बिश्रुत सूरि विसाख।
ताकौं सुमिरत उर विषैं, पुरवै मन अभिलाष ॥ १५ ॥

ब्राह्मी जिन पाषान की, उर्जयत गिरि सीस।
या कल मैं वादिन करी, कुंदकुंद मुनि ईस ॥ १६ ॥

देवागम जिन स्तवन सौ, प्रगट सुरागम कीन।
समतभद्र भद्रार्थ मय गुन, न्यायक गुन लीन ॥ १७ ॥

जिन वारिधि व्याकरन कौ, लह्यौ पार मुनिराय।
पूज्यपाद नित पूज्य पद, पूज्ये मनवच काय ॥ १८ ॥

निःकलक अकलक जस, सकल शास्त्रविद जेन।
माया देवी ताडिवा, कुंभथिता पदेन ॥ १९ ॥

चिरंजीव जिन सेन जति, जाकौं जस जग माहि।
जिन पुरान पुरुदेव कौ, वरन्यो चाहै ताहि ॥ २० ॥

पुराणादि परकाश कौं, सूर्योदित ,है जोइ।
प्रभवत गुणभद्र गुरु, भूतल भूषन सोइ ॥ २१ ॥

अरुन रतन गुरु चरन जुग, सरन गह्यौ कर जोर।
वरन ज्ञान के करन कौं, तरणि किरण जिम भोर ॥ २२ ॥

सोरठा

अपनो वस वखान, नमस्कार करि अब कह्यौ।
सकल सुनौ दै कान, वतन गोत कुल वरणवै ॥ २३ ॥

अथ कवि वंस वर्णन

दोहा

नगर बयानौ बहु वसै, मध्यदेस विख्यात।
चारु चरन जह आचरैं, चारि वर्ण बहु भाति ॥ २४ ॥

जहाँ न कोउ दालिदी सब दीसैं धनवान।
जप तप पूजा दान विधि, मानहि जिनवर आन ॥ २५ ॥

वैश्य वंस पुरुदेव' नै, जो थाप्यो अभिराम।
तिसी ही वंस तहा अवतर्यौ, साहु अमरसी नाम ॥ २६ ॥

अगरवाल सुभ जाति है, श्रावक कुल परवान।
गोयल गोत सिरोमनी, व्योंक कसावर जान ॥ २७ ॥

धर्मरसी सो अमरसी, लछिमी को आवास।
नृपगन जाको आदरै, श्री जिनद को दास ॥ २८ ॥

प्रेमचन्द ताको तनुज, सकल धर्म को धाम।
ताको पुत्र सपुत्र है, श्रवनदास अभिराम ॥ २६ ॥

वतन बयानौं छोडि सो, नगर आगरै आय।
अन्न पान सजोगतैं, निवस्यौ सदन रचाय ॥ ३० ॥

बुधि निवास सो जानियें, श्रवन चरन कौ दास।
सत्य वचन के जोग सौ वरतै नौ निधि तास ॥ ३१ ॥

गनियें सरिता सील की, वनिता ताके गेह।
नाम अनदी तास को, मानौं रति की देह ॥ ३२ ॥

उपज्यो ताके उदर तैं, नंदलाल गुन वृंद।
दिन दिन तन चातुर्यता, बढै दोज ज्यो चंद।। ३३ ।।
मात पिता सौ पढन कौं, भेज दियो चटसाल।
सब विद्या तिन सीखि कै, धारी उर गुन माल।। ३४ ।।
हेमराज पंडित वसैं, तिसी आगरै ठाइ।
गरग गोत गुन आगलो, सब पूजै जिस पाय।। ३५ ।।
जिन आगम अनुसार तैं, भाषा प्रवचनसार।
पंच-अस्ति काया अपर, कीनें सुगम विचार।। ३६ ।।
उपजी तार्कै देवुजा, जैनी नाम विख्यात।
सील रूप गुन आगली, प्रीति नीति की पाति।। ३७ ।।
दीनी विद्या जनक नैं कीनी अति वितपन्न।
पंडित जापैं सीखलैं, धरनी तल मैं धन्न।। ३८ ।।

सवैय्या

सुगुन की खानि किधौं सुकृत की वानि।
सुभ कीरति की दानि अप कीरति कृपान है।।
स्वारथ विधानि परमारथ की राजधानि।
रमाहू की रानी किधौं जैनी जिनवान हैं।।
धरम धरिनि भव भरम हरनि।
किधौं असरन सरनि कि जन निज ह्वान है।
हेम सौं उपनि सील सागर रसनि।
भनि दुरित दरनि सुर सरिता समान है।। ३९ ।।

दोहा

हेमराज तहां जानि कै, नंदलाल गुन खानि।
वय समान वर देखि दी, पानिग्रहन विधि ठानि।। ४० ।।
तव सासू नैं प्रीति सौं मोती चौक पुराय।
लीनी गृह सूत्र नाम धरि, जैनुलदे इहि भाय।। ४१ ।।
नारि पुरुष सौ सौ रमैं, धारैं अन्तर पेम।
पूरव पुन्य फल भोग वै, जैय सुलोचना जेम।। ४२ ।।

अल्प बुद्धि तिनके भयो, बूलचंद सुख खानि ।
ताहि जैनुलवै सौं चहै, ज्यौं प्रानी निज प्रान ।। ४३ ।।
अन्नोपक संबंध तैं, आइ इन्द्रप्रथ थान ।
मात पुत्र तिष्ठे सही, भनैं सुनैं जिन वानि ।। ४४ ।।
जयचन्द रतन पंडित तहां, शास्त्र कला परवीन ।
बूलचंद तिस हेत सौं, ज्ञान अंस कछु लीन ।। ४५ ।।
*कल्पलता माता सही, सुख करता सरवंस ।
दुख हरता सौं यौ महा ज्यौ तम सविता प्रसु ।। ४६ ।।
सब सुख दै तिन यौं कही, सुनो पुत्र मो बात ।
सुभ कारज तैं जग विषैं, सुजस होइ विख्यात ।। ४७ ।।
महापुरिष गुन गाइये, ताही तैं यह जानि ।
दोइ लोक सुखदाय है, सुमति सुकीरति थान ।। ४८ ।।
मुनि सुभचन्द्र प्रनीत है, कठिन अर्थ गभीर ।
जो पुरान पांडव महा, प्रगटैं पंडित धीर ।। ४९ ।।
ता को अरथ विचारि कैं, भारत भाषा नाम ।
कथा पाण्डु सुत पंच की, कीज्यौ बहु अभिराम ।। ५० ।।
सुगम अर्थ श्रावक सबैं, भनैं भनावैं जाहि ।
ऐसो रचिकैं प्रथम ही, मोहि सुनावौं ताहि ।। ५१ ।।
जननी के ए बचन सुनि, लीने सीस चढाइ ।
रचिवे कौं उद्दिम कीयौ, धरि कै मन वच काइ ।। ५२ ।।
यह पुरान सागर कहा, मै बालक मति भाय ।
तरिवे कौं साहस धरौ, सो सब हासमहाय ।। ५३ ।।

चौपई

जे कवीस मह जिनसेनादि, वंदे पद तिनके हम आदि ।
लह्यौ पुन्य तहा तासो कथा, रचि हौं जिनवर भाषित यथा ।। ५४ ।।
ज्यौं नर मूं कौं बोल्यो चहै, सब जन ताकी हासी बहैं ।
त्यौं यह ग्रथ करत परवान, भाजन मोहि हसन कौं जान ।। ५५ ।।
चढ्यौ मेरु पै पंगुल चहै सब जग मैं वह हासी लहै ।
यह पुरान आरंभत अबै, तैसैं मोहि हसैंगे सबै ।। ५६ ।।

सकति हीन मै ऐसौ महा, तौ भी शास्त्र करन कौं गहा ।
छीन धेनु ज्यौं वछा हेत, दुग्ध दांन बहु हित सौ देत ।। ५७ ।।
रवि समान जे पूरव सूरि, तिन ही द्रव्य प्रकासे भूरि ।
तिन कौं दीपक सकति समान, क्यौ न प्रकासै ज्योति प्रमान ।। ५८ ।।
वक्र वाक कौं जे कवि भनै, तरु पलास वत जग मैं घनै ।
आम्र वृक्ष थोरे वन माँहि, त्यौं कवि उत्तिम जग बहुनांहि ।। ५९ ।।
दाष कवित्त कौ नासै जेइ, बिरले साधु जगत मैं तेइ ।
उज्जल कनक अगनि तै यथा, निरमल कवित करे ते तथा ।। ६० ।।
जे असत हैं सहज सुभाइ, ते पर अर्थहि दूखै धाइ ।
ज्यौ दिन अध लगावत दोष, देखन रवि कौ धारत रोष ।। ६१ ।।
ज्यौ मदमत धरै बहुखेद, हेयाहेय न जानै भेद ।
त्यौ जग मैं नर खल जो होइ, सब ही कौ खल मारो सोइ ।। ६२ ।।
जलधर महिमा जग मैं कही, अबुधान दै पोषत मही ।
त्यौ सब जनकौ सज्जन लोग, देहि सदा सुभ सिख्या जोग ।। ६३ ।।
सतासत सुखासुख करं, सोम सर्प सम उपमा धरै ।
कोविद जन सव जानत एम, ता वीचार सो हम कौ केम ।। ६४ ।।
षट् प्रकार कहिये व्याख्यान, तिन मैं मगल आदिहि जान ।
और निमित्त जु करै कारन ठान, कर्त्ता फुनि अभिधान जु मान ।।५५।।
प्रथम ही मगल या मैं कहा, जो जिनेन्द्र गुन गाए महा ।
जाकै हेत जु करी ए ग्रथ, सो निमित्त अघ हरन सुभ पथ ।। ६६ ।।
भव्य वृन्द कारन जग लीन, ज्यौं या मैं श्रेनिक परवीन ।
कर्त्ता मूल जिनेसुर मुनी, उत्तर कर्त्ता गौतम गुनी ।। ६७ ।।
तातै उत्तर और जु भये, विष्णुनदि अपराजित ठये ।
भद्रबाहु गोवर्द्धन और, इन आदिक कर्त्ता सिर मौर ।। ६८ ।।
अरथ विचार धरै जो नाम, सोई नाम कह्यौ अभिराम ।
ज्यौ पुरान यह पाडव सही, पुरु पुरुषन की महिमा कही ।। ६९ ।।
नान भेद अब सुनीये सही, अर्थ गनत की सख्या नहीं ।
पद अक्षर की सख्या कही, मान भेद तुम जानौं यही ।। ७० ।।
षट प्रकार यह भेद विचार, सुभ वखान करिए बुधि धार ।
पच भेद बरनें फुनि और, द्रव्य क्षेत्र आदिक तिहि ठौर ।। ७१ ।।

दोहा

इहि विधि सर्व विचारि कै, बरनै गुनी पुरान।
वक्ता श्रोता अरु कथा, सुभ लक्षण पहिचानि॥ ७२॥

प्रथम वक्ता वरनन

दोहा

भव्य क्षमी सुंदर गुनी, सुचि रुचिवंत प्रवीन।
न्यायवान नैयायिकी सीलवांत सुकुलीन॥ ७३॥
व्रतधारक वत्सल महा, अरु पंडित बहु होइ।
लछिमीवंत सुसंत चित, उत्तिम वक्ता सोइ॥ ७४॥

उक्तं च श्रावणाचार भाषायां

सवैया ३१

विद्वत सुव्रतवान सुन्दर सुवैनवान
वारस प्रगल्भता जु इंगितज्ञ जानीये।
प्रश्न मैं न छोभ करै लोक को विज्ञान धरै
ख्याति पूजा माँहि निर इच्छक बखानिये।
भाषै मित अभिधान दया ही की होइ खानि
अल्पश्रुत उद्धतानसु पुषता ठानीये।
वर्णंत प्रश्न सिष्य चाहिये सुवर्ण सुद्ध
एते गुन आगम तैं वक्तरि प्रमानीये॥ ७५॥

अथ श्रोता वर्णन

दोहा

सीलवंत सुभ दर्शनी सुभ लक्षण श्रीमान।
सदाचार चर चक महा, चतुर चतुर गुनवान॥ ७६॥
व्रती सुदाता भोगता दक्ष सुपूरन अक्ष।
हेयाहेय विचार कर थिर धार्यै जिन पक्ष॥ ७७॥
प्रतिपालक गुरु बचन को, सावधान प्रधान।
क्रियावत धरमातमा, मानिनीक विद्वान॥ ७८॥
सुनि अवधारै ग्रह रहै विमल चित्त विनयज्ञ।
त्यागी हास कषाय को सो श्रोता सुभ तज्ञ॥ ७९॥
कहि सुभासुभ भेद करि, श्रोता बहुत प्रकार।
हंस धेनु ए श्रेष्ठ है, मध्यम माटी सार॥ ८०॥

उक्तं च श्रावकाचार भाषायां

सवैय्या ३१

मृतिका महिष हंस स चालिनी मसक कंक
मारजार सूवा अज सर्प सिला पसु है ।
जलूका सछिद्र कुंभ इन के सुभाव ही तैं
सुभा सुभ श्रोता जानि कहे चारिदसु है ।
सम्यक विचारि दहै सुरस्वाभाव धारै उदरु
आदर विशेष करि छिमा सौं सरसु है ।
भक्त गुरु भीरु भव जैन बैन धारन कौ
पारायन श्रोता गुन मृत्ति पसू हसु है ।। ८१ ।।

दोहा

दीजै जो उपदेस सुभ, ले इन श्रोता मुग्ध ।
ज्यो कच्च फूटै घडै, रहै न राख्यौ दुग्ध ।।८२।।
सद श्रोता हिरदै धरै, गुरु उपदेसै जोइ ।
वोयौ बीज सुभूमि ज्यौ, भूरि गुनौं फल होइ ।।८३।।

अथ कथा लक्षणं

दोहा

कथन रूप कहीए कथा, सो है दोइ प्रकार ।
सुकथा जो जिन कही, विकथा और असार ।।८४।।
चरम सरीरी जे महा, तिनके चरित बिचित्त ।
पुन्य हेत जहाँ वर्णीये, सो है कथा पवित्र ।।८५।।
पुन्य पाप फल वर्णीये, बरने व्रत तप दान ।
द्रव्य क्षेत्र फुनि तीर्थ सुभ, अरु सवेग बखान ।।८६।।
जो स्व तत्व कौं थापि कै, दूरि करै पर तत्व ।
ज्ञान कथा सो जानिये, जहां वरनै एकत्व ।।८७।।
गुन पूरन सम्यक्त, सुभ बोध वृत्त संयुक्त ।
नाना विधि सो वर्णीये, यह जिन भाषित उक्त ।।८८।।

उक्तं च श्रावकाचार भाषायां

सवैया ३१

जीवा जीव आदि तत्व सम्यक निरूपै अर्थ
देह भव भोगन मांहि वर्णे निरवेद कौं।
दान पूजा सील तप देसै बिसतार करि
बंध मोख हेतु फल भिन्न भनै भेद कौं।
स्यात अस्ति आदि नय सात जे विख्यात
अरु भाखै प्रान दया हित हिंसा के उछेद कौ।
अंगी सरवंग संग त्यागैं होइ सिद्ध अंग
सत्य कथा कथा एई नासैं भव खेद कौं ॥८९॥

दोहा

रिषि वशिष्ट सुक व्यास अरु, द्वीपायन इन आदि।
तिन करि भाषित कथन जो, सो विकथा बकवादि ॥९०॥
द्रव्य क्षेत्र अरु तीर्थ सुभ, काल भाव फल और।
प्रकृत सप्त ए अंग हैं, मुख्य कथा की ठौर ॥९१॥
ऐसी विधि यह वरन कै, कहियत है अब सोइ।
जो पुरान पावन पुरुष, भारत नामा जोइ ॥९२॥

महावीर भगवान का जीवन

चौपाई

जबूद्वीप अनूपम लसै, पंडित जन बहु जामैं बसैं।
भरत खेत अति सोभित मही, आरज खंड सुमंडित यही ॥९३॥
देस विदेह विराजै जहाँ, सुर सम नर बहु उपजै तहाँ।
सिद्धारथ नामा तहाँ भूप, नाथ वंस अवतार अनूप ॥९४॥
सरव अर्थ की जाकै सिद्धि, वरतैं नौं निधि आठौ रिधि।
त्रिसला रानी ताके गेह, रूपसील बहु सुन्दर देह ॥९५॥
चेटक भूधर गिरि सम आन, तहाँ उपजी सुर सरित समान।
सो सिद्धारथ सागर मिली, प्रीति कारिनी गुन सौं रली ॥९६॥
प्रथमहि जाके तट छह मास, सेव करी सुर कन्यां तास।
रतन वृष्टि जाकै घर भई, धनद देव नै आपुन ठई ॥९७॥

रैन पाछिली सोवत सही, सोलह सुपनै देखैं तही ।
गज गो हरि श्री माला दोइ, चद सूर झष जुग प्रब लोइ ।।६८।।
कुंभ जुगम सरवर सुभ जानि, सागर अरु सिंघासन मानि ।
व्योम जान ग्रह पृथिवी तना, मणि रासागनि धूमे बिनां ।।६६।।
ए सुपने सुभ देखत भई, जागि उठी तब प्रभु पै गई ।
हाथ जोरि फल पूछयो जबै, उत्तर सब नृप भाख्यौ तबै ।।१००।।
पुष्पोत्तर तै चइ कै देव, ताकै गर्भजु तिष्ठयो एव ।
सुदि असाढ छठि गज नछत्र, कीनौ गर्भ कल्यानक तत्र ।।१०१।।
चैत त्रयोदसिसुदि के दिना, जनम कल्यानक सुरपति ठना ।
बर्द्धमान यह प्रगटयौ नाम, व्याप्त जाकै जग मैं धाम ।।१०२।।
तीस बरष के भये कुमार, सुभ तरुनापौ धार्यो सार ।
किंचित कारन तब ही पाय, चित वैराग धर्यो अधिकाय ।।१०३।।
सब कुटब सौं ऐसे कही, ए सब भोग बिनश्वर सही ।
लोकांतिक सुर तौ लौं नये, थुति करि कै सुलोकहिं गये ।।१०४।।
तब सुरपति सुरगन सह आइ, जिन पद बदे मस्तक नाइ ।
पुनि न्हवाय भूषन पहिराय, सुरगन भगति करी अधिकाय ।।१०५।।
चदप्रभा सिबिका सु अनूप, चित्र विचित्रित नाना रूप ।
तापै चढि पुर बाहिर गये, परिगह त्यागि दिगबर भये ।।१०६।।
हस्तरिक्ष मृगसिर बदि दसैं, साझ समैं जिन दीक्षा लसैं ।
षष्टम थाप्यौ मन कौ सोध, मनपर्यय तब उपज्यौ बोध ।।१०७।।
पारन पाइ फिरे भू मांहि, मौन रहे जिन बोले नाहि ।
बारह बरष बितीते सबै, जृंभक ग्राम पहूंचे तबै ।।१०८।।
तहाँ रजूकूला सरिता तीर, साल वृछ तल बैठे वीर ।
श्रेणी क्षपक चढ़े जिनराय, घाति करम घाते अधिकाय ।।१०६।।
तब ही केवल उपज्यो तास, सकल लोक प्रति भासत जास ।
सोभित समोवसरन जिनराय, गिरि वैभार पहूचे आय ।।११०।।
तरु असोक धुनि दिव्य बखान, छत्र सिंघासन चामर जान ।
पुहप वृष्टि भामडल सजै, घन सम घोर सुदुंदुभि बजै ।।१११।।
सुरपति आपुन ल्याये जिसै, गौतमादि ते गनधर लसै ।
मगध देस तहां सोभावत, निवसैं सुरसम नर जहा सत ।।११२।।

राज सदन पुर उत्तिम तही, सबै नगर मैं राजा वही।
मृतल भूषन मानौं यही, बहु मंदिर करि सोभा लही ॥११३॥

राजा श्रेणिक वर्णन

श्रेनिक भूपति है ती ठौर, नृप गन मैं गनिये सिरमौर।
सम्यक दृष्टि चित्त गम्भीर, परम प्रतापी धीर सुवीर ॥११४॥
प्रिय चेलिनी जाके गेह, आये जिन तिन जान्यौ एह।
आदिनाथ अजोध्यापुरि ठये, भरत आदि ज्यौं बंदन गये ॥११५॥
त्यौंही श्रेनिक भूपति चल्यौ, दल चतुरंग सुसाथे रल्यौ।
हिन हिनाट हय करते चले, गय मयमत्त सुगरजत भले ॥११६॥
नाना भांति अरथ सौं भरे, ऐसे रथ सारथि अनुसरे।
भटगन निरतत अति ही चलैं, बाजे बजहिं मधुर धुनि रलैं ॥११७॥
गावें जस बहु चारन भाट, ता श्रेनिक कौं चलते वाट।
चलत राय सो पहुँचे तहा, समवसरन सुर राजै जहा ॥११८॥
गज ऊपर तें उतरे तबै, चमर छत्र तजि दीने सबै।
सिंघपीठ परि जिनि थिति करैं, छत्र तीनि सिर सोभा धरैं ॥११९॥
चारु चतुर मुख च्यारौं दिसा, रवि सम ते जिनवर ते तिसा।
सुर नर खग पति जाकौं नमैं, तीनौं भुवन पसंसा पमैं ॥१२०॥
आठौं अंग मही सौं लाइ, नमन कीयौ धरि मन बच काइ।
पूजा करि थुति करै अनूप, सब विधि पूरन श्रेनिक भूप ॥१२१॥

श्रेणिक द्वारा महावीर की स्तुति

दोहा

स्तुति आनिस्तोतारस्तुति, स्तुति फल फुनि अवलोइ।
थुति आरंभी वीर की, मन बच काय संजोइ ॥१२२॥

चौपाई

तुम भगवंत भुवन पति सही, तुम थुति कौ क्षम कोउ नहीं।
सुरपति सम भी अक्षम भये, तुम गुन अंत न काहू लये ॥१२३॥

नित रहित चिनमय चिद्रूप, इन्द्रिय वर्जित निर्मल रूप ।
गध विवर्जित ग्यायक गध, वेता रूप अनूप अबध ।।१२४।।
ह्वं नीरस अद्‌भुत रस ठन्यौ, तुम तरुनापे रति पति हन्यौ ।
बालक क्रीडा कीनी जहा, देव नाग ह्वै आये तहा ।।१२५।।
तिनकौ जीति अति अभिराम, वीरनाथ यह पायौ नाम ।
बाल खेल तुम करते तही, मुनि जुग नभतैं आये सही ।।१२६।।
तुम देखत तिन ससं टर्‌यौ, सनमति नाम तुम्हारौ धर्‌यौ ।
ग्यानादिक गुण बढ़ते रहे, वर्द्धमान तुम तातै कहे ।।१२७।।

महावीर की दिव्य ध्वनि

ऐसे थुति करि बैठो राय, सभा मांहि नर कोठै ठाय ।
तौलौ वानी जिनवर तनी, हौन लगी बहुगुन सौ मनी ।।१२८।।
तालु अधर गल हालै नाहि, और अनछर गुन जिस मांहि ।
धर्म विषै मति धारी भूप, द्वं विधि सो करता रस कूप ।।१२९।।
तजि गोचर अरु श्रावक तना, आदि धर्म निरगथे ठंना ।
ग्यान गुन जप तप की थान, ऐसो पद निरग्रथै जानि ।।१३०।।
गृह गोचर सुनि दूजौ धर्म, दान सील तप साधै कर्म ।
नाक तनै सुख साई लहै, सील सहित श्रावक व्रत गहै ।।१३१।।
आहारादि चतुर्विध दान, त्रिविधि सुपत्तहि देहि सुजान ।
भोगभूमि फल यासौ वहै, फुनि जिन भावत भावन रहै ।।१३२।।
निज स्वरूप चिद्रूप विचार, हृदय शुद्ध करि भावै धार ।
यही भावना जानौ सही, जति श्रावक दोनो कौ कही ।।१३३।।

दोहा

ऐसी विधि सौं धर्म सब सुनिकै श्रेनिक राय ।
गमन कीयो निज सदन कौ, वदे जिनवर पाय ।।१३४।।

चौपई

नृप गन करि सो सेवित महा, पहुच्यौ पुर नृप मंदिर जहां ।
रमहि सुरानी चेलिन सग, ज्यौ रति साथ रमत अनंग ।।१३५।।

चार चित करि चिंतत रहै, जिन बच श्रांकन हिरदै लहै ।
निरखत जम कौ दान सुदेत, सिद्धि अरथ सुभ माता हेत ।।१३६।।
वीर नाथ कुनि विभ्य बखान, देत चले भविजन कौं दान ।
करयौ सुरवासी देस बिहार, जाकौ सुरपति सेवा धार ।।१३७।।

विभिन्न प्रदेशों में महावीर का विहार

अंग वंग कुरु जंगल ठए, कौसल और कलिंगे गये ।
महाराठ सोरठ कसमीर, पग और कोंकण गभीर ।।१३८।।
मेदपाट भोटक करनाट, कर्ण कोस मालवै वैराट ।
इन प्रादिक से प्रारज देस, तहा जिन नाथ कीयौ परवेस ।।१३९।।
भव्य रासि सबोधत वीर, देस मगध फुनि प्राये धीर ।
गिरि वैभार विभूषित भयौ, मानौ रवि उदयाचल ठयौ ।।१४०।।

मगध नरेश द्वारा महावीर वन्दना

जिन विभूत लखि प्रकथ अपार, विसमयवत भयौ वन पार ।
नृप मदिर मोवत ही जाइ, जहाँ सिंघासन बैठे राइ ।।१४१।।
स्वेत छत्र छवि रवि प्राताप, दूरि करै सब टारै पाप ।
मुकट मयूख नभस्तल गई, इन्द्र धनुष रचि सोभा ठई ।।१४२।।
सूर चद सम कुडल वर्ण, रतन जडित प्रति सोभित वर्ण ।
हार मनोहर गल मैं लसै, किरनौं करि उडगन कौ हसै ।।१४३।।
दीर्घ थिर भुज बाजूबध, अरु करकट कहरै तम खध ।
भेट अनेक जु प्रावै लेइ, तिन पै हित सौ लोचन देइ ।।१४४।।
दत मरीचि अधिक ही धरै, तिन कर भूतल उजल करै ।
मागध गुन गावै सगीत, तिन कौं सुनि करि धारै प्रीति ।।१४५।।
नृप कुलीन बहु थुति कौं करै, वर कृपान कर सोभा धरै ।
जान दीयौ दरवानौं जवै, ऐसो भूपति देख्यौ तवै ।।१४६।।
नमस्कार करि तहा वन पाल, कीनी विनती सुनि भूवाल ।
नाथ वस मैं उपजे जोइ, वीर नाथ जिन प्राये सोइ ।।१४७।।
गिरि वैभार विभूषित कीयौ, फुनि भूमडल प्रविरज लीयौ ।
महावाघनी करुना ठानि, बौ सुत छीवै निज सुत जानि ।।१४८।।

मारजार अरु मूषक रमैं, नागन कुल इक आगै धमैं।
गज अरि शावक अरु मृगराइ, खेलैं आपस मैं अधिकाइ ।।१४९।।

सूके सर बहु जल सौं भरे, कोक मराल सबद तहां करे।
सुक्क शाल फल फूलौं झूमि, वंदौं जिन पद मानौ घूमि ।।१५०।।

तिस प्रभाव वन अचिरज बर्यौ, सब रितु के फल फूलौं भरयौं।
यह अचिरज मैं देख्यो राय, तिनकी भेट करी मैं आय ।।१५१।।

दोहा

वचन सुनें वनपाल के, हरख्यौ चित अति भूप।
तृषावत ज्यौं नर लहै, लखि कै अमृत रूप ।।१५२।।

अडिल

सार वित्त वन पालहिं राजा धाइ कै।
सात पैंडि उठि प्रणम्यौं जिन दिस जाइ कै।
जा प्रसाद चित परमानन्द अनंदिए।
ऐसे चरन कमल जुग जिन के वंदिए ।।१५३।।

बर्द्धमान गुन खांन गुनी गुनपाल है।
धर्मवत व्रत वत सुसत दयाल है।
सुजस सदा जग राइ जई जिन वदए।
नमस्कार कर जोरि जिनुलदे वदए ।।१५४।।

इति श्रीमन्महाशीलाभरणभूषित जैनी नामाकितयां लाला बुलाकीदास विरचितायां भारत भाषायां श्रेणिक जिन वंदनोत्साह वर्णनो नाम प्रथमः प्रभवः।

卐

अथ अनंत जिन स्तुति

दोहा

भव अनत यह जलनिधी, ताकी है वर सेतु ।
जिन अनंत गुण अंत नहिं, बंदौ शिव सुख हेतु ।।१।।
एक समय बिरकत बिदूर, भये विषय सुख मांहि ।
छिन भंगुर संसार मैं, जान्यो थिर कछु नांहि ।।२।।
विदुर चतुर चितवत, (चित) धिग संपय धिग राज ।
धिग प्रभुता धिग भोगए, सब अनर्थ के काज ।।३।।
जाकैं कारन जनक कौं, हतै पुत्र धरि क्रोध ।
कहूंक सुत कौं मारई, पिता पाइ दुरबोध ।।४।।
हनत मित्र कौं मित्र ही, बंधु बंधु कौ मारि ।
भव सुख कारन जीवए, करत काज अविचार ।।५।।
ए कौरव अति दुरमती, महा करम चंडाल ।
इन कौं मरतैं रण विषै, लख्यौ न चाहूं हाल ।।६।।
यो विचारि कौरवन सौं, कहि करि वन मैं जाइ ।
विश्वकीर्ति कौं नमन करि, सुनत धर्म धरि भाइ ।।७।।
भए दिगम्बर संजमी, अंबर तन तैं त्यागि ।
बाह्याभ्यंतर तप चरन, परम तत्त्व चित लागि ।।८।।
एक समैं कोइक महा, सार्थवाह परवीन ।
राजग्रही पुरि ईसकौ, भेटि रतन बहु कीन ।।९।।

पूछी ताहि नरिंद नै, कहा तैं आयौ भाइ।
कह्यौ कि द्वारा नगर, तैं तुम देखन कौ राइ ।।१०।।

फुनि पूछ्यौ ता नगर मै, कौन नाम है भूप।
तिन भाख्यौ बैकुंठ बल, नेमि नृपति जिन भूप ।।११।।

जादव निवसे सुनत ही, जरासंध ह्वं क्रुद्ध।
जलधि हल्यौ मनु प्रलय को, चल्यौ करन को जुद्ध ।।१२।।

जुद्ध चहत जिन हेतु ही, ऐसे नारद आइ।
जरासंध कौ छोभ सब, हरि सौं कह्यौ बनाइ ।।१३।।

नेमि निकट फिरि जाइ कै, आगै ठाडौ होइ।
पूछी अरि सौं जीति हौं, सत्य कहो तुम सोइ ।।१४।।

नेमनाथ मुसकाइ कै, निरख्यौं हरि की ओर।
तब अपनी जय जानि कै, विष्णु चढयौ दल जोर ।।१५।।

बल हरि कै संग नृप चढे, समुदबिजै बसुदेव।
अनावृष्टि अरु धर्मसुत, भीम सु अर्जुन एव ।।१६।।

धृष्टद्युम्न प्रद्युम्न जय, सत्यकिसारण सबु।
भूरिश्रवा सहदेव अरु, भोज स्वर्ण गर्भवु ।।१७।।

द्रुपद बज्र अक्षोभ विदु, सिंधीपती पौंडरीक।
नागद नकुल सुकपिल कुरु, छेम धूर्त्त बाल्हीक ।।१८।।
महानेमि दुर्मुख निषध, बिजय पद्मरथ भानु।
चारु कृष्णा उन्मुख जबन, फुनि कृतबर्मा जान ।।१९।।
नृप शिखंडि बैराट नृपति, सोमदत्त इन आदि।
जादव पछी नृप महा, चढे जुद्ध कौ सादि ।।२०।।

जरासंध कौ दूत तब, दुरजोधन तट जाइ।
नमसकार करि बीनयौ, सुनौ चक्रि बचराइ ।।२१।।

दुर्द्धर मार्यौ कंस जिन, चक्रिसुता पति सूर।
मुष्टि घात तैं चूरियौ, मल्ल बलीचानूर ।।२२।।

करिहिं धर्यौ गोबर्द्धं गिरि, अहि मर्दक गोपाल।
प्रगट भयौ सौ भूविषै, धारत मद सविशाल ।।२३।।

जे जादव रण तैं टरैं, जरे अगिन मैं धाइ ।
ते अब मुनीयें जीव तें, असे जलधि महि जाइ ।।२४।।

रतन भेट करि वैश्य नै, कह्यौ चक्रि प्रति एम ।
राज महा जादव करत, द्वारिकपुर मय हैम ।।२५।।

जादव पांडव द्वारिका, बसत सुनें चक्रीस ।
महाक्रुद्ध ह्वै नृपनपै, पठए दूत अधीस ।।२६।।

नृप प्रधान जे पुरुष वर, सकल बुलाये पास ।
एक बरस मै भूप सब, मिले तहां गुन रास ।।२७।।

तातै हे कौरवपती, तो तट पठयौ मोहि ।
चक्रवर्त्ति प्रति प्रति तै, अबहि बुलावत तोहि ।।२८।।

विविधि वाहिनी आपनी, सारी साजि सुकच्छ ।
तुम प्रति चक्री यौं कह्यौ, आवहु मो तट वच्छ ।।२९।।

सोरठा

सुनत भयो रोमांच, मागध कौं आदेस यह ।
पूज्यौ दूत सु सच, वसना भूषण दर्वतैं ।।३०।।

जो मो मन थो इष्ट, सोई चक्री अब ठनी ।
ह्वै सबहि विसिष्टि, निज चित यौ चिरचिंतयो ।।३१।।

सवैया २३

सुग्न मै वर सूर दुर्जोधन, ताहि समैं रण भेरि दिवाई ।
जाकी महा धुनि व्याप्त भू, नभ छोभ भयो चहुँ सागर ताई ।
वीरन के तन रोम जमाइ, सुजुझन कौं चित चौप लगाई ।
काइर कपत काइ महा, भय खाइ सुभौंन के कौंन धसाई ।।३२।।

सज्जि चली चतुरंग चमू चय, मत्त मतंग महा निकसेई ।
सागर सैं नहि मद्धि धसे रथ, सारथि सौं महमी नक सेई ।।
चचल चाल चलैं चल चामर, चारु तुरी सुन जीत कसेई ।
सत्रुन के असबे कौ सुदौरहि, सुरपयग्दल कौं नक सेई ।।३३।।

दोहरा

कोरव दल दलमलि धरनि, छाई रेनू अकास।
दुख कहिये कौं भूमि मनु, चली इन्द्र के पास ।।३४।।

क्रम तैं कौरव वाहिनी, मिली चक्रि दल संग।
सब तैं अधिक समुद्र कौं, आइ रली मनु गंग ।।३५।।

दुरजोधन कौं मांन बहु, राख्यौ मागध राइ।
कर्ण मिल्यौ यौं कोरवहिं, ज्यौं रवि किरण रलाइ ।।३६।।

तब पठयौ चक्रीस नैं, दूत जादवनि पासि।
तुरित जाइ सौं बीनयौ, सब सौं बचन प्रकासि ।।३७।।

भो जादव तुम पै करत, आज्ञा यह चक्रेश।
जाइ बसे किम जलधि तुम, तजि कै अपनौं देश ।।३८।।

समुदबिजै बसुदेव ए, हम प्रीतम हैं आदि।
बांधि आपको किहि लयैं, गए सुछिपि कै बादि ।।३९।।

चरन जुगल चक्रीस के, सोवोहु अब तजि गर्व।
जा प्रसाद तै तुम लहौ, राज पाट सुख सर्व ।।४०।।

ऐसी सुनि कैवल बली, बोल्यौ क्रोधित होइ।
हरि कौ तजि या भू विषै, चक्री और न कोइ ।।४१।।

ऐसी सुनि फरकत अधर, दूत भनै इंहि भाइ।
जातै तुम सागर विषै, जाय छिपे भय खाइ ।।४२।।

तिस पद पकज सेव तै, कहीयत कौन सुदोष।
आवत हैं तुम पै चढ्यौ, मगध राइ धरि रोष ।।४३।।

ग्यारह छोहिनि दल सहित, मुकट-बद्ध नृप संग।
आवतं ही तुम सर्व कौ, करै छिनक मैं भंग ।।४४।।

बच कठोर सुनि दूत के, बोले पांडव ताहि।
मन इंछत मुख बकत है, मारि निकासौ याहि ।।४५।।

यौ सुनि निकस्यौ दूत तब, आयौ चक्री तीर।
उन्नतता जादवनि की, बरनी अधिकहि धीर ।।४६।।

सोरठा

अहो देखते जादवा, महा गर्व बहु ग्रस्त ।
तुम कौं ईंधन मानई, ज्यौं मदिरा मद मस्त ।।४७।।

असे वचन सुनि चक्रधर, रण दुंदभि बजाइ ।
चलिबे कौं उदित भये, संग लए सब राइ ।।४८।।

दीपसिखंत बिमान बहु, बैठि चले खग भूप ।
रवि पंकति मनु गगन मैं, धाई उमडि अनूप ।।४९।।

बहु नरिंद भूचर महा, भूमि चले मनु चंद ।
उडगन सम द्युति वंत अति, संग सजै भट वृंद ।।५०।।

द्रोण भीष्म जयद्रथ रुकम, अश्वथाम फुनि कर्ण ।
सल्य चित्र वृषसेन नृप, कृष्णवर्म सुन वर्ण ।।५१।।

इन्द्रसेन अरु रुधिर भी, दर्जोधन दु:सास ।
दुर्मष दुर्द्धर्ष इन प्रभृत, चली नृपन की रासि ।।५२।।

पगतैं भूकंपन करत, आए सब कुरु खेत ।
तजिकै ममता जीव की, कर्यौ मरनसौं हेत ।।५३।।

केईक नृप सुनि बात यह, जजत भये जिनदेव ।
केईक गुरु तट जाइ कै, लए अनुव्रत एव ।।५४।।

केइक नरपति यौं कहत, तजीए गृह सुत दार ।
कर मैं लीजे तीछन असि, कीजै अरि संघार ।।५५।।

केइक निज निज भृत्य प्रति, कहत भये नर राइ ।
चापहुं पनिच चढ़ाईये, गज गन सजौह बनाइ ।।५६।।

जीन सजौ बाजीनि पैं, भुंजौ भोजन मिष्ट ।
अश्व रथन सौं जूतीये, दीजै वित्त विशिष्ट ।।५७।।

इह विधि भाषत सैन मैं, गर्जि गर्जि के राइ ।
निज निज आयुद्ध कर लीये, चमकावत अधिकाइ ।।५८।।

केई फिरावत कुंत कर, गदा उछारत उंचि ।
कोई तीर चलाव ही, रंचि निशाना संचि ।।५९।।

केईक सुरसभा विषै, करन मरन की बात।
अपने ही मुख मान सौं, भाषत हैं बहु भाँति ।।६०।।
तो लौ हरि कौ दूत तहाँ, गयौ करन के तीर।
नति करि भगतिहि बीनयौ, मो वच सुनिये धीर ।।६१।।
जुगति होई सौ कीजिए, सुनौं सत्ति अवनीश।
जिन भाषति नहिं अन्यथा, कैं है हरि चक्रीस ।।६२।।
कुरु जागल सुभ देश कौ, सकल राजा तुम लेहु।
पाडु पुत्र कुन्ता जनित, मांनहु मो वच एहु ।।६३।।
भ्रात पञ्च पाडव जहाँ, तहाँ आयौ तुम वीर।
वचत दूत के सुनत इम, बोल्यौ कर्ण सुधीर ।।६४।।
अब हम आवन जुगत नहिं, न्याय उलंघहि केम।
राजा रन के सनमुखें, नीति न त्यागत एव ।।६५।।
सेवित नृप कौ रन विषै, मरयन मुञ्चै कोइ।
जो मुञ्चै तो अघ लहै, अपजस जग मैं होइ ।।६६।।
निहचै सेतै गर पछै, पाण्डव राज छिनाइ।
दै हौ नृप पद कौरवहिं, यही कहौ तुम जाइ ।।६७।।
यौ सुनि निकस्यौ दून तब, गयौ तहाँ सुबिचार।
जहाँ चक्री कौरव सहित, बैठे सभा मझार ।।६८।।
नति करिकै यौ बीनयौ, सुनौं चक्रि तुम बात।
सन्धि करौ जादवन सौं, और भाँति नहि सांति ।।६९।
साचि सहित सुनि जिन उकति, केशव तैं तुम मति।
गगा सुत कौ नाश है, नृप सिखंडितै र्सति ।।७०।।
धृष्टार्जुन के हाथ तैं, मरण द्रोण कौं जान।
धरम पुत्र तैं मृत्यु है, सत्य तनी परवान ।।७१।।
दुरजोधन की पञ्चता, भीमसेन तै गम्य।
जयद्रथ पारथ हाथ तैं, कारन सुत अभिमन्यु ।।७२।।
कुरु पुत्रन कौ मृत कहीं, जानहुं मागध राइ।
निहचै तै यह जिन कथित, हम जानत है भाइ ।।७३।।

यौं कहि निकस्यौं दूत सौ, द्वारपुर में आइ।
नमस्कार करि हरि प्रतैं, कह्यौं कि सुनिये राइ ॥७४॥
भाई तिनकी वाहुनी, कुरु खेतहिं है देव।
जुद्ध विषै सकट भये, करां न आवत एव ॥७५॥
तुम कुं प्रभु गंतव्य है, तुरितहि अब कुरु खेत।
सत्रुन सौं जोधव्य है, जुद्ध विषै जय हेत ॥७६॥

सोरठा

ऐसी सुनि हरि सूर रण कौ उद्दित चित्त भये।
पाञ्च जन्य को पूरि भू अम्बर धुनितैं सुन्यौं ॥७७॥
सुनत सङ्ख की धाजि सैना केसव की चली।
कुरखेतहिं रन काज, राजन इन्द्र चमु मनौ ॥७८॥

सवैया २३

माधव की चतुरंग चमु चल तै चल चाल लई अचलाई।
मानहुं मेटि दई पगतैं दरि रैनु भई सु अकासहिं धाई।
कै अकुलाई कै भार परै भय भीरू भयें सुर लोकहि धाई।
कै उमही अरि आरन को परताप दवानल धूम महाई ॥७९॥

अथ चतुरंग चमुं वर्णनं

— प्रथम गज वर्णनं —

मत्त मयंद झरैं मद नीरहिं स्याम मनौं घन काल घटाई।
सेतु सुकेतु लसैं तिनपैं बग पंकति की परसी उपमाई ॥
कंचन की चमकैं चहु ओर बनी चउरासि किधौं चपलाई।
घेरि चले हरि रूप धरैं मनु मेटन कौं अरि ग्रीषमताई ॥८०॥

— अथ रथ वर्णनं —

सागर झार अपार चमुं अरि तारन कौरथ पोत सहाई।
अब्भई अर चक्र धरैं अथ अश्व चलैं मनु पौन बहाई ॥

उन्नत केतु रथी पटु खेवटई सजि ता बन की गति पाई।
आयुष पंच पदारथ पूरन सूरन कौं रन मैं सुखदाई ।।८१।।

— अथ अश्व वर्णनं —

चञ्चल चाल चलैं चल चामर, चारु तुरंगम अंग सुहाए ।
किंकिनि हार गरे अप पाखर तापर कचन जीन कसाए ।।
मारू बजैं तजि नीद नचैं परचैं नहीं जमके नटवाए ।
पौंन के पूत किधौं बडवा सुत सत्रु समुद्रहि सोखन धाए ।।८२।।

— अथ पदाति वर्णन —

स्यांग सु कौच कढी दिढलाइ, किधौं तन पैं घन की छवि छाया ।
सूर पयादल ढाल विसाल महा करवाल लयें कर धाए ।।
काचैं कंमान कटारि छुरी सर कोस सु खैंचि कटिकाए ।
दुरजन के दल वारन कौं मनु दौरि चले जम पुत्र महाए ।।८३।।

दोहा

ऐसी विधि चतुरंग दल, लीनें जादव राई ।
आइ ठये कुरुखेत तट, महा उदय कौं पाइ ।।८४।।
दुर्निमित्त तब बहु भये, जरासंधि की सैंन ।
दुख के सूचक प्रगट ही महा अजस के दैन ।।८५।।
भयो राहुतैं रबि गहन, गगन माहि भयदाई ।
बरस्यौं बारिद बिन समैं, दीनी सैन बहाई ।।८६।।
प्रात ही काग धुजान पै, रबि सनमुख एठन्ति ।
गृद्ध ऋद्ध छत्रादि पैं, बैठे नखनि खनन्ति ।। ८७ ।।
भू कम्पन अनहद रुदन, मार मार धुनि बाहु ।
बार-बार उलका पतन, रुधिर विष्टि दिगदाहु ।।८८।।
कुसुगन लखि कौरव पति, मन्त्रि प्रतें यौ भाखि ।
दुर्निमित्त हे मन्त्रिपति, लखीयत है बहु भांखि ।।८९।।
मंत्रि कहै भो प्रभु कहाँ, नाहि सुनी तुम बात ।
मिलि है सबहि तिमिंगि ज्यौं, यह कुरुखेत विख्यात ।।९०।।

सरिता रुधिर प्रवाह की, वहि है या भू माहि।
तामैं स्नान करे बिनां, रहि है कोऊ नाहि ॥६१॥

राक्षस भूत पिशाच गन, चाहत बलि नर मांस।
तिनके तिरपत कारनैं, मरि है बहु भट रासि ॥६२॥

मुंडि फिकारत राक्षसी, फिरत करत आकास।
राजनि की बनिता घनी, ह्वै हैं विधवा आस ॥६३॥

गिद्ध स्याल मडलात अति, आत पात्र के माल।
होइ धरनि लोथनि भई, अरुन बरुन बिकराल ॥६४॥

जरि है आयुध अगनि तै, कौरव वश बिसाल।
यौं भाषत दिग दाह यह, राज चाल भूचाल ॥६५॥

कुत्सित रन को खेत है, यह कुरु खेत कुखेत।
रुदन करत अनहद असद, कौरव नासत हेत ॥६६॥

फुनि दुरजोधन यौं कह्यौ, कहो मंत्रि मो इष्ट।
कितनी है अरि वाहिनी, कितने भट हम सिष्ट ॥६७॥

सो बोल्यो सुनिये नृपति, जे भूपति बल जोर।
दक्षिनबासी ते सबै, भये विष्णु की ओर ॥६८॥

सवैया २३

है बहुतौ करि सिद्धि कहा, प्रभु काइर स्यारल सूरनि मारैं।
एक धनंजयतैं सब भूपति, ए रण मैं न बराबर सारैं॥
कोई समर्थ निवारन कौं नहि, जा हरि सौं असुरादिक हारैं।
और हली हल मूसल धारत, जास नसै अरि ह्वै भय भारै ॥६९॥

विश्व सुप्रग्य यती प्रमुखा, जिस सिद्धि भई अरिनाशक सारी।
धार कुमारि सु ताहि निवारण, कौ रण मै नहिं सैन हमारी॥
पावनि पावन सत्रु बिनाशक, भूपरि भूप भुजाबल धारी।
मोहि न दीसत कोइ बली, तुम ता समहा बल को अपहारी ॥१००॥

दोहरा

सात अछोहिनि दल सहित, भूपति बली प्रसस्त ।
तिनकौ पाइ सहाइ हरि, सब अरि करे निरस्त ।।१०१।।
एकादसहिं अछोहिनी, दल दुरबल हम साथ ।
कहा होत बहुते भये, जो न बली हूं नाथ ।।१०२।।
ऐसी सुनि दुरजोध नृप, कह्यौ भक्ति प्रति सर्व ।
सत्रुन कौं तिन सम गिनत, धारत चित प्रति गर्व ।।१०३।।

सवैय्या २३

मागध यौ मद अंध भनै, अहि जोर कहा बनिता सुत आगैं ।
कौलौं रहै सम भार धरा परि, भोर भये रवि की कर लागैं ।।
ज्यौं बिचरै मृग होइ सुछदन, केसरि सोभित केसरि जागै ।
त्यौं मुझ कौं रण मांहि धरी, सब देखत ही दश हू दिसि भागैं ।।१०४।।
यों कहिकै त्रय खड पती, गजराज चढै रण कौं चढि आयौ ।
ताही समैं दिसि नायन कौं, दसहुं दिसि साथहि कंप दिवायौ ।।
संग लये गजराजनि के नर, छत्र निसै नभ आंगन छायौ ।
रेणु उडाय चमु चपनै धन, रूप भये तिन सूरहि पायौ ।।१०५।।

दोहरा

जरासंधि निज सैन मैं, चका व्युह सु रचाय ।
गरुड़ व्यूह श्रीकृष्ण नै, ठान्यौं बहु भय दाय ।।१०६।।

सवैया २३

दोऊं महा दल दारुन तैं इम, घोर भयौ तम भू रज छाये ।
जाय छिपे जुग कोकनि के निज, आलनि मे रवि अस्तहराये ।।
काग पुकारि उठे भय पाय सुघोसहि मे निसि के भरमाये ।
जुद्ध पर्यौं अति कोप जग्यौ, जम कै परबै प्रगटी रन ठाये ।।१०७।।

दोहरा

माधव मागध यौं अरे, एक राज के हेति ।
जीवन ममता तजि सुभट, लरन मंडे कुरुखेत ।।१०८।।

सोरठा

उमगि चले रन खेत, दुहुं ओर के सूर यौं।
स्वामि काज के हेत, निज निज आयुध हाथ लैं ॥१०९॥

करत घोर संग्राम, तजि सनेह निज देह को।
बिसरि भांम सुख धाम, सुमरि सूरपन सूरही ॥११०॥

अडिल्ल

असि निकासि ललकारि, चले निज कोस तैं।
देत सत्रु सिर मांहि, झटाझट रोस तैं॥
घन कुदाल तैं जैसैं, बल्ली भेदिये।
कुंत अग्रतै त्यौं, अरि काया छेदिये ॥१११॥

घन समान भट केइक, अति ही गर्जि कै।
गुर्ज्ज घात तैं मारत, अरि कौं तर्जि कै॥
रकत धार निकसी, गज कुंभ विदारि तैं।
भई लाल दस दिसि, मनु कुकुंम बिदारि तैं ॥११२॥

हनत अश्व असवार, सुहय असवार हीं।
धाइ धाइ रथ सारथ रथहिं हकार हीं॥
मत्त मत्त गजराज कैं, सनमुख आवही।
कुंभ कुंभ तै, दंतहि दंत भिरावहीं ॥११३॥

बान बान तैं छेदि, धनूद्धंर सूरहीं।
खैंचि खैंचि आकर्णहि, अंबर पूरही॥
परस परस तै, दण्ड हि दण्ड सुखंड ही।
करत जुद्ध परचण्ड, महाबाल बंड ही ॥११४॥

चकि सैंन तैं हरिबल, भाज्यौ ता समैं।
जल प्रवाह ज्यौं, दावानल ज्वाला दमैं॥
कूंवर संदू तब निज जन धीरज धार तौ।
जुडयौं जुद्ध कौ, उद्धत अरियन मारतौ ॥११५॥

छेम विद्धि षग तब ही सन्मुख आइकैं।
लह्यौ सबसौं अति ही बल प्रगटाय कै।।
करयौं संबु नै रथबिन भूमि गिराइयौ।
जुद्ध छोडि सो खेचर, तब ही पालाईयौ।।११६।।
उठयौ और खग तोलौं, रण कौं मद धरैं।
विद्या माहि सुविसारद, आयुध अनुसरैं।।
करयौं संबुतैं सो भी, निरबल क्रुद्ध तैं।
कहयौ भाजि मत खग रे, अब तूं जुद्ध तैं।।११७।।
बार बार ललकारयौं, अैसे भाषि कै।
गयो भाजि खग सो भी, जीवहि राखि कै।।
कालसबर सुत वही, आयो खगपती।
हनत सत्रु कौं पहिरैं, कंकट दिढ अती।।११८।।
कुंवर सबू के सनमुख, धायो जुद्ध कौं।
धनु चढाइ सरलाइ, बढाइ विरद्ध कौं।।
तबहि संबु कौं, बज्जिसु आयौ मार ही।
मेघ अोघ ज्यौं बरषत, सर की धार ही।।११६।।
भनैं मार खग प्रति, तूं जनक समान है।
जुद्ध जुक्त नहिं तो, संग न्याइ प्रमान है।।
फिरि सु जाउ तुम तातैं, हम सौं मत लरैं।
तब हि मार सो, खगपति अैसे उच्चरै।।१२०।।
स्वामि काज के कारी हम सेवग सही,
जुद्ध मांहि बच ऐसे कहि ने है कही।
कर निसक तुं तातै धनु सधान ही,
जुद्ध मांहि नहिं दोष अरे अरि हान ही।।१२१।।
तबहि मार अरु काल सु संवर गाजि कै,
करत जुद्ध जुग जोधा आयुध साजि कै।।
लगी बार बहु रति पति कौं लरतैं जबै।
तज्यौ बांन प्रज्ञपती छिद्यामय तबै।।१२२।।
सकल शस्त्र करि व्यर्थ भयौ तब खग पती।
पुन्यवंत स्यौं चलैं न बल अरि कौ रती।

कालसंबरहिं बांधिकर्‌यौ निज रथ विषैं,
सल्यखेट तब आयौ रण कै सनमुखैं ॥१२३॥
तबहि मारनै छोडै सर बहु तीछना,
छेदि सल्य कौ संदन कीनौ जीरनां।
सल्य और रथ चढि कै रण अति ही कर्‌यौ,
सिस्सुपाल कौ अनूज सुनलौं अनूसरयौ ॥१२४॥
हत्यौ मार कौं सरतैं मूर्छित कर दीयौ,
बहुरि बांन गन तजि कै रथ चूर्णित कीयौ।
गिर्‌यौ स्वामि अरु देख्यौ रथ टूट्यो जबै,
भयो सारथी अति हीं भय पीड़ित तबै ॥१२५॥
ह्वं सचेत उठि बैठ्यो तोलौं काम ही,
सुथिर चित्त ह्वं बोल्यौ गुरु गण धाम ही।
अहो सारथी हिरदै भय नहिं धारिय,
भये भीत रण माहि अरिसौं हारिये ॥१२६॥

दोहरा

रण सनमुख कादर भये, सुर नर सभा मझार।
खेटन मैं पाडव नमैं, लजीए पावत हार ॥१२७॥
फुनि दशार्ह बल कृष्ण मैं, आवै हम कौं लाज।
तातै या तन असुचि तै, ह्वं है कौन सुकाज ॥१२८॥
कीजै पुष्ट शरीर कौं, करकै सरस अहार।
को गुण तासौं जुद्ध मैं, जो भाजै भय धार ॥१२९॥
यौं कहि मनमथ अन्य रथ, चढि सारथि थिर कीन।
सिस्सुपाल के अनुज सौं, बहुरि भयौ रण लीन ॥१३०॥

अडिल्ल

लगे जुद्ध कौं दोऊ रण कौंविद महा।
दुहुं मद्धि तिन के आयौ हरि तहां॥

तबहिं सल्य खग घायौ भट प्रति विष्णु कौं।
कहत एम सिर छेदौं अब मैं कृष्ण कौं ॥१३१॥
नभ खगेश नैं छायो बानन सौं तबैं।
परत दृष्टि नहिं केशव रथ सारथि सबै ॥
मनौं मद्धि सर पजर घेरे आनि कैं।
लखैं सूर सब जीवित सासय जानि कैं ॥१३२॥
कपमान रुधिरारुण नर इक ओर हीं।
आइ कृष्ण प्रति बोल्यौ तिस रण ठौर ही ॥
भो मुरारि किम करत वृथा तुम जुद्ध ही।
हते पाडवा पाचौ रण मै क्रुद्ध ही ॥१३३॥
फुनि दशार्ह से बलधर जोधा और जे।
जरासाध नैं मारे रण मैं ठोर तें ॥
नगर द्वारिका सिंधु बिजय नृप जोर है :
जुद्ध मांहि सो अरि नै भेज्यौं जम ग्रहै ॥१३४॥
लई सत्रु नैं निहचै द्वारावति पुरी।
अबहिं नाथ क्यों मरत वृथा तुम हे हरी ॥
भाजि जाहु तुम रण तैं जो वांछौ सुखैं।
मायामय वच सुनि इम हरि बोल्यौ रुखैं ॥१३५॥
अरे दुष्ट मो जीवत जादव नृपन कौं।
को समर्थ नर जग मैं इन के हतन कौं ॥
वचन कृष्ण के सुनि सो भाज्यौं दुष्ट ही।
चल्यौ विष्णु अरि ऊपरि धनु गहि रुष्ट ही ॥१३६॥
कैं पिशाच खग तौलौं कोइक आइ कै।
कह्यौ कृष्ण प्रति ऐसे झूंठ बनाइ कैं ॥
भो गुपाल तुम देखहु नभ की ओर ही।
हत्यौ भूप वसुदेवहि अरि नैं ठोर हीं ॥१३७॥
चल्यौ त्यागि रन खगगनता बिन भय रख्यौ।
यही बात कहि वृद्ध विशेष हरि पैं हत्यौ ॥

सिखी बान तैं हरि नैं खेद्यौ छिन विषैं ।
तबहि कृष्ण परिहार्यो परबल ह्वै रुषैं ॥१३८॥
असनि बान तैं गिरि भी हरि तैं नासीयो ।
गयो भाजि तब खेचर हरि तैं त्रासीयो ॥
तबहि विष्णु कौं नर सुर पर ससौं घनो ।
बहुरि आइ तिम खग मैं नुत कर्यौं मन्यौं ॥१३९॥
भो नरेन्द्र जब लौं लग दूजौ आइ कैं ।
केतु छत्र रथ तेरे लुहन न धाइ कैं ॥
जाहु जुद्ध तैं तोलौं भो बच धारिए ।
और भांति रण मांहि अरी सौं हारीए ॥१४०॥
अहो कृष्ण बिन कारन रन क्यौं करतु है ।
सिद्धि नाहि कछु या मैं अथ अनुसरतु है ॥
लुनहु चक्र तै मस्तक मागध को महा ।
जनवगाक बिरथा ही मारैं ह्वैं कहा ॥१४१॥
सुनत बात यह कोपित माधव यो भनै ।
हन्यौं नाथ किम आइ बरा को बिन हनै ॥
यही बात कहि हरि नै असि नदब करै ।
कर्यौ खेट द्वै टूक पर्यो सो भू परैं ॥१४२॥
जीवित हरि कौं लखि सुरगन गगन तैं ।
पुष्प वृष्टि बहु कीनी बिधन सुरन तैं ॥
कर्यौ कृष्ण तब बल प्रति की विधि ठानीये ।
चका व्यूह अति दुर्द्धर त्रासौं हानीये ॥१४३॥

दोहा

आइ विष्णु रण मैं तबै, तीनि सूर लै संग ।
चका व्यूह गिरि असन ज्यौं कर्यौ छिनक मे भंग ॥१४४॥
जरासंध तब क्रुद्ध ह्वैं, अरिगन मारन काज ।
दुरजोधादिक तीनि भट पठए आयुध साजि ॥१४५॥

दुरजोधन के सनमुखें, जयो पार्थ परबीन ।
रूप्य सामही नेमिरथ, धर्मज सेना तीन ।।१४६।।

अडिल

तब परस्पर सूर लगे हुंकारि कै ।
करत चूर्ण गज हय रथ आयुध मारि कै ।।
सूरवीर सन्नद्ध भये रन सांमही ।
चले भाजि मुख मोरि सुकायर धांम ही ।।१४७।।

सूरन के तन आयुध ज्यों ज्यो वर्ष ही ।
नारदादि सुरगन कर नांचत हर्ष ही ।।
भनत पार्थ प्रति यौं दुरजोध हकारि कै ।
कर्यो भस्म मैं तोहि हुतासन जारि कै ।।१४८।।

रे निलज्ज नर गर्व वृथा ही क्या करैं ।
तोहि लाज नहिं आवत सनमुख खरैं ।।
यही बात सुनि अर्जुन धनु टंकोरीयौ ।
प्रलय काल कौ मनौं घनाघन घोरीयौ ।।१४६।।

छोडि बांन सघात सुकौरव छाइयौ ।
दुहुं मधि जालधर तोलौं आइयौ ।।
धनुष पार्थ कौ छेद्यौ रण मे आवतैं ।
कर्यौ जुद्ध फुनि दुर्द्धर सरगन छावतैं ।।१५०।।

तबहिं पार्थ सौ बोल्यौं रूप्यकुमार यौं ।
वृथा पक्ष अन्याय करत अविचार क्यो ।।
वासुदेव पर कन्याहार कहै सही ।
अरु परस्व अभिलाषी तस्कर भीवही ।।१५१।।

यह बात सुनि अर्जुन बोल्यौ रे वृथा ।
गर्जि गर्जि किम भाषत तूं दादुर जथा ।।

न्याइ और अन्याइ अबै दिखलाइ हौं।
सीस छेदि तुझ जम के गेह पठाइ हौं ॥१५२॥

यही बात कहि सरगन छोडे अर्जुनां।
कर्यौ कर्ण्य कौ छिन मैं हति के चूरनां॥
हनत विघ्र कौं जैसे श्रेयस छिनक मैं।
कर्ण्य खेत यौं मार्यौ नर नै तनक मै॥१५३॥

जुद्ध मांहि थिर राइ जुधिस्थिर रण प्रतैं।
स्वेत अश्व करि जो जित रथ राजित अतै॥
रथारूढ रथनेमि विराजत जय करैं।
चक्र व्यूह कौं छेदि सु तीनौं जस धरैं॥१५४॥

सकल सूर नृप सज्जन जादव बल तनैं।
भये चित आनंदित पुलकित तनठनैं॥
रुधिर नांम नृप कौ सुत सुभट सुप्रगट ही।
हिरन्यनाभ सेनानी मागध को वही॥१५५॥

लयौ मारि सो रण मैं धर्मजनैं जदा।
भयौ खिन्न तिस बध लखि रबि आंथ्यौ तदा॥
मनौं पछिमहि सागर स्नान सुकरन कौं।
गयौं सांतता कारन मगश्रम हरन कौं॥१५६॥

दोहा

मनु सुभटन कौं मरन लखि, आई करुना सूर।
भेज्यौ तुम यह जाइ कै, जुद्ध कर्यौ तिन दूर॥१५७॥
सकल भूप निसि कैं भये, आये निज निज थान।
सेनापति बिन चक्रपति, बोल्यौं मंत्रिहि बांनि॥१५८॥
सेनापति के पद विषै, थपीये और अनूप।
यौं सुनि कै तब मंत्री यौं, थाप्यौ मेचक भूप॥१५९॥
तौलौं कौरव राइ नै, पठयौ दूत प्रवीन।
पांडव तट सौं जाइ कै, नत कर बिनती कीन॥१६०॥

तुम सौं कौरव यौं कहत, सुनीये नाथ विचार।
अब मैं जितने दुख तुमहि, दये महा अमकार ॥१६१॥

तिन कौं रन मैं सुमरि कै, क्यौं नहिं आवत दोरि।
जीवत मुचौं तुमहि नहिं, छिन मैं मारौं चोर ॥१६२॥

यह सुन बोले पांडु सुत, उत्तर दैं न समर्थ।
तेरो प्रभु उदित भयौ, जमपुर जाने अर्थ ॥१६३॥

जरासंध के साथ ही, पठवैंगे जम गेह।
सुनि कैं दूत सुकौरवहि, जाइ कही सब एह ॥१६४॥

तोलौं रवि मन उदयगिरि, आयो देखन हेत।
भोर भये तहा सुभट नट, नटन लगे कुरु खेत ॥१६५॥

मार मार करि ते उठे, धनु सर कर असि लेत।
सोवत जागि परे मनौं, सृष्टि हतन कौ प्रेत ॥१६६॥

सोरठा

सूरनि मैं सिरमौर, रथ बैठे पारथ नृपति।
महासरन की ठौर, प्रश्न करत सारथि प्रते ॥१६७॥

कहौ सुत तुम दछ, केतु अश्व लछिन सहित।
जे नृप नांम विपछ, तिन कौ वर्णन कीजिये ॥१६८॥

दोहरा

ऐसी सुनि कै सारथी, निरखत अरि की सैन।
भिन्न भिन्न लछन सहित, भाषत उत्तर बैन ॥१६९॥

रथ सोभित जिस स्यांम हय, धुजा बिराजत भाल।
सुर सरिता सुत अरिन कौं, हव आयौ मनु काल ॥१७०॥

सोण सप्त साजित सुरथ, कलस केतु यह द्रोण।
रण मैं सुभटन की धुजा, धनुर्वेद कौं भौन ॥१७१॥

सो बन्धी दुरजोध यह, नील अश्व अहि केतु ।
अरि के शोणित पान कौं, अति उदित मनु प्रेत ॥१७२॥
पीत अंग तुरग रथ, यह दुःसासन राय ।
लछिन जाकी केतु मैं, राजत है अन्याय ॥१७३॥
अश्वथाम यह द्रौण सुत, हरि धुजि यक्की याहु ।
मनु दुर्जन बन दहन कौ, महा दवानल दाहु ॥१७४॥
सल्य सत्रु कौसल्य यह, सीता केतु विराज ।
अम्ब वर्ण बघूक के, यह आयौ रण काज ॥१७५॥
जाकौ रथ दुरवार अति, महाजय दृढ वीर ।
लागे लोहित वर्ण हय, कोल केतु यह धीर ॥१७६॥
अल्प नृपन कौं जानियौं, अर्जुन नृप कपि केतु ।
अरि केसन मुख धनुष गाई, उठ्यौ जुद्ध कै हेत ॥१७७॥

अडिल

तबहि जुद्ध कौ लागी गज सौं गज घटा ।
सूरन के कर चमकत असि चपला छटा ॥
घोर गर्जना होत धनुष टकोर की ।
बान वृष्टि जलधारा बरसत जोर की ॥१७८॥
खेट खेट सौं जुद्ध करत आकास ही ।
भूमि भूमिचर आपसमैं तन त्रास हीं ॥
खड्गपानि के सनमुख खड्ग सुपाचि हीं ।
धनुर्धरि कौं धनुधर मारत बान ही ॥१७९॥
कुंत कुंत तैं छेदहि गुर्ज सुगुर्ज ही ।
चक्र चक्रतैं मारि गदागद तर्ज ही ॥
गजारूढ कौ गज आरूढ सुमार ही ।
रथारूढ कै सनमुख रथ असवार ही ॥१८०॥
हयारूढ कौ हय आरूढ बुलावही ।
पत्ति पत्ति के सनमुख सस्त्र चलावही ॥

निशित बान के छल तैं चलि भट गातहीं।
मनौ दंत जम के नर मांसहि खातही ॥१८१॥

छेदि सीस भू डारत हति करवाल की।
गिलत सृष्टि कौं मानौं रसना काल की ॥
परत गुर्ज की मार मनौ जम मुष्टि ही।
हतहिं कुंत करि तांत तनी मनु जष्टि ही ॥१८२॥

मनु कि नाक की लात गदा के रूप ही।
मारि मारि घमसान करे बहु भूप ही।
खडग खडग तैं लागि झरा झरी ह्वै परै।
प्ररुन अग्नि के जोर फुलिगे अनुसरै ॥१८३॥

कुंत अग्रतै गज के कुंभ विदारहीं।
अरुन वर्ण तहां निकसत सोणित धार ही ॥
अंतरंग मनु को पानल ज्वाला जगी।
सत्रु दारु अति दारुन जारन कौं लगी ॥१८४॥

ताल पत्र सम गज के कर्ण सुहा लहीं।
शस्त्र अग्नि कौं मांनौ धौंकि प्रजालही ॥
हस्ति हस्ति के सनमुख धावत अति भिरै।
प्रलय पौंनतैं पर्वत मनु लुढतें फिरै ॥१८५॥

जुद्ध माहि बहु दौर तुरग अनूप ही।
मनौ चित्त असवारन के हय रूप हीं ॥
अनिल लाग तैं हालत रथ पंकति धुजा।
किधौं शत्रु के रथहिं बुलावन की भुजा ॥१८६॥

उर्द्ध केस कौ पारुण चक्षु रूपतिहीं।
मनौ काल के किंकर गरजत मत्तही ॥
घोर वीर संग्राम करत यौं पूरही।
स्वांमि कार्य पारयन प्ररितन चूरही ॥१८७॥

दोहरा

गंगासुत तारण विषै, पनिच चाप सौं तांन।
सनमुखहीं अभिमन्यु कै, आयौ धरि अभिमान ॥१८८॥

अडिल

तब कुमार नै प्रथमहि बान चलाइ कै।
धुजा भीष्म की छेदी क्रोध बढाइ कै॥
मनु महत्वता उन्नत कौरव नृपन की।
करी नास रण माहि सु सोभा धरण की ॥१८९॥
धुजा और आरोपि सुनिज रथ कै विषै।
गगपुत्र नै दस सर मारे ह्वै रुषै॥
धुजा कुमार की छेदी जब गागेय ही।
तब कुमार नै मारे सर बहु भये ही ॥१९०॥
रथीबाह धुज छेदे गंगा तनूज के।
नसत बजतै जेम कगुरे वुरज के॥
सकल सूर सुरवानी तब ऐसे भनी।
बली धन्य अभिमन्यु धनुर्धर है गुनी ॥१९१॥
मनौ पार्थ यह दुजौ है साक्षात ही।
भयौ भूमि मैं सुस्थिर बर विख्यात ही॥
बानन तै इन नासे सत्रु अनेक ही।
हनत नाग निर अकुसि जिम ह्य भेक ही ॥१९२॥
पार्थ सारथी उत्तर नामा रण विषै।
तिन बुलाइ कै लीन्यौ भीषम सनमुखे॥
परयौ आइ अरि तौलौ सल्य सुनाम ही।
महाघोर रण मांर्यौ उत्तर सांम ही ॥१९३॥
कुंत खड्ग धनू धारैं सल्य सुकुद्ध तै।
हत्यौ सारथी उत्तर जुद्ध विरुद्ध तै॥

मनु प्रचड मुजदड सुपारथ कौ गिर्यौ।
सुत विराट कौ उत्तर पृथु पृथ्वी पर्यौ ॥१६४॥

स्वेत नाम तसु भ्राता धायौ ता समैं।
लयौ सल्य ललकारि अनूज के नासमैं ॥
तिष्ठ तिष्ठ रे सल्य यहै रण ठाइ है।
अनुज बाल मो मारि कहा अब जाइ है ॥१६५॥

केतु छत्र सब शस्त्र सुता के तोडि कैं।
कर्यौ मल्य कौ बिहवल कवचहि फोरि कैं ॥
घोर मार बहु दीनी स्वेतकुमार ही।
मर्यौ सल्य नहि तो भी करत सिपार ही ॥१६६॥

भयौ क्रुद्ध गगासुत याही अतरैं।
परयौ आड दुहु मधि सरासन कौ धरैं ॥
करत जुद्ध तिन रोक्यौ रण मै स्वेत ही।
लयौ भीष्म भी छाइ सरन तैं खेत ही ॥१६७॥

ह्वै अदृश्य रवि नभ मैं आये मेह ज्यौ।
बान स्वेत के छाये भीषम देह त्यौ ॥
देखि भीष्म कौ विह्वल कौरव धाइयौ।
मारि मारीये याहि कहत यौ आइयौ ॥१६८॥

स्वेत सामनैं आवत लखि दुरजोध कौ।
पार्थ ताहि ललकारि लयौ धरि क्रोध कौ ॥
कहत पार्थ रे कौरव तु कहा जातु है।
मो मुजान तैं तो मद अबहि बिलातु है ॥१६६॥
वच प्रचड यौ भाखि दुर्जोधन रोकीयौ।
धनुष खैचि गाडीव सु नर टकोरीयौ ॥
हत्यौ आदि दस सरतैं कोरव ईसही।
बहुरि बीस फुनि मारे इषु चालीसही ॥२००॥
मारि मारि करि तीरौ असे छाइयौ।
तबही क्रोध बहु कौरवपति तै खाइयौ ॥

लगे पार्थ दुरजोधन दोउ जुद्ध कौं।
धरत क्रुद्ध मद उद्ध बढाइ विरुद्ध कौं ॥२०१॥

खडग खडग तै झारत कुंत सुकुंत ही।
बान बान तै छेदत धनुष धुनत ही ॥
दड दड सौं खडत अति बल बंड ही।
घोर बीर संग्राम मंड्यौ परचड ही ॥२०२॥

नृप विराट कै नदन तौलौं रण विषै।
करत जुद्ध धरि क्रुद्ध पितामह सनमुखैं ॥
चाप छत्र धुज छेदी भीषम के तहा।
हत्यौ घात फुनि तास उरस्थल मै महा ॥२०३॥

सिथल होइ कै गिरन लग्यौ तन भार ही।
कौरव सैंन भयौ तब हा हा कार ही ॥
भयी दिव्य धुनि तबहिं सुरन की गगन तै।
अहो भीष्म मत होउ सु काइर लरन तै ॥२०४॥

अहो बीर रन माहि सजि कै धीरता।
तोहि मारनै बैरी तजि कै भीरुता ॥
यही बात सुनि फुनि थिर आयुध होइ कै।
सावधान ह्वै रथ पै धनु सजोइ कै ॥२०५॥

साधि लछि सर छाडि सुमार्यौ स्वेत ही।
खाइ घाव दृढ सो जु पर्यौ रन खेत ही ॥
सुमरि पंच पद इष्ट गयौ सुरलोक सौ।
लहत सर्व सुख सुमिरत जिन तजि सोक सौ ॥२०६॥

दोहरा

तोलौ भई निसीथिनी, मरत लखे जोधार।
मानौ रण कौं बर्जती, आई करुणा सार ॥२०७॥
सूर छिपै हरि आदि सब, आये निज निज थान।
सुत कौ बध वैराट सुनि, रुदन भयो दुख खानि ॥२०८॥

हा सुत सगर के विषै, किन हु न राख्यौ तोहि ।
हा धरमातम धर्मसुत, क्यौं न रख्यौ तुम सोहि ।।२०६।।

भीम मूर्ति हा भीम भट, हा हा अर्जुन राइ ।
तुम देखत क्यौं सत्रु नैं, मार्यौ मो सुत ठाइ ।।२१०।।

तब जुधिस्थिर राइ न, करी प्रतिग्या घोर ।
सत्रहमे दिन आज तैं, हति हौ सल्यहि ठौर ।।२११।।

जो नहि मारै तौ तबै, झंपा पातहि मंडि ।
सब के निरखत मान तजि, जरौं अगनि के कुंड ।।२१२।।

खडक सत्रु सिखंडियौं, बोल्यौ बचन प्रचंड ।
नवमे बासर आज तैं, करौ भीष्म के खड ।।२१३।।

यही प्रतिज्ञा हम करी, पूरन ह्वै जो नाहि ।
अपने तन को होम तौ, करौ हुतासन माहि ।।२१४।।

धृष्टद्युम्न फुनि यौं कही, मो निहचै यह ठीक ।
सेनानी कौ मारि हौ, यामै नाहि अलीक ।।२१५।।

सोरठा

उदय भयौ दिन साज, तौलौ दिनकर हरत तम ।
मनु देखन के काज, कारज भारत भटन कौ ।।२१६।।
लखे ग्रहन हथियार, मार मार करतें सुनें ।
भयौ सूर भय भार, तातै कपत ऊदयौ ।।२१७।।

अडिल

भये भोर तब जोधा दोऊ ओर के ।
महा जुद्ध आरंभत धाये धोरि कै ।।
तीछन शस्त्र सौ देह परस्पर खंड ही ।
हस्ति हस्ति औं रथ रथ हय हय प्रचड ही ।।२१८।।
पत्ति पत्ति कै सनमुख धावत जुद्ध कौ ।
मारि मारि मुख भाखि बढावत क्रुद्ध कौं ।।

लछिन तैं पहिचानि भटन के सनमुखैं।
चले धाइ रण मांहि धनंजय ह्वै रुखैं ।।२१६।।
मनौं केसरी मत्त गयदन कौं हतै।
भूपन कौं त्यौं अर्जुन हति कै जय रतै ।।
घोर बीर रण माहि पितामह धाइयौ।
असंख्यात सर तै नर कौं तिन छाइयौ ।।१२०।।
इन्द्र पुत्र सरि धारा भीषम कूं लही।
और राइ ठहराइन ज्यौ तृन पूल ही ।।
बानन तैं सुर सरिता सुत नैं नभ छयौ।
मनौ मेघ जल बरषन कौं उदित भयौ ।।२२१।।
अंधकार भू माहि कर्‌यौ सर छाइ कै।
करत राति मनु दिन तै सूर छिपाइ कैं ।।
करे पार्थनै ते सब निरफल छिन विषैं।
करत जुद्ध बहु धीरज धरि कै सतमुखें ।।२२२।।
छुटत पार्थ के बान महा परचड ही।
करत खड बल चड गजन की सुंड ही ।।
चरन हीन हय कीने उन्नत छेदि कै।
करत चूर रथ चक्र सर्न तै भेदि कै ।।२२३।।
कवच चूर करि सूरन के सर फोरि कै।
मर्मथान प्रति नर्म सुधर्महितु जोरि कै ।।
सकल पार्थ नै छेदे धनू गांडीव तै।
मरे भूरि भट रण मैं छुटि कै जीव तैं ।।२२४।।

सवैया २३

बसि कै निषंग बास बैसि कै सरासन पै।
सर ही के रूप ह्वै प्रकास मैं उडतु है ।।
तीछन है भाल चुंच सर को कठोर कंठ।
पीछै पर लाइ कै पनिच सो छुटतु है ।।

परत है छुत होइ सुरन के तननियै।
ग्रमिष के खान हार हिसा ही करतु है ॥
ऐसे बान ग्रर्जुन के जम के सिचान किधौ।
जिन्हे जाइ दावै ते सामन भरतु है ॥२२५॥

दोहा

इहि विधि सर ग्रर्जुन तनै, छुटत लखे दुरजाध।
भीषम कौ निदत तबै बोल्यौ धारत क्रोध ॥२२६॥
तात तात तुम रग विषै यह ग्रारभ्यौ केम।
हार हात निज सैन की जीतत दुजन जेम ॥२२७॥
र्हि । शकै रग मै जथा, यह पारथ दुखदाइ।
रहा पितामह सा करौ, जिहि विधि शत्रु नसाइ ॥२२८॥
ग्रगि ग्राये रग सनमुखे, का भट ह्वै निहचत।
तातै बान प्रचड तजि, हतै शत्रु कौ सत ॥२२९॥

ग्रडिल्ल

यही बान सुनि गगासुत पारथ प्रतै।
भया जद्ध को उग्नि ह्वै शोभित ग्रतै ॥
तबहि इन्द्र सुत बोल्यौ सुनि भीष्मपिता।
हार देस यह सून्य सबै तुमरौ सौ पिता ॥२३०॥
जमागार का ताहि तथापि पठाइ हो।
ग्रबहि मारि जम की पट्टनर कराइ हौ ॥
बच कठोर कहि ग्रैसे लागे जुद्ध कौ।
हत निदई भिरत बढाइ विरुद्ध कौ ॥२३१॥
तब हि द्राण रग माहि धनुष चढाइ कै।
धृष्टद्युम्न क सनमुख ग्रायौ धाइ कै ॥
छुरक बान तै गुरु नै रथ धुज छेदए।
बहरि धृष्टि नै छत्र धुजा तिस भेदए ॥२३२॥

शक्ति बान तब छोड्यौ गुरु नै तुरित ही ।
धृष्टिद्युम्न नै छिन मैं छेद्यौ परत ही ।।
तीछन बुधि धृष्टार्जुन गुरु पैं धाइ कै ।
लोह दंड की मारी जोर बगाइ कै ।।२३३।।

तीछन बान तैं गुरु नैं तब ही छेदि कै ।
खंड खंड करि डार्‌यौ छिन मे भेदि कै ।।
तबहि द्रोण गुरु ढाल लई कर बाह नै ।
पकरि खडग कौ धायो हाथ सु दाह नै ।।२३४।।

धृष्टद्युम्न कौ मारन सनमुख ही चल्यौ ।
मनो क्रुद्ध ह्वं काल बिदारन कौ चल्यौ ।।
इसी अंतरै भीम गदा ते हस्त ही ।
सुत कलिंग कौ मार्‌यौ करि कै पस्त ही ।।२३५।।

नीतवंत बहु उन्नत पुत्र कलिंग कौ ।
पर्‌यौ शीश मनु कौरव दल चतुरंग कौ ।।
करे भीम सत्रासित कौरव नृपत ही ।
धरत रोस रण माहि सु अरिगन दलत ही ।।२३६।।

गदा घात तै सात सतक रथ चूरए ।
सत्रु सैनि सघारि मही मे पूरए ।।
इक हजार हति हाथी कीनें छय सही ।
घोर वीर रण उद्धत पावनि जय लही ।।२३७।।

इसी अतरै गुरु नै तरुहि कुठार ज्यौ ।
खडग धृष्टि कौ खेद्यौ तीछन धार त्यौ ।।
जुद्ध माझ अभिमनु सु तोलौ आइ कै ।
टूकि टूकि रथ कीन्यौ गुरु कौ धाइ कै ।।२३८।।

तबहिं आइ कै पोहुच्यौं सुत दुरजोध कौ ।
नाम सुलखमण सु मानौं पुंजक रोध कौं ।।
आवत ही तिन धनूष सुभद्रा सूनु कौं ।
खड़ खड करि डार्‌यौ मानौ ऊन कौं ।।२३९।।

ग्रौर बाप ग्रभिमन्यु सूलें तब धाइयौ।
छिनक मांहि ग्ररि कौं दल सकल भगाइयौ ।।
तबहि सत्रु तब इकठें ह्वं ग्रति ही रुषै।
पार्थ पुत्र कौं वेढि लयौ रण के विषै ।।२४०।।

पार्थपुत्र पचानन समयौं हेरियौं।
मनो सिंघ कौ मत्त गजौ मिलि घेरियो ।।
तबहि ग्राइ कै ग्रर्जुन धनु गाडीव तै।
सकल पुत्र के सत्रु विनासे जीव तै ।।२४१।।

नसत मेघ के सचय जैसे पवन तै।
उडत सत्रु गन तैसे नर कैं सरन तै ।।
जुद्ध माहि जिहि ठौर धसत पारथ बली।
तिमी ठौर परि जाहि ग्ररिन कौ हल चली ।।२४२।।

दोहरा

इहि विधि जोधा जुद्ध मैं, नित प्रति करतै जुद्ध।
जब ग्रायो दिन नवम तब, भयौ सिखडी क्रुद्ध ।।२४३।।
लीनो गुरु गागेय कौ, निज सनमुख ललकार।
तब सिखडि प्रति पार्थ यौ, बोले वचन विचारि ।।२४४।।
हे शिखडि ग्ररि हतन कौ, सर प्रचड यह लेहु।
जा मरसू हम पूरवैं, जार्यौ खड बने हु ।।२४५।।
तब सिखडी बल चड नै, लीन्यौ तब वह बान।
ग्ररि मृग खडन कौ महा, धायौ सिंघ समान ।।२४६।।

ग्रडिल

करत खड ग्ररि सैन सिखंडी भूप ही।
उठ्यौ जुद्ध को क्रुधित जम के रूप ही ।।
द्रुपद पुत्र गगासुत लरहिं परस्परै।
दुहु मधि नहिं एकहि जय कौ ग्रनुसरै ।।२४७।।

जुगम सिंघ मनु जुद्ध करत बन कै विषै ।
घन्न घन्न धुनि गगन सुरा सुरगन ग्रखैं ।।
धृष्टद्युम्न नैं ग्राइ सिखंडी भोरीयौ ।
भो सिखडि हम देख्यौ जोर न तुम कीयौ ।।२४८।।

जुद्ध माहि गंगा सुत ग्रबलौं ह्वै रुषै ।
घन समान ग्रति गरजति है तौ सनमुखैं ।।
फुनि सुतास कौ रथ भी दिढ खहरात है ।
ग्ररु उतग ग्रति ताल धुजा फहरात है ।।२४९।।

ग्रौर पार्थ भी पूरत है तो पृष्टि कौ ।
फुनि सहाइ बैराट करत तुम इष्ट को ।।
यही बात सुनि राइ सिखडी धोरीयौ ।
पनिच खैंचि ग्राकरनहिं धनु टंकोरीयौ ।।२५०।।

द्रुपद पुत्र नै गंगासुत के तन विषै ।
सहस एक सर सांधि हते ग्राते ह्वै रुषै ।।
मेघ ऊर्ध ज्यौं छावत मंडल गगन ही ।
लयौ छाइ गंगासुत तैसे शरन ही ।।२५१।।

कौरव को बल तौलो करि सथान ही ।
द्रुपद पुत्र पै छोडन लाग्यो बान ही ।।
सत्रुन के सर ताके तन नहि लगत ही ।
मनु सिखंडि तै नासै ह्वै भयवत ही ।।२५२।।
धृष्टद्युम्न के कर तै छूटत बान जें ।
लगत सत्रु के उर मैं बज्र समान ते ।।
गंगपुत्र के सर जे छूटत तीछना ।
ते प्रसून ह्वै जाहि सिखडी के तना ।।२५३।।
होंहि दुख्य सुख रूप सु पूरब पुन्य तैं ।
सुख्य दुख्य ह्वै परनै सकल ग्रपुण्य तैं ।।
गगपुत्र धनु जो जो धारत कर विषै ।
धृष्टद्युम्न तिस छेदत सरतै ह्वै रुषै ।।२५४।।

छीन पुन्य नर हारत सब की साखि हीं ।
पुत्र मित्र अरु भ्राता कोइन राख ही ।।
गगपुत्र कौ कबच सिखडी नैं तहा ।
तीछन बान करि हठतै भेद्यौ दिढ महा ।।२५५।।

मेघ धारतैं जैसें तरु बरषा समैं ।
परै टूटि ह्वै छीन सुथिरता नहि परमैं ।।
बान वृष्टि तें तैसे कवच सु फूटि कै ।
परयौ भीष्म कौ रन मै तन सौ छूटि कै ।।२५६।।

फुनि सिखडी नैं तीछन सरगन छोडए ।
हते अश्व जुग सारथि रथ धुज तोडए ।।
अति अकप रथ रहित सु गगासुत रल्यौ ।
कर कृपान करि अरि के हतिवे कौं चल्यौ ।।२५७।।

द्रुपद पुत्र नैं तबहि तीछन सरन तैं ।
खडग छीन करि डार्यौ अरि कै करन तैं ।।
छुरक बॉन तौ हृदय बिदार्यौ लीन है ।
पर्यौ भूमि परि तबहि पितामह छीन है ।।२५८।।

दोहरा

कठ प्रान तब जानि कै, लीन्यौ सुभ सन्यास ।
धर्म ध्यान हिरदै गह्यौ, धर्यौ धीर्य गुनरास ।।२५९।।
अनुप्रेक्षा चित राखि कै, सुमरि पच पद इष्ट ।
तन भोजन ममता तजी, गहि सल्लेखन सिष्ट ।।२६०।।
तवही रन तजि सकल नप, आइ ठए तिहितीर ।
पाडव तिस पद नमन करि, रुदन करत इम वीर ।।२६१।।
ब्रह्मचरज आजन्म तुम, अति उन्नत ब्रतपाल ।
अहौ पितामह पूज्यमह, सकल गुनन की माल ।।२६२।।
धर्म तनुज तब यौ कहत, भो उत्तम व्रतधार ।
हम कौ क्यो नहि मृत्य अब, आई दुख दातार ।।२६३।।

सर जर्जर भीषम कहत, कौरव पांडव सौजु ।
अभयदान तुम देहु तुम, सबही जीवन कौजु ॥२६४॥
करौ परस्पर मित्रता, तजो सत्रुता चित्त ।
अब लौ क्या ऐसे भये, तुम निहचै नहि किति ॥२६५॥
जे केई रन मैं मरै, गये निद गति सोइ ।
तातै कीजो धर्म अब, दस लक्षण अब लोइ ॥२६६॥
या अंतर चारन जुगल, आए नभ तै संत ।
शुद्ध चित्त उत्तिम तपा, महा मुनीन्द्र गुनवंत ॥२६७॥
निकट जाइ कै भीष्म के, बोले वचन गभीर ।
तो समान पृथिवी विषै, और नही महाधीर ॥२६८॥
काम मल्ल को जो सुभट, करत चित सौ चूर ।
ता सम जग मै और नहि, सूरन मैं महसूर ॥२६९॥

सवैया २३

भृकुटी कमान तान तीछन मदन बान
कामी नर उर थान मारै जान छिन मै
जोषित विरुद्ध जुद्ध नैनन सौ ठानै इम
ता मैं ठहराइ सुर सोई सूरगन मैं
बाधि बाधि आयुध कौ धारै उर धीरपन
साधि साधि साइक जे डारै अरितन मै
नदलाल सुनु भनै एतौ सूर सूरनाहि
धाइ धाइ लरै जोर जोपै घोर रन मै ॥२७०॥

दोहरा

ऐसी सुनि गांगेय भट, जुग मुनि के पग द्वद।
नति करि कै बोल्यौ गिरा, गुन ग्यायक गुनवृंद ॥२७१॥
जो भगवन भव बन भ्रमत, मै न लह्यौ नृष धर्म ।
कहा करौं या ठौर अब, किहि विधि ह्वै शिव सर्म ॥२७२॥

बांनन सौ ह्वौ छिन्न ह्वँ, मर्‌यौ सरन तुम आइ ।
तुम प्रसाद या भव विषैं, लहि ह्वौ फल सुखदाइ ।।२७३।।

यौ सुनि करि बोले मुनी, सुनौहु भव्य गागेय ।
सिद्धन कौ चित सुमिरि कै, नमन करो बहु भेय ।।२७४।।

पाद्धडी छद

सुभ चारि आराधन चित आराधि ।
धरु धीरय वीर्य तन वचन साधि ।।
वर तत्व अरथ श्रद्धान रूप ।
यह दर्श आराधन लहि अनूप ।।२७५।।

नव पदार्थ जहाँ ज्ञान होइ ।
नय प्रमान निज उक्ति जोइ ।।
तहा ज्ञान आराधन होई सछ ।
फुनि निह्चै आतम ग्यान तछ ।।२७६।।

चरीए सुचरण जहा विधि विचार ।
तेरह प्रकार अघहार टार ज्ञार ।।
खलु प्रवृत्त चिद्रूप मद्धि ।
चारित्र आराधन एहु विधि ।।२७७।।

द्वादश सरूप विवहार बुद्ध, चिद्रूप रूप निहचय विशुद्ध ।
तप नाग अराधन एम राइ, चित धारि आराधौ सुगतिदाइ ।।२७८।।
तपीए जुदेह तप जुगम भाँति, सुभ सजम मय गुन मूल पाति ।
अनशन प्रमुख तप बाह्य जानि, रागादि त्याग अतर सुमानि ।।२७९।।
विधि अराधन इम प्रकाशि, मुनि चारन कीनी गति आकासि ।
गुणवत सत गांगेय सार चारौ सु अराधन हृदय धारि ।।२८०।।
त्यागौ ममत्त आहार देह, छिम भाव सबन सौ धारि एह ।
पद पच इष्ट चित जपत धीर, सुभ ध्यान धरत तजि असु शरीर ।।२८१।।
उपज्यो सुजाइ दिवि ब्रह्म मद्धि, वर ब्रह्मदेव लहि परम रिद्धि ।
मनवाछत सुख भुगतै सुभोग, सुख होत सहज जिन धर्म जोग ।।२८२।।

तहां पाडव कौरव रुदन ठाँमि, बहु सोच करत जग सुन्य मानि ।
दुख माहि एम बीती सुरात, रवि आइ बहुरि कीन्यौं प्रभात ।।२८३।।
इहि भांति जीव संसार माँहि, नित काल भ्रमत थिर होत नाहि ।
लछिमी सुचपल चपला समान, संध्या प्रभासम आयु जान ।।२८४।।
सुत बधु सुखादिक छिनक भंग, इम जानि रहौ नित धर्म सग ।
बर बुद्धि गतसुत ब्रह्मचार, सुखरिद्धि धार सुर सदन सार ।।२८५।।
फुनि पछ छीन कौरव कुराइ, बल हीन दीन ह्वै रुदन भाइ ।
अरु धर्म तनुज जयवत सत, जग माहि प्रगट जस नीतिवत ।।२८६।।
कृत पूर्व धर्म सुभ सर्म दाइ, बिन धर्म परम दुख भरम पाइ ।
जिन धर्म समान न और रत्न, जैनी सदीव सुनि धरत जत्न ।।२८७।।

इति श्रीमन्महाशीलाभरणभूषित जैनी नामांकिताया भारतभाषायां बुलाकीदास विरचितायां गागेय सन्यास ग्रहण पचत्व प्राप्ति पंचम स्वर्ग गमन वर्णनो नाम विंशतिम प्रभवः ।

× × × × × × ×

पुराण का अन्तिम भाग

अथ नेमिनाथ स्तुति

सवैया

धरम के धुरधर सुनेमि नेमि नेमीसुर, दोष द्रुम दाहन कौं दावानल रूप है ।
काम बेलि मंडप कौ कदन कुदाल दंड, मडित अखण्ड सील पडित अनूप है ।।
मोष मग मडन हौ रोष के विहंडन हौ, वैन अवलबन दे तारक भौं कूप हौ ।
कीजे उपगार भवसागर कौ पार अब, दीजे सुविचार प्रभू चारित के भूप हौ ।।८०।।

पद्धडी छंद

ग्रन्थ प्रशस्ति

कहाँ पांडव चरित विसाल चारु, श्री गौतमादिक भाषित सुसारु ।
कहाँ मो प्रबोध यह अलप छीन, बलहीन तदपि बरनन सुकीन ।।८१।।

जिम बाल ग्रहण उडगन करोति, जलसिंधु प्रमानत भेक पोति ।
तिम ग्रंथ कर्‌यौ निज बुद्धि जोग, नहिं दोष ग्रहत बर दक्ष लोग ।।८२।।
जे नर असत पर दोष संच, तिन संग न हमकौं काज रंच ।
विष मय पियूष ते नरक राहि, लहि पाप महा मरि नरक जांहि ।।८३।।
जे साधु महा पर कज्ज रक्ष, पर जद्यपि देषहि दोष सच्छ ।
नहिं धारहिं तदपि विकारि भाव, ते होउ महाजस हम सहाउ ।।८४।।
जिम चद सरद उडवस बीच, अति सोभ करत दै निज मरीच ।
पर गुन समूह तिम सत देषि, निरदोष करत उपमां विसेषि ।।८५।।
राचि कै विचित्र पावन पुरान, नहिं बछौं नर सुर सुष निधान ।
इम भक्ति तनौं फल होहु एहु, पद मुक्ति परम सुब रास देहु ।।८६।।
पुनरुक्ति जुक्त लच्छन सुछद, जहां भूल्यौ वरनत वर्ण बिंदु ।
तहां सोधि पढौ जे बुध आनंद, नहि निंद करत ते सुगुन वृंद ।।८६।।
अलकार गनागन छद भेद, नहिं जानौं रंचक अलप वेद ।
कछु भूलि देषि इस गंथ मद्धि, मति कोप करौ कवि विपुल बुद्धि ।।८८।।

अथ मूल आचार्य

सवैया

मगन ले मूलसगी पद्मनदि नाम भए ताके, पट्ट मकलादिकीरत बषानिये ।
कीरति भुवन तातै ताकै भए चदसूरि, कीरति विजय सुतास पट्ट परवानीये ।।
ताके पट्ट सुभचद सुजस अनद कद, पाडव पुरान परकास कर मानीये ।
मति कौ उदोत तास पाइ कै बुलाकीदास, भारतविलास रास भाषा करि जानिये ।।८९।।

अथ बादशाहि वंस वर्णन

सवैया

बस मुगलानें माहि दिल्ली पति पातिसाहि, तिमिरलिंग मीर सुत बाबर सुभयो है ।
ताकौ है हिमाऊ सुन ताही तै अकब्बर है, जहांगीर ताकै धीर साहिजहां ठयौ है ।।
ताजमहल अगना अगज उतग महाबली, अवरंग साहि साहित ले जयौ है ।
ताकी छत्र छाह पाइ सुमति के उदै आइ भारत राइ भाषा जैनी जस लयो है ।।९०।।

अथ ग्रंथकार आशीर्वाद

सवैया

जौलौं रहैं तारागन सवन सुरईस की सागर, सुभूमि रहै रहै द्युति भान की ।
भूमिवासी भौनवासी गिरि गिरि ईस वासी, बसै सिर जोति जौलो ससि के विमान की ।।
गंगा आदि नदीनद कर्म भूमि कल्पतरु है, आव जौंलौ जग वीतराग ग्यान की ।
भारत सुखेत माहिं नौंनौं सुविकास लहौ, भारत विलास भाषा पाडव पुरान की ।।६१।।

अथ ग्रन्थ पाठक आशीर्वाद

जे नर भव्य भनाइ भनै भनि भावन सौ यह भारत भाषा ।
आदर धारि लिखाइ लिखै लिखि देहि सुनाइ सुनै सुनि भाषा ।।
सोधि सुधारि सुधारिहिं सत्य सुधारस के बुध चाषा ।
ते नरिंद महापद पावहु ह्वैं है तिनकी सिव के अभिलाषा ।।६२।।

अथ सरस्वती स्तुति ।।दोहा।।

जिन बदनी सदनी सुमति, अवसरनी शिव सीउ ।
जस जननी जैनी भनी, हरनी कुमति सदीउ ।।६३।।

सवैया

वीरानन सरनी हरनी दुष दोषन की भरनी रस अनुभौं दैनी शिव मानी है ।
गोतम गुरु वरनी रमनी है चेतन की कुमति की करनी पैंनी परवानी है ।।
दुरित तैं उधरनी धरनीधर धर्म की तरनी भौसागर की छैनी मैं ह्यानी है ।
सुमति सूर किरनी रजनी रजनीकर बदनी हमारी जग जैनी सुषदानी है ।।६४।।

दोहा

इहि विधि भाषा भारती, सुनी जिनुल दे माइ ।
धन्य धन्य सुत सौं कही, धर्म सनेह बडाई ।।६५।।
जननि जिनुल दे धन्य है, जिन रचाइ सु पुरान ।
सुगम कर्यौ भाषा मई, समझैं सकल सुजान ।।६६।।

अरु नर तन गुरु धन्य है, जाके वचन प्रभाव।
सस्कृत तै भाषा रच्यौ, पाइ सबद अरथाव ॥९७॥
वीरनाथ जिन धन्य हैं, जाके चरन प्रसाद।
यह पुरान पूरन भयौं, सुषदाइक शिव आदि ॥९८॥

अथ ग्रथ छंद प्रमाण कथन ॥सवैया।

छप्पै एक करखे अठारै इकतीसे बीस चालीसरु एक सोरठे पर मानिये।
छयालीस तेईसो पाद्धडी पचीसी गनिब्वैही भुजग छद जैनी जग जानिये ॥
तीनसै तिरासीडिल्ल नौसैतीस दोहा भनि ढाईसै सतानवै सु चौपाई बषानिये।
सारे इक ठौर करि ठानिये बुलाकीदास एकादश पचसै हजार चार आनिये ॥९९॥

अथ श्लोक संख्या कथन—दोहा

सख्या श्लाक अनुष्टपी, गनिये ग्रन्थ लषाइ।
सप्त सहश्र षट सतक फुनि, पचपन अधिक मिलाइ ॥१००॥

अथ संवत मितो—दोहा

सवत सतरहसौ चउन, सुदि असाढ तिथि दोज।
पुष्प रिक्ष गुरुवार कौ, कीन्यौ भारत चोज ॥१०१॥

इति श्रीमन्महाशीलाभरणभूषित जैनी नामाकिताया भारत भाषाया लाला बुलाकीदास विरचिताया पाडवोपसर्गसहन त्रयकेवलोत्पत्ति सिद्धिगमन द्वय सर्वार्थ सिद्धि प्राप्ति वर्णनोनाममद्धि षट्विशतितम प्रभाव ॥२६॥

इति श्री बुलाकीदास कृत भाषा पाडवपुराण महाभारत नाम सम्पूर्णम् ॥

मिती श्रावणमासे कृष्णपक्षे तिथौ १४ वार दीतवार सम्वत् १९०५ का दसकत नाथुलाल पाडया का। लिषो गयो बडे मदिर वास्तै ॥

卐

हेमराज

कविवर हेमराज इस पुष्प के तीसरे कवि हैं जिनका यहाँ परिचय दिया जा रहा है। समय की दृष्टि से हेमराज बुलाखीचन्द एवं बुलाकीदास दोनों ही कवियों से पूर्व कालिक हैं। मिश्रबन्धु विनोद ने इनका समय संवत् १६६० से प्रारम्भ किया है लेकिन उसका कोई आधार नहीं दिया। इन्होंने हेमराज एवं पाण्डे हेमराज के नाम से दो कवियों का अलग २ उल्लेख किया है। हेमराज की रचनाओं के नामों मे नयचक्र, भक्तामर भाषा एवं पंचास्तिका वचनिका के नाम दिये हैं तथा पाण्डे हेमराज के ग्रन्थों में प्रवचनसार टीका, पंचास्तिकाय टीका, भक्तामर भाषा, गोम्मटसार भाषा, नयचक्र वचनिका एवं सितपट चौरासी बोल, ग्रन्थों के नाम दिये हैं। इन ग्रन्थों का विवरण देते हुये लिखा है कि ये रूपचन्द्र के शिष्य थे तथा गद्य हिन्दी के अच्छे लेखक थे। नयचन्द्र भाषा एवं भक्तामर भाषा के नाम दोनों में समान है।

डा० कामताप्रसाद जी ने अपने "हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास" में हेमराज की प्रवचनसार टीका, पञ्चास्तिकाय टीका एवं भक्तामर भाषा इन तीन कृतियों का ही उल्लेख किया है।[3] इसी पुस्तक के आगे हेमराज के नाम से ही गोम्मटसार एवं नयचक्र वचनिका का नामोल्लेख किया है। डा० नेमीचन्द्र शास्त्री ने हेम कवि की केवल एक कृति छन्दमालिका (सं० १७०६) का ही उल्लेख किया है।[4] डा० प्रेमसागर जैन ने हेमराज[5] का रचना समय विक्रम संवत् १७०३ से १७३०

---

१. मिश्रबन्धु विनोद — पृष्ठ संख्या २५२ (४३५)
२. वही ,, २७६ (५१३/१)
३. हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास – पृष्ठ सं. १३१
४. हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन – पृष्ठ सं. २३८
५. हिन्दी भक्ति काव्य और जैन कवि – पृष्ठ सं. २१४-१५

तक का दिया है। इसके साथ ही प्रवचनसार भाषा टीका, परमात्मप्रकाश, गोम्मट-सार कर्मकांड, पचास्तिकाय भाषा, नयचक्र भाषा टीका, प्रवचनसार (पद्य) सितपट चौरासी बोल, भक्तामर भाषा, हितोपदेशबावनी, उपदेश दोहा शतक एवं गुरु पूजा का उल्लेख किया है।

राजस्थान के जैन ग्रन्थ भण्डारों में, पाण्डे हेमराज, हेमराज साह, हेमराज एव मुनि हेमराज के नाम से अब तक २० से भी अधिक कृतियो की पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हुई हैं। लेकिन नाम साम्य की दृष्टि से सभी कृतियों को आगरा निवासी पाण्डे हेमराज की कृतियाँ मान ली गयी। इस दृष्टि से प. परमानन्द जी शास्त्री ने अनेकान्त देहली मे प्रकाशित अपने एक लेख "हेमराज नाम के दो विद्वान्" मे इस भूल की ओर विद्वानो का ध्यान आकृष्ट किया क्योकि इसके पूर्व प नाथूरामजी प्रेमी, डा. कामताप्रसाद जी आदि सभी विद्वान् एक ही हेमराज कवि मानने लगे थे।

अभी जब मैंने अकादमी के छट्ठे भाग के लिये हेमराज की कृतियों का संकलन किया तथा पंडित परमानन्द जी एवं अन्य विद्वानों द्वारा लिखित सामग्री का अध्ययन किया तो मुझे भी अपनी भूल मालूम हुई क्योंकि राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रथ सूचियो मे सभी रचनाओ को एक ही हेमराज के नाम से अंकित कर दिया गया। वास्तव में एक ही युग में हेमराज नाम के एक से अधिक विद्वान् हुये और उन सभी ने साहित्य निर्माण मे अपना योग दिया। १७वीं एवं १८वी शताब्दि मे हिन्दी जैन कवियो के लिये आगरा एक महत्वपूर्ण केन्द्र रहा जहाँ पचासों जैन कवियो ने हिन्दी में सैकड़ो रचनाओं को निबद्ध करने का गौरव प्राप्त किया।

हेमराज नाम वाले चार कवि

हमारी खोज एव शोध के अनुसार हेमराज नाम के चार कवि हो गये हैं जिन्होने हेमराज नाम से ही काव्य रचना की थी। इन चारो हेमराजो के नाम निम्न प्रकार है—

१ मुनि हेमराज
२. पाण्डे हेमराज
३. साह हेमराज
४ हेमराज गोदीका

इन कवियों का सामान्य परिचय निम्न प्रकार है—

१ मुनि हेमराज

राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों मे "हितोपदेश बावनी" की एक पाण्डुलिपि उपलब्ध होती है। जिसके रचियता कवि हेमराज है और जिन्होंने अपने नाम के पूर्व मुनि शब्द लिखा है। ये हेमराज कौन थे मुनि थे इसके सम्बन्ध मे बावनी मे कोई सामग्री नही मिलती। लेकिन ये मुनि हेमराज बनारसीदास के अग्रज थे क्योकि इन्होने बावनी की रचना संवत् १६६५ में समाप्त की थी। जिसका उल्लेख उन्होने बावनी के अन्तिम पद्य मे किया है—

हरष भयो सुख आज काज सार्‌या मन वांछित।
मुनि साहिब मिल सधाम नाम सहु जग मैं छति।
तस सीस पभणी एह बावन्नी सुखदाई।
एह पुहवीय रस षट् पच एह संवत मइ गाइय।
प्रगट्‌यो गुन ए जां लगै ध्रु ब मेर धरणी धरण।
मुनि हेमराज इम उच्चरै सुप्रणत सुनत मंगल करण ॥५५॥

बावनी मे ५२ के स्थान पर ५५ छन्द हैं। जो अन्तिम दो पद्यो के अतिरिक्त सभी सवैया छन्दो मे निबद्ध है बावनी का हितोपदेश बावनी के अतिरिक्त अक्षर बावनी नाम भी दिया हुआ है क्योकि स्वर और व्यञ्जन के आधार इसके सवैय्ये लिखे गये हैं। बावनी के प्रथम दो पद्यो मे कवि ने मगलाचरण एव अपनी लघुता प्रगट की है—

ऊँकार रहित कार सार संसारह जाण्यो।
ऊँकार विस्तार सार मग्रहि मान्यो।
ऊँकार वरवान ज्ञान पसि गुरु पंइ सिख्यो।
सह गुरु तसै प्रसाद आदि ए अक्षर लिख्यो।
मन मतिबोधस आपणूं करि ससधिया बावन्न।
भविक जन सुभे सांभले, ध्यानि धरी एक मन्न ॥१॥

नवि जांणुं व्याकर्ण तर्क संगीत रसाला।
भरह पींगल गुण गीत नवि जाणु नाममाला।

छंद कोस निरघंट प्रतिहिंचें भेव न जाणूं ।
अल्प बुधि गुरु ज्ञान, जाण कहो केम बखाणू ।
शिव देवी पय लगीहुं, देज्यो बुद्धि प्रकास ।
रसिक पुरुष मन रंजना, करि सखिया उल्लास ।।२।।

इसके आगे तीन सवैय्या छन्द बिना अकारादिक क्रम के हैं तथा पांचवे पद्य से स्वर और व्यञ्जन के क्रम से हैं। पूरी बावनी उपदेश परक है तथा पौराणिक उदाहरणों के द्वारा अपनी बात प्रस्तुत की गयी है। एक पद्य देखिये—

आदि को कारणहार प्रभु राखि आदि रे ।
भूलो रे गमार तुंही नर भव खोयो युंही ।
प्रभु बिणा वीयें कुण कहे धुं तोरि दादि रे ।
काम कुं आतुर भयो पापसुं जमा सरो ।
गयो पडली निगोद माहिं धुं वन फरादि रे ।
सोधि कछु जीव माहें जीत कें हारि जाइं ।
एक बिना भगवंत सर्व काम बादि रे ।।

हेमराजि भणइं मुनि सुणो सजन जन मेरो उमय्यों है जिन गुण गायबो ।।७।।

हितोपदेश बावनी की एक पाडुलिपि जयपुर के दि० जैन मन्दिर बड़ा तेरहपंथियों के शास्त्र भण्डार में सग्रहीत है। कृति की लेखक प्रशस्ति निम्न प्रकार है—

इति हितोपदेश बावन्नी हेमराजि कृत संपूर्णम्। सखिया संपूर्णम्। संवत् १७५७ वर्षे मिती वैशाख सुदि ११ दिने गुरुवासरे लेखयोस्तु ।

उक्त पाडुलिपि पं० विनोदकुमार द्वारा रूपनगर में बहुजी श्री यशरूपदे जी बाचनार्थ लिखी गयी थी। प्रति में १२ पत्र हैं तथा दशा सामान्य है।

पाण्डे हेमराज

पाण्डे हेमराज इस पुष्प के तीसरे कवि हैं जिनका यहाँ परिचय दिया जा रहा है। ये १७वीं शताब्दि के अपने समय के प्रसिद्ध कवि एवं पंडित थे। साहित्य सेवा ही इनके जीवन का प्रमुख धर्म था। ये दृढ़ श्रद्धानी श्रावक थे इसलिये अपनी

पुत्री जैनी को भी इन्होंने धर्म अच्छी शिक्षा दी थी। बुलाकीदास कवि इन्हीं जैनी/जैनुलदे के सुयोग्य पुत्र थे जिनके प्रश्नोत्तर श्रावकाचार एवं पाण्डवपुराण का परिचय दिया जा चुका है।

हेमराज आगरा के निवासी थे। ये दिगम्बर जैन अग्रवाल थे। गर्ग इनका गोत्र था। इनका परिवार ही पंडित एवं साहित्योपासक था। आगरा उस समय बनारसीदास, रूपचन्द, कौरपाल जैसे विद्वानों का नगर था। नगर में चारों ओर शास्त्र चर्चा, अध्यात्म ग्रंथो का वाचन, साहित्य निर्माण एवं संगोष्ठियां आदि होती रहती थी। हेमराज पर भी इन सबका प्रभाव पड़ा होगा और उन्हें साहित्य निर्माण की ओर आकृष्ट किया होगा।

जन्म एवं परिवार

हेमराज का जन्म कब हुआ, उनके माता पिता, शिक्षा दीक्षा, विवाह आदि के बारे में उनकी कृतियां सर्वथा मौन है। लेकिन यह अवश्य है कि हेमराज ने अच्छी शिक्षा प्राप्त की होगी। प्राकृत, संस्कृत एवं राजस्थानी तीनों ही भाषाओं पर उनका पूर्ण अधिकार था। वे गद्य एवं पद्य दोनों में ही गतिशील थे। अच्छे कवि थे। शास्त्रज्ञ भी थे इसलिये समयसार, प्रवचनसार, पञ्चास्तिकाय जैसे ग्रन्थों का अच्छा अध्ययन भी किया होगा और इनकी विद्वत्ता को देखकर ही कौरपाल जैसे पंडित एवं तत्त्वज्ञ ने इनसे प्रवचनसार को हिन्दी गद्य पद्य दोनों में भाषा करने का अनुरोध किया था।

कवि का सं. १७०१ में प्रथम उल्लेख पं० हीरानन्द द्वारा किया गया मिलता है। इसलिये उस समय इनकी ४०-४५ वर्ष की आयु होनी चाहिये और इस प्रकार इनका जन्म भी संवत् १६५५ के आस पास होना चाहिये। संवत् १७०९ में इन्होंने अपनी प्रथम कृति प्रवचनसार भाषा की रचना की थी उस समय तक कवि की ख्याति विद्वत्ता एवं काव्य निर्माता के रूप में चारों ओर प्रशंसा फैल चुकी थी।

हेमराज और बनारसीदास

पाण्डे हेमराज का तत्कालीन विद्वान् महाकवि बनारसीदास से कभी सम्पर्क हुआ था या नहीं इसके बारे में न तो बनारसीदास ने अपनी किसी रचना में हेमराज का उल्लेख किया है और न स्वयं हेमराज ने अपनी कृतियों में बनारसीदास का स्मरण किया है। हां बनारसीदास के एक मित्र कौरपाल का अवश्य उल्लेख हुआ

है और उन्हें 'ज्ञाता' विशेषण से सम्बोधित किया है। अपने सितपट चौरासी बोल में कवि ने कौरपाल का निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

नगर आगरे में बसे कौरपाल सग्यान।
तिस निमित्त कवि हेम नै, कीयो कवित्त बखान ।।

हेमराज और कौरपाल

प्रवचनसार की भाषा तो हेमराज ने कौरपाल की प्रेरणा एवं आग्रह से ही लिखी थी।[1] लगता है कौरपाल परोपकारी व्यक्ति थे तथा जैन शास्त्रों के अधिकारी विद्वान् थे। वे आध्यात्मी व्यक्ति थे तथा आगरा की आध्यात्मिक सैली के प्रमुख सदस्य थे। लेकिन हेमराज द्वारा बनारसीदास की उपेक्षा करना आश्चर्य सा अवश्य लगता है क्योकि स्वय हेमराज भी आचार्य कुन्दकुन्द के भक्त थे इसलिये उनके ग्रथो का भाषानुवाद उन्होने किया था। लगता है हेमराज का बनासीदास से मतैक्य नही था तथा विचारो मे भिन्नता थी। हेमराज को पाण्डे हेमराज भी लिखा हुआ मिलता है। सभवतः वे मध्यस्थ विचारो के थे। कुछ भी हो दोनो कवियो मे से किसी के द्वारा एक दूसरे का उल्लेख नही होना कुछ अटपटा सा लगता है।

हीरानन्द और हेमराज

सवत् १७०१ मे रचित "समवसरण विधान" मे हीरानन्द कवि ने हेमराज

---

१ हेमराज पडित बसै, तिसी आगरे ठाइ।
गरग गोत गुन आगरो, सब पूजै तिस ठाइ।
उपजी ताके देहजा, जैनी नाम विख्यात।
शील रूप गुण आगरी, प्रीति नीति पांति।

२ बालबोध यह कीनी जैसे, सो तुम सुणहु कहूं मैं तैसे।
नगर आगरे में हितकारी, कौरपाल ज्ञाता अधिकारी।
तिनि विचारि जिय मैं यह कीनी, जो यह भाषा होइ नवीनी ।।४।।
अलप बुद्धि भी अरथ बखानै, अगम अगोचर पद पहिचानै।
यह विचारि मन मैं तिसि राखी, पाण्डे हेमराज सौ भाखी ।।५।।

को पंडित एवं प्रवीण इन दो विशेषणों के साथ वर्णन किया है। इससे प्रकट होता है कि हेमराज संवत् १७०१ मे ही समाज में अच्छा सम्मान प्राप्त कर लिया था तथा उनकी गिनती पंडितो में की जाने लगी थी।

लेकिन हेमराज कब से पाण्डे कहलाने लगे इसका कोई उल्लेख नही मिलता। मुझे ऐसा लगता है कि ये पंडित कहलाते थे और धीरे धीरे पाण्डे कहलाने लगे। और पाण्डे राजमल के समान इन्हे भी प्रवचनसार, पञ्चास्तिकाय जैसे ग्रन्थो की भाषा टीका करने के कारण इन्हे भी पाण्डे कहा जाने लगा। पाण्डे हेमराज की अब तक निम्न रचनायें उपलब्ध हो चुकी हैं—

१ प्रवचनसार भाषा (गद्य)	रचनाकाल सं० १७०९
२ प्रवचनसार भाषा (पद्य)	,,
३ भक्तामर स्तोत्र भाषा (गद्य)	,,
४ भक्तामर स्तोत्र भाषा (पद्य)	....
५ चौरासी बोल (सितपट चौरासी बोल)	संवत् १७०९
६ परमात्मप्रकाश भाषा	—
७ पञ्चास्तिकाय भाषा	—
८ कर्मकाण्ड भाषा	—
९ सुगन्ध दशमी व्रत कथा	—
१० नयचक्र भाषा	संवत् १७२६
११ गुरुपूजा	—
१२ नेमिराजमती जखडी	—
१३ रोहिणी व्रत कथा	—
१४ नन्दीश्वर व्रत कथा	—
१५ राजमती चुनरी	—
१६ समयसार भाषा	—

उक्त कृतियों के अतिरिक्त कुछ पद भी राजस्थान के शास्त्र भण्डारो में संग्रहीत विभिन्न गुटको में उपलब्ध होते है। उक्त कृतियों का सामान्य परिचय निम्न प्रकार है—

१ प्रवचनसार भाषा (गद्य)

कविवर बुलाकीदास ने अपने पांडवपुराण में हेमराज का परिचय देते समय जिन दो ग्रन्थो की भाषा लिखने का उल्लेख किया है उनमें प्रवचनसार भाषा का नाम सर्व प्रथम लिखा है ।[1] जिससे ज्ञात होता है कि इस समय हेमराज का प्रवचनसार भाषा अत्यधिक लोकप्रिय कृति मानी जाने लगी थी । महाकवि बनारसीदास द्वारा समयसार नाटक लिखने के पश्चात् आचार्य कुन्दकुन्द की प्राकृत रचनाओं पर जिस वेग से हिन्दी टीका लिखी जाने लगी थी प्रस्तुत प्रवचनसार भाषा भी उसी का एक सुपरिणाम है ।

हेमराज ने प्रवचनसार भाषा आगरा के तत्कालीन विद्वान कौरपाल के आग्रहवश की थी । कौरपाल महाकवि बनारसीदास के मित्र थे तथा उनके साथ कौरपाल ने कुछ ग्रंथो की रचना भी की थी । बनारसीदास ने जिन पांच आध्यात्मिक विद्वानो का उल्लेख किया था उनमे कौरपाल भी थे ।[2] उन्होने हेमराज से कहा कि पाडे राजमल्ल ने जिस प्रकार समयसार की भाषा टीका की थी उसी प्रकार यदि प्रवचनसार की भाषा भी तैयार हो जावे तो जिनधर्म की और भी वृद्धि हो सकेगी तथा ऐसे शुभ कार्य में किञ्चित भी बिलम्ब नही किया जाना चाहिये । हेमराज ने उक्त घटना का निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

> बालबोध यह कीनो जैसे, सो तुम सुनहु कहू मैं तैसे ।
> नगर आगरे में हितकारी, कौरपाल ज्ञाता अविकारी ।।४।।
> तिन विचार जिय में यह कीनी, जैं भाषा यह होइ नवीनी ।
> अलपबुद्धि भी अर्थ बखानें, अगम अगोचर पद पहिचानें ।।५।।

---

१ जिन आगम अनुशार तें, भाषा प्रवचनसार ।
पंच अस्ति काया अपर, कीनें सुगम विचार ।।३५।।
पांडवपुराण/प्रथम प्रभाव

२ रूपचन्द पंडित प्रथम, दुतीय चतुर्भुज जान ।
तृतीय भगोतीदास नर, कौरपाल गुणधाम ।।
धरमदास ए पंचजन, मिलि बैठहि इक ठौर ।
परमारथ चर्चा करैं, इन्हो के कथन न और । नाटक समयसार

यह विचार मन मैं तिन राखी, पांडे हेमराज सौं भाखी।
आगै राजमल्ल नै कीनी, समयसार भाषा रस लीनी ।।६।।
अब जो प्रवचन की ह्वै भाषा, तौ जिनधर्म बधै सो साखा।
तातै करहु विलंब न कीजै, परभावना अंग फल लीजै ।।७।।

कौरपाल ने अपनी भावना व्यक्त की और उसके फल प्राप्त करने का कवि को प्रलोभन दिया।

हेमराज सवेदनशील विद्वान थे। वे कवि एव गद्य लेखक दोनों ही थे। गद्य पद्य दोनो मे ही उनकी समान गति थी। इसलिये उन्होने भी तत्काल प्रवचनसार की गद्य टीका लिखना प्रारम्भ कर दिया।

जिन सुबोध अनुसार, अैसे हित उपदेस सौं।
रची भाष अविकार, जयवंती प्रगटहु सदा ।।६।।
हेमराज हित आनि, भविक जीव के हित भणी।
जिनवर आनि प्रवानि, भाषा प्रवचन की कही ।।१०।।

कवि ने प्रवचनसार की जब रचना की थी उस समय शाहजहाँ बादशाह का शासन था। जिसका उल्लेख कवि ने निम्न प्रकार किया है—

अवनिपति वदहि चरण, सुनय कमल विहसत।
साहजिहां दिनकर उदै, अरिगन तिमिर न संत ।।

प्रवचनसार की गद्य टीका कवि ने कब प्रारम्भ की इसका तो कोई उल्लेख नही मिलता लेकिन वह सवत् १७०९ मे समाप्त हुई ऐसा उल्लेख अवश्य मिलता है—

सत्रहसै नव ऊतरे, माघ मास सित पाख।
पचमि आदितवार को, पूरन कीनी भाष ।।१६।।

प्रवचनसार मूल आचार्य कुन्दकुन्द की प्रमुख कृति है। इस पर आचार्य अमृतचन्द ने सस्कृत मे तत्त्व प्रकाशिनी टीका लिखी थी। यह एक सैद्धान्तिक ग्रन्थ है जिसमे तीन अधिकार है। जिनमे ज्ञान, ज्ञेयरूप तत्वज्ञान के कथन के साथ जैन

साधु आचार का बडा ही रोचक एव प्रभावक कथन किया गया है। ग्रन्थ की भाषा प्राचीन प्राकृत है जो परिमार्जित है। यही नही इसकी भाषा उनके अन्य सभी ग्रन्थो से प्रौढ है तथा गम्भीर अर्थ की द्योतक है। इसका दूसरा अधिकार ज्ञेयाधिकार नाम से है जिसमे ज्ञ य तत्त्वो का सुन्दर विवेचन किया गया है। प्रवचनसार का तीसरा अधिकार चारित्राधिकार है। प्रवचनसार पर जयसेन की सस्कृत टीका भी अच्छी टीका मानी जाती है। प्रवचनसार की गद्य टीका तत्कालीन हिन्दी गद्य का अच्छा उदाहरण है।

पाडे हेमराज ने प्राकृत गाथाओ का पहिले अन्वयार्थ लिखा है और फिर उसीका भावार्थ लिखा है। भावार्थ बहुत अच्छा गद्य भाग बन गया है। इसका एक उदाहरण निम्न प्रकार है—

जो मोक्षाभिलाषी मुनि है ताको यो चाहिए कै तौ गुणनि करि आप समान होइ कै अधिक होइ अैसे दोइ की सगति करै और की न करै। जैसे सीतल घर के कान मै सीतल जल जल राखे तै सीतल गुण की रक्षा ही है तैसै अपने गुण समान की सगति स्यो गुण की रक्षा हो है। औस जैसे अति सीतल बरफ मिश्री कपूरादि की सगति स्यो अति सीतल हो है तैसै गुणाधिक पुरुष की सगति स्यो गुण वृद्धि हो है तातै सत्सग जोग्य है। मुनि को यो चाहिए प्रथम दशा विषै यह कही जु पूर्व ही शुभोपयोग तै उत्पन्न प्रवृति ताको अगीकार करै पाछै क्रमस्यो सयम की उत्कृष्टता करि परम दशा को धरै पाछै समस्त वस्तु की प्रकाशन हारी केवल ज्ञानानद मयी शास्वती अवस्था को सवथा प्रकार पाइ अपने अनीद्रिय सुख को अनुभव हु यह शुभोपयोगाधिकार पूर्ण हुवा। पृष्ठ सख्या २२८

प्रवचनसार की पचासो पाण्डुलिपियाँ राजस्थान के विभिन्न ग्रन्थागारो मे सुरक्षित है। सवत् १७२८ मे लिपिबद्ध एक पाण्डुलिपि हमारे सग्रह मे उपलब्ध है।

२ प्रवचनसार भाषा (पद्य)

प्रवचनसार की हिन्दी गद्य टीका का ही अभी तक विद्वानो ने अपने २ ग्रन्थो एव शोध निबन्धो म उल्लेख किया है लेकिन इनकी प्रवचनसार पर पद्य टीका का कही उल्लेख नही मिलता। प० परमानन्द जी शास्त्री जैसे हिन्दी के विद्वान् ने भी हेमराज की गद्य वाली टीका का ही नामोल्लेख किया है। लेकिन सौभाग्य से मुझे

इसकी एक पद्य टीका वाली पाण्डुलिपि उपलब्ध हुई है जिसका परिचय निम्न प्रकार है—

हेमराज ने प्रवचनसार का पद्यानुवाद भी इसी दिन समाप्त किया जिस दिन उसकी गद्य टीका पूर्ण की थी जिससे ज्ञात होता है कि उसने प्रवचनसार पर गद्य पद्य टीका एक ही साथ की थी। लेकिन जब उसकी गद्य टीका को पचासो पाण्डुलिपियां उपलब्ध होती है तब प्रवचनसार पद्य टीका की अभी तक पाण्डुलिपि उपलब्ध न होवे यह बात समझना कठिन लगता है। इसका उत्तर एक यह भी दिया जा सकता है कि खण्डेलवाल जातीय दूसरे हेमराज ने भी पद्यानुवाद लिखा है इसलिये आगरा निवासी हेमराज के पद्यानुवाद को कम लोकप्रियता प्राप्त हो सकी।

पद्य टीका में ४३८ पद्य हैं जिसमे अन्तिम ११ पद्य तो वे ही हैं जो कवि ने प्रवचनसार गद्य टीका के अन्त में लिखे हैं। प्रस्तुत कृति का प्रारम्भिक अंश निम्न प्रकार है—

छप्पय— स्वयं सिद्ध करतार करै निज करम सरम निधि,
आपं करण स्वरूप होय साधन साधै विधि।
संमदछना धरैं आपको आप समप्पैं।
अपाराव आपतैं आपकों कर थिर थप्पैं।
अधकरण होय आधारनिज बरतै पूरण ब्रह्म पर।
षट निधि द्वारिकामय विधि रहित विविध येक अजर अमर ।।१।।

दोहा— महातत्व महनीय यह, महाधाम गुणधाम।
चिदानंद परमातमा, बंदू रमता राम ।।२।।
कुनय दमन सुवरनि अवनि, रमिनि स्यात पद शुद्ध।
जिनवानी मानी मुनिय, घट मैं करोहू सुबुद्धि ।।३।।

चौपई— पंच इष्ट के पद वंदौ, सत्यरूप गुर गुण अभिनंदौं।
प्रवचन ग्रंथ की टीका, बालबोध भाषा सयनीका ।।४।।

प्रवचनसार के तीन अधिकारों मे से प्रथम अधिकार मे २३२ पद्य, तथा शेष २०६ पद्यो मे दूसरा एव तीसरा अधिकार है।

भाषा अत्यधिक सरल, सुबोध एव मधुर है। प्रवचनसार के गूढ विषय को कवि ने बहुत ही सरल शब्दों में समझाया है। कोई भी पाठक उसे हृदयगम कर सकता है।

प्रवचनसार पद्य टीका की एक पाण्डुलिपि जयपुर के बधीचन्द जी के शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत है। इसमे ३४ पद्य है तथा अन्तिम पुस्तिका इस प्रकार है—

इति श्री प्रवचनसार भाषा पाडे हेमराज कृत सपूर्ण। लिखतं दलसुख लुहाडिया लिखी सवाई जयपुर मध्ये लिखी।

३ **भक्तामर स्तोत्र भाषा (पद्य)**

भक्तामर स्तोत्र सर्वाधिक लोकप्रिय जैन स्तोत्र है। मूल स्तोत्र आचार्य मानतु ग द्वारा विरचित है जिसमे ४८ पद्य है। समाज का अधिकांश भाग इसका प्रतिदिन पाठ करता हैं। हजारो महिलाए जब तक इसको नही सुन लेती, भोजन तक नही करती। भक्तामर स्तोत्र पर अब तक ७० से भी अधिक विद्वानो ने पद्यानुवाद किया है।[1] लेकिन "तीर्थंकर" मे प्रकाशित इस लेख मे भक्तामर पर उपलब्ध हिन्दी गद्य टीकाकारो का कोई उल्लेख नही किया।

भक्तामर स्तोत्र पर हिन्दी पद्यानुवाद पाडे हेमराज का मिलता है जो समाज मे सर्वाधिक लोकप्रिय है। दि० जैन मन्दिर कामा के शास्त्र भण्डार मे स्वयं हेमराज पाड्या की पाण्डुलिपि संग्रहीत है जिसका लेखन-काल स० १७२७ है। इस पाण्डुलिपि मे २६ पत्र हैं। पाडे हेमराज ने पद्यानुवाद जितना सुन्दर एवं सरल किया है उतना अन्य कवियो के पद्यानुवाद नही है। एक पद्य का अनुवाद देखिये—

मो मौं शक्तिहीन थुति करूं
भक्ति भाववश कछु नहीं डरूं
ज्यो मृगि निज-सुत पालन हेतु
मृगपति सन्मुख जाय अचेत ॥५॥

अन्तिम पद्य मे कवि ने अपने नाम का निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

भाषा भक्तामर कियो, हेमराज हित हेत।
जो नर पढै सुभावसों, तें पावै शिवखेत ॥४२॥

---

१ देखिये "तीर्थंकर" में प्रकाशित-पं. कमलकुमारजी शास्त्री का लेख-पृ. १६७-७०
२ राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूची भाग—पंचम-पृ० ७४७.

कवि ने अपने इस छोटे से स्तोत्र मे चौपई (१५ मात्रा), नाराच छन्द, दोहा एव षट्पद छन्दो का प्रयोग किया है ।

४ भक्तामर स्तोत्र भाषा (गद्य)

पं० हेमराज ने जहा भक्तामर स्तोत्र का पद्यानुवाद किया वहा गद्य मे टीका लिखकर पाठको के लिये स्तोत्र का अर्थ समझने के लिये उसे और भी सरल बना दिया है। गद्य टीका भाषा सस्कृत के एक एक शब्द के अव्यय के अनुसार की है। भाषा मे ब्रज का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है। एक सस्कृत पद्य का गद्यानुवाद अवलोकनार्थ नीचे दिया जाता है—

किल अहमपि त प्रथम जिनेन्द्र स्तोष्ये किलाह निश्चय करि अहमपि मै भी जु हौ मानतु ग आचार्य सो त प्रथम जिनेन्द्र सो जु है प्रथम जिनेन्द्र श्री आदिनाथ ताहि स्तोष्ये स्तवू गा। कहा करि स्तोत्र करोगो जिनपाद युगे सम्यक् प्रणम्य जिन जु है भगवान तिनि कौ जु पद जुग दोई चरण कमल ताहि सम्यक् भली भाति मन वचन काय करि प्रणम्य नमस्कार करि कै। कैसौ है भगवान कौ चरण द्वय भक्तामर प्रणत मौलि प्रभाणा उद्योतक भक्तिवत जु है अमर देवता तिनि के प्रणीत नम्रीभूत जु है मौलि मुकट तिनि विषै है मणि तिनि की प्रभा तिनिका उद्योतक उद्योत की है। यद्यपि देव मुकटनि का उद्योत कोटि सूर्यवत है तथापि भगवान के चरण नख की दीप्ति आगै वै मुकुट प्रभा रहित हो है तातै भगवान कौ चरण द्वय उनका उद्योतक है। बहुरि कैसो है चरण द्वय दलित पाप तमो वितान दलित दूरि कियो है पाप रूप तम अधकार ताकौ वितान समूह जानै बहुरि कैसो है चरण द्वय प्रगटौ भव भवजले पतता जनाना आलबन। प्रगटौ चतुर्थकाल को आदि विषै भवजले ससार समुद्र जल विषै पतता पडे जु है त क सो आदिनाथ कौन है जाकौ स्तोत्र मैं करौगो। स्तोत्रै. य. सुरलोक नाथै सस्तुतः स्तोत्रै स्तोत्र हु करि यः जो श्री आदिनाथ सुरलोकनाथै सुरलोक देवलोक के नाथ इद्र तिनि करि संस्तुत· स्तूयमान भया कैसे है इंद्र सकल वाङ्मय तिसका जु सत्व स्वरूप तिसका जु बोध ज्ञान तातै उद्भूत उत्पन्न जु है मकर बुद्धि ता करि पटुभि· प्रवीण है वे स्तोत्र कैसा है जिन करि स्तुति करी जगत्रिय उदारै अर्थ की गभीरता करि श्रेष्ट है ।।२।।

४८वें पद्य की टीका के अन्त मे कवि ने अपने आपका निम्न प्रकार परिचय दिया है--

भक्तामर टीका सदा, पढ़ै सुनै जो कोइ ।
हेमराज सिव सुख लहै, तस मन वांछित होइ ।।

५ चौरासी बोल

हेमराज ने प्रस्तुत कृति मे दिगम्बर एव श्वेताम्बर सम्प्रदाय जो मतभेद हैं उनको बहुत ही अच्छे ढग से प्रस्तुत किया है। वे भेद चौरासी हैं जिन्हें चौरासी बोल का नाम दिया गया है। कवि ने इसकी रचना कौरपाल की प्रेरणा से की थी। इसका दूसरा नाम "सित पट चौरासी बोल" भी मिलता है।

नगर आगरे मैं बसै, कौरपाल सग्यान ।
तिस निमित्त कवि हेम ने, कियौ कवित्त बखान ।

कविवर हेमराज ने इसे सवत् १७०६ मे लिखकर समाप्त किया था।

चौरासी बोल एक सुन्दर रचना है जो भाषा एव शैली की दृष्टि से अनूठी कृति है। चौरासी बोल का प्रारम्भ निम्न प्रकार है—

सुनय पोष हत दोष मोक्ष मुख शिव पद दायक
गुन मनि कोष सुघोष रोष हर तोष विधायक ।
एक अनंत स्वरूप संत वंदित अभिनंदित
निज सुभाव परभाव भाव भासेय अमंदित ।
अविदित चरित्र विलसित अमित सर्व मिलित अविलिप्त तन ।
अविचलित कलित निज रस ललित जय जिनवि दलित कलिल घन ।।१।।

सवैया इकतीसा— नाथ हिम भूधर तैं निकसि गनेश चित्त भूपरि बिथारी शिव सागर लौं धाई है ।
परमत वाद मरजाद कूल उनमूलि अनकूल मारिग सुभाय ढरि आई है ।
बुद्ध हंस सेय पायमल को विध्वंस करै सरवंश सुमति बिकासि वरदाई है ।
सपत अभंग भंग उठह तरंग जामैं असी वांनो गंग सरवंग अंग गाई है ।।२।।

दोहा— श्वेताम्बर मत की सुनी, जिनतें हैं मरजाद ।
मिलहि दिगंबर सौं नहीं, जे चउरासी बाद ।।३।।
तिनकी कछु संक्षेपता, कहिए आगम जानि ।
पढत सुनत जिनके मिटै, संसै मत पहचानि । ४।।
संसै मत मैं और है, अगनित कल्पित बात ।
कौन कथा तिनकी कहै, कहिए जगत विख्यात ।।५।।

६ परमात्मप्रकाश भाषा

परमात्मप्रकाश दूसरी अध्यात्म कृति है जिसे कविवर हेमराज ने संवत् १७१६ मे समाप्त की थी। परमात्मप्रकाश योगीन्दु की मूल कृति है जिनका पूरा नाम योगिचन्द्र है। इनका समय ईस्वी सन् की छठी शताब्दि का उत्तरार्ध माना जाता है। परमात्मप्रकाश मूल मे अपभ्रंश रचना है जिसमे प्रथम अधिकार मे १२६ दोहे तथा दूसरे अधिकार मे २१९ दोहे है।

पाण्डे हेमराज ने परमात्मप्रकाश पर हिन्दी गद्य टीका लिखकर उसके पठन पाठन को और भी सुलभ बना दिया तथा उसकी लोक प्रियता में वृद्धि की लेकिन प्रवचनसार के समान इसको व्यापक समर्थन नहीं मिल सका। यही कारण है कि जयपुर के शास्त्र भण्डारो मे इसकी एक मात्र पाण्डुलिपि उपलब्ध होती हैं और वह भी अपूर्ण ही है। इसकी एक पूर्ण पाण्डुलिपि डूंगरपुर के कोटडियों के मन्दिर मे तथा दूसरी भादवा (जयपुर) ने जिन मन्दिर के शास्त्र भण्डार में उपलब्ध होती है। परमात्मप्रकाश की गद्य टीका का एक उदाहरण देखिये—

अथानतर तीन प्रकार का आत्मा के भेद तिनि मै प्रथम ही वहिरात्मा के लक्षण कहै है—

दोहा— मूढवियक्खण वंभुपरु, अप्पा तिविहु हवेइ ।
देहु जि अप्पा जो मुणइ, सो जणु मूढ हवेइ ।।११।।

मूढ कहिए मिथ्यात्व रागादि रूप परिणया वहिरातमा अर वियक्खण कहिए वीतराग निर्विकल्प सुसवेदन ग्यान रूप परिणया अतरात्मा अर ब्रह्म पर कहिए शुद्ध-बुद्ध स्वभाव प्रमात्मा शुद्ध कहिए रागादि रहित अर बुद्ध कहिए अनतग्यानादि सहित

परम कहिए उत्कृष्ट भाव कर्म तो कर्म रहित या प्रकार आत्मा के तीन भेद जानूं। बहिरात्मा, अन्तरात्मा परमात्मा तिनि मैं जो देह कूं आत्मा जाणैं सो प्राणी मूढ़ कहिए।

उक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि हेमराज ने प्रवचनसार गद्य टीका मे जिस शैली को अपनाया था उसी को आगे ग्रन्थो मे अपनाया गया।

७ पञ्चास्तिकाय गद्य टीका

पञ्चास्तिकाय भी आचार्य कुन्दकुन्द की कृति है जो प्राकृत भाषा मे निबद्ध है। इसमे दो श्रुतस्कध (अधिकार) है षड्द्रव्य-पचास्तिकाय और नव पदार्थ। इन अधिकारो के नाम से ही इनके अभिधेय का नाम हो जाता है। इस पर भी आचार्य अमृतचन्द्र एव जयसेन की सस्कृत टीकाए हे।

पाण्डे हेमराज ने अपने गुरु रूपचन्द के प्रसाद से पञ्चास्तिकाय की भाषा टीका लिखी थी। पडित परमानन्द जी शास्त्री एवं डा० प्रेमसागर दोनो ने पञ्चास्तिकाय भाषा टीका का रचनाकाल सवत् १७२१ लिखा है लेकिन रचनाकाल सूचक पद्य का दोनो ने उल्लेख नही किया है। जयपुर के ठोलियो के मन्दिर मे सग्रहीत एक पाण्डुलिपि सवत् १७१४ की लिखी हुई है इसलिये पञ्चास्तिकाय गद्य टीका का लेखन काल सवत् १७२१ तो नही हो सकता। स्वय गद्य टीकाकार में रचनाकाल का कोई उल्लेख नही किया है। पाण्डे हेमराज ने निम्न प्रकार टीका की समाप्ति की है—

आगै इस ग्रन्थ का करणहारे श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने जु यह आरम्भ कीना था तिसके पार प्राप्त हुआ कृतकृत्य। अवस्था अपनी मानो कर्म रहित शुद्ध स्वरूप विषै थिरता भाव धर्‌या। असी ही हमारै विषै भी श्रद्धा उपजी इसि पचास्तिकाय समयसार ग्रन्थ विषै मोक्षमार्ग कथन पूर्ण भया। यह कछु एक अमृतचन्द्र कृत टीका तै भाषा बालावबोध श्री रूपचन्द गुरु कै प्रसाद थी। पांडे हेमराज नै अपनी बुद्धि माफिक लिखित कीना। जे बहुश्रृत है ते सवारि कै पढियो॥

---

१ देखिये अनेकान्त– वर्ष १८ किरण–३ पृष्ठ सख्या १३८.

२ हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि—पृष्ठ स० ११५.

इति श्री पञ्चास्तिकाय ग्रन्थ पांडे हेमराज कृत समाप्त। संवत् १७१६ पौष सुदि ११ वृहस्पतिवार रामपुरा मध्ये लिखायितं पंचास्तिकाय ग्रन्थ संघ ही कला परोपकाराय लिखितं लेखक दीना। शुभ भूयात्।

ग्रन्थ के प्रारम्भ करते समय कवि ने अपना कोई परिचय नहीं दिया है और टीका को प्रारम्भ कर दिया है।

भावार्थ—एक परमाणु विषें पुद्गल के बीस गुणनि में पंच गुण पाइए। पच रसनि विषै कोई एक रस पाइए। पंच वर्ण विषै कोइ एक वर्ण पाइए। दोइ गध विषै कोई एक गध पाइए। शीत स्निग्ध, शीत रुक्ष उष्ण, स्निग्ध, उष्ण-रुक्ष इति चार स्पर्श के जुगलनिविषै एक कोई जुगल पाइए। ए पांच गुण जाननें। यह परमाणू षंघ भाव कं परणया हुआ शब्द पर्याय का कारण है। और जब षंध तै जुदा है तब शब्द तै रहित है। यद्यपि अपर्णे स्निग्ध रुक्ष गुणनि का कारण पाइ अनेक परमाणु रूप स्कंध परिणति धरि करि एक हो हैं तथापि अपणें एक रूप करि स्वभाव कौं छोडता नांही। सदा एक द्रव्य है।

उक्त उदाहरण से ज्ञात होता है कि हेमराज हिन्दी गद्य लेखन में बड़े कुशल विद्वान् थे। तथा सिद्धान्त एव दर्शन के विषय को भी धारा प्रवाह लिखते थे। आगरा के होने के कारण उनकी भाषा मे थोडा ब्रज भाषा का पुट है।

८ कर्मकाण्ड भाषा

कर्मकाण्ड आचार्य नेमिचन्द्र के गोम्मटसार का उत्तर भाग है। गोम्मटसार के दो भाग हैं जिनमें प्रथम जीवकाण्ड तथा दूसरा कर्मकाण्ड है। कर्मकाण्ड ग्रन्थ जैनधर्म के अनुसार आठ कर्म एवं उनकी १४८ प्रकृतियों के वर्णन करने वाला प्रमुख ग्रन्थ है। यह ६ अधिकारों में विभक्त है। जिनके नाम निम्न प्रकार हैं—(१) प्रकृति समुत्कीर्तन (२) बन्धोदय सत्व (३) सत्वस्थानभंग (४) त्रिचूलिका (५) स्थान समुत्कीर्तन (६) प्रत्यय (७) भावचूलिका (८) त्रिकरण चूलिका (६) कर्म स्थितिबन्ध। कर्मों के भेद प्रभेदों का वर्णन करने वाला यह प्रमुख ग्रन्थ है। आचार्य नेमिचन्द्र का समय ईस्वी सन् की दशम शताब्दि का उत्तरार्द्ध है।

पाण्डे हेउराज ने अपनी गद्य टीका के प्रारम्भ अथवा अन्तिम भाग में रचना काल का उल्लेख नहीं किया है लेकिन पं० परमानन्द जी शास्त्री ने इसका रचना-

काल संवत् १७१७ लिखा है। उन्होने अपनी इस मान्यता का कोई आधार नहीं दिया है। जयपुर के ठोलिया मन्दिर मे इसकी एक पाण्डुलिपि सवत् १७२० को तथा हमारे संग्रह मे सवत् १७२६ मे लिपिबद्ध पाण्डुलिपि सुरक्षित है। सवत् १७२० की पाण्डुलिपि उसी लिपिकर्त्ता दीना की है जिसने इसके पूर्व पञ्चास्तिकाय गद्य टीका की प्रतिलिपि की थी।

हेमराज ने प्रस्तुत ग्रन्थ के आदि अन्त मे अपने सम्बन्ध मे लिखित प्रशस्ति निम्न प्रकार है—

प्रारम्भ— ओ नम सिद्धेभ्य.। अथ कर्मकाण्ड की बालबोध टीका हेमराज कृत लिख्यते।

अन्तिम भाग—इयं भाषा टीका पंडित हेमराज कृता स्वबुद्धयनुसारेण। इति श्री कर्मकाण्ड भाषा टीका।

सवत् १७२६ वर्षे आसुनि मासे कृष्णपक्षे ७ सप्तम्या सोमवासरे लिखत साह श्री योमसी आत्मपठनार्थं। लिखित पाठिग विजैराम। श्री शुभ भवत्।

कर्मकाण्ड भाषा टीका भी अन्य ग्रन्थों की भाषा टीका के समान है। इसके गद्यांश का एक उदाहरण निम्न प्रकार है—

आयुषि भव विाकीनि नरकायु तिर्यंचायु मनुष्यायु देवायु ए चारि आयु भव विपाकी कहिए। जातै इनका भव कहिये पर्याय सोई विपाक है। आयु के उदय तैं पर्याय भोगइ ए है। तातैं आयु कर्म भव विपाकी कहिए। क्षेत्र विपाकीनि आनुपूर्व्याणि। नरकायु पूर्व्वी तिर्यंचायुपूर्व्वी मनुष्यानुपूर्व्वी देवानुपूर्व्वी। चार आनुपूर्व्वी क्षेत्र विपाकी है। जातैं इनका विपाक क्षेत्र है तातै क्षेत्र विपाकी है। अवशिष्टानि अष्टसप्तति· जीव विपाकीनि पुद्गल विपाकी भव विपाकी क्षेत्र विपाकी पूर्व कहै जे कर्मएकसौ अठतालीस प्रकति मध्य तिनतै ते बाकी रहे अठहत्तरि कर्म ते जीव विपाकी कहिए ते जीव विपाकी कर्म अगली गाथा मे नाम लेकैं कहै है।

प्रस्तुत टीका में कवि ने केवल गाथा का अर्थ ही किया है अपनी अन्य टीका ग्रन्थो के समान भावार्थ नहीं दिया। इससे भाषा में संस्कृत शब्दो की अधिक भरमार आ गयी है।

९ सुगन्ध दशमी व्रत कथा

सुगन्ध दशमी व्रत भाद्रपद महिने की शुक्ल पक्ष के दशमी के दिन रखा जाता है। यह व्रत १० वर्ष तक किया जाता है और फिर उद्यापन के साथ इसको रखा जाता है। समाज मे इसका अत्यधिक महत्त्व है। शास्त्र भण्डारों में बहुत सी पाण्डुलिपियाँ इसी व्रत के उद्यापन के उपलक्ष में भेंट स्वरूप दी हुई संग्रहीत है। इस दिन सभी मन्दिरो में धूप खेई जाती है। इस व्रत को जीवन मे सफलता पूर्वक करने से दुर्गन्ध युक्त सरीर भी सुगन्धित बन गया था यही इस व्रत का महात्म्य है।

इस कथा के मूल लेखक विश्वभूषण हैं जिसको हिन्दी पद्य में हेमराज ने रचना की थी। रचना स्थान गहेली नगर था जिसका कवि ने निम्न प्रकार उल्लेख किया है।

> व्रत सुगन्ध दसमी विख्यात, अतिसुगन्ध सौरभता गात।
> यह व्रत नारि पुरुष जो करै, सो दुख संकट बहु परै ॥३६॥
> सहर गहेली उत्तिम वास, जैनधर्म को करै प्रकास।
> सब श्रावक व्रत संयम धरै, दान पूजा सौ पातिक हरै ॥३७॥
> हेमराज कवियन यौ कही, विस्वभूषन परकासी सही।
> मन वच काइ सुनै जो कोइ, सो नर स्वर्ग अमरपति होइ ॥३८॥

यह छोटी सी कृति है जिसमें ३८ पद्य हैं। इसकी एक पाडुलिपि जयपुर के पटोदी के दिगम्बर जैन मन्दिर मे संग्रहीत है। पाण्डुलिपि संवत् १९८५ की है। पाण्डुलिपि भिण्ड नगर के रामसहाय ने की थी।

१० नयचक्र भाषा

नयचक्र का दूसरा नाम आलाप पद्धति है। इसके मूलकर्त्ता आचार्य देवसेन है जिनका समय संवत् ९९० अर्थात् १०वीं शताब्दि माना जाता है। नयचक्र मूल रचना प्राकृत भाषा मे है। इसमे प्रारम्भ में छह द्रव्यो का (जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल) द्रव्य, गुण और पर्याय की अपेक्षा वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् द्रव्य स्वभाव का कथन किया गया है। फिर सात नयों का जिनके नाम से यह रचना विख्यात है वर्णन मिलता है। नैगम, सग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र

शब्द समभिरूढ एवं एवंभूत के भेद से सात प्रकार के हैं। इन नयों का बहुत ही विस्तृत किन्तु सरल एव बोधगम्य परिचय दिया गया है। हेमराज ने बिना किसी गाथाओं को उद्धृत किये हुये नयचक्र ग्रन्थ का सार लिखा है। यद्यपि नयचक्र का दार्शनिक विषय है लेकिन हेमराज ने उसे एकदम सरल बना दिया है। एक उदाहरण देखिये—

(१) वहाँ सर्व नय को मूल दोइ। एक द्रव्यार्थिक, एक पर्यायार्थिक। इनही का उच्चतर भेद सात और है सो लिखिये है। १. नैगम, २ सग्रह, ३ व्यवहार ४. ऋजुसूत्र, ५. शब्द, ६. समभिरूढ एव ७. एवभूत। इस तरह ए सात नय दोय मूल अरु सात ए सर्व मिलि तब नय हुई। इति नयाधिकार। इनको अर्थ आगे यथा सम्बन्धे लिखिये होगी।

नय ही को अंगु ले करी वस्तु को अनेक विकल्प लिए कहनो सु उप नय कहिये सो उप नय तीनि भेद व्यवहार ही के विषै सभवे सो लिखिये है। सद्भूत व्यवहार असद्भूतव्यवहार, उपचरत सद्भूत व्यवहार एव उप नय का तीन भेद। अब पूर्वोक्त नय का विस्तार पणे भेद लिखिए है।

× .... × .... × .... × .... ×

(२) तिहां प्रथम निश्चयँ नय हूंती व्यवहार नय। तिहां वस्तु कौ जो अभेद पणै बतावै सो निश्चय। अरु वस्तु कौ भेद पणै बतावै सो व्यवहार नय। तिहा पहिली जौ निश्चय नय तिस कै दोय भेद। एक शुद्ध नय दूजी अशुद्ध नय। तिहा जो निरुपाधि रूप सो सुध निश्चय नय जैसे केवलग्यानादयो जीव। अर जो उपाधि करि सयुक्त है सौ असुध निश्चय नय जैसे मति ज्ञानोदयो जीव। एवं निश्चय का दोय भेद जाणवा।　　　　पृष्ठ १७

उक्त दो उदाहरणो से पता चलता है कि नयचक्र की भाषा राजस्थानी प्रभावित अवश्य है लेकिन उसका स्वरूप एव शैली दोनों ही परिस्कृत है। सैद्धान्तिक बातों के वर्णन मे ऐसा सरल एवं किन्तु परिस्कृत भाषा का प्रयोग अवश्य ही प्रशंसनीय है।

प्रस्तुत रचना को हेमराज ने संवत् १७२६ में पूर्ण किया था। जिसका उल्लेख कवि ने ग्रन्थ के अन्त मे निम्न प्रकार किया है—

हेमराज की बीनती, सुनियौ सुकवि सुजान।
यह भाषा नयचक्र की, रचि सुबुद्धि अनमान ॥४॥

सतरहसै छबीस कौ, संवत फागुण मास।
उजल तिथि दशमी जिहां, कीनो वचन विलास ॥५॥

आगरा में उन दिनों प० नारायणदास थे। जो खरतर गच्छ के जिनप्रभसूरि के प्रशिष्य एव उपाध्याय लब्धिरंग के शिष्य थे। हेमराज ने प० नारायणदास से नयचक्र की भाषा करने के लिये प्रार्थना की। इसके पश्चात् हेमराज ने प० नारायणदास की सहायता से नयचक्र की गद्य मे भाषानुवाद किया। जिसका कवि ने निम्न प्रकार किया है—

दोहरा— सिरीमाल गछ खरतरै, जिनप्रभ सूरि संतानि।
लबधि रंग उवझाय मुनि, तिनके सिष्य सुजानि ॥
विबुध नारायणदास सौं, यहै अरज हम कीन।
क्यौ नयचक्र सटीक हूं, पढै सबै परवीन ॥२॥
तिन्है प्रसन ह्वै के कही, भली भली यह बात।
तब हमहूं उदिम कियौ, रची वचनिका भांत ॥३॥

प्रस्तुत ग्रन्थ की एक पाण्डुलिपि संवत् १७६० भादवा बुदी भृगुवासर को बेधम गाव मे लिपिबद्ध की हुई जयपुर के पांडे लूणकरण जी के मन्दिर में उपलब्ध है।

नयचक्र भाषा का आदि भाग निम्न प्रकार है—

बदौ श्री जिन के वचन, स्याद्वाद नय मूल।
ताहि सुनत अनुभवत हो, होइ मिथ्यात निरमूल ॥१॥
निहचै अरु विवहार नय, तिनके भेद अनंत।
तिन्ह में कछु इक बरन हो, नाम भेद विरतंत ॥२॥

११ गुरुपूजा

हेमराज ने आध्यात्मिक साहित्य के अतिरिक्त पूजा साहित्य भी लिखा था। उनके द्वारा रचित गुरुपूजा पं० पन्नालाल बाकलीवाल द्वारा प्रकाशित

वृहद्‌जिनवाणी संग्रह में प्रकाशित हो चुकी है। पूजा मे पहिले अष्ट पूजा और फिर जयमाल है। कवि के गुरु संसार के भोगो से विरक्त होकर मोक्ष के लिये तपस्या करते हैं। वे भी भगवान जिनेन्द्र के गुणों का नित्य प्रति जाप करते हैं—

दीपक उदोत सदोत जगमग, सुगुरुपद पूजों सदा।
तम नाश ज्ञान उजास स्वामी, मोहि मोह न हो कदा।
भव भोग तन वैराग्यधार, निहार शिव पद तपत हैं।
तिहुँ जगतनाथ अधार साधु सु, पूज नित गुन जपत है।।६।।

पञ्च परमेष्ठी का साधु ही गुरु है। मुनि भी उसी का नाम है। वे राग-द्वेष को दूर कर दया का पालन करते हैं। तीनो लोक उनके सामने प्रकट रहते हैं वे चारो आराधनाओ के समूह हैं। वे पाँच महाव्रतो का कठोरता से पालन करते हैं और छहों द्रव्यो को जानते हैं। उनका मन सात भगो के पालन मे लगा रहता है और उन्हे आठो ऋद्धियाँ प्राप्त हो जाती है।

एक दया पाले मुनिराजा, राग द्वेष द्वै हरनपरं।
तीनो लोक प्रगट सब देखें, चारों आराधन निकरं।
पच महाव्रत दुद्धर धारें, छहों दरब जानें सुहित।
सात भंग बानी मन लावै, पावे आठ ऋद्धि उचितं।।

गुरुपूजा की एक प्रति फतेहपुर (शेखावाटी) के दिग० जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे गुटका सख्या ७ मे सग्रहीत है।

१२ नेमि राजमति जखडी

कविवर हेमराज लघु कृतियों की रचना करने मे रुचि भी रखते थे। नेमिराजमति जखडी ऐसी ही एक लघु रचना है जिसमे नेमि राजुल का विरह वर्णन किया गया है। जखडी की एक प्रति जयपुर के बधीचन्द जी के मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे संग्रहीत १२४वें गुटके में लिपिबद्ध है। इसकी प्रति देहली मे तिलोकचन्द पटवारी चाकसू वाले ने सवत् १७८२ मे की थी।

---

१ राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रंथ सूची—भाग ३ पृष्ठ संख्या १५२.

१३ रोहिणी व्रत कथा

हेमराज ने कुछ कथा कृतियो की भी रचना की थी। रोहिणी व्रत कथा को उसने संवत् १७४२ में समाप्त की थी। इस कथा की एक प्रति दि० जैन मंदिर बोरसली कोटा में संग्रहीत है। कथा का अन्तिम भाग निम्न प्रकार है—

रोहणी कथा सपूरण भई, ज्यों पूरब परगासी गई।
हेमराज ई कहो विचार, गुरु सकल शास्त्र अवधार।
ज्यों व्रत फल मैं लही, सो विधि ग्रंथ चौपई लही।
नगर बीरपुर लोग प्रवीन दया दान तिनको मन लीन॥

कथा के उक्त अश से पता चलता है कि इसकी रचना बीरपुर मे की गयी थी। 'बीरपुर आगरा के आस पास ही कोई ग्राम होना चाहिये।[1]

१४ नन्दीश्वर कथा

हेमराज की दूसरी कथा कृति नन्दीश्वर कथा है। कवि ने इसे इटावा नगर मे निबद्ध किया था। वहाँ जैनो की अच्छी बस्ती थी तथा जैन पुरानो को सुनने मे उनकी विशेष रुचि थी। कथा का अन्तिम अश निम्न प्रकार है—[2]

यह व्रत नन्दीश्वर की कथा, हेमराज परगासी यथा।
सहर इटावो उत्तम थान, श्रावक करै धर्म सुभ ध्यान।
सुने सदा जे जैन पुरान, गुरो लोक को राखै मान।
तिहिंण सुनो धर्म सम्बन्ध, कीनी कथा चौपई बंध॥

१५ राजमती चुनरी

इस लघु कृति की एक प्रति फतेहपुर (शेखावाटी) के दिग० जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे संग्रहीत है।[3]

---

१ देखिये—राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रंथ सूची—भाग पंचम पृ. स. ४०३
२ वही
३ वही पृष्ठ सं. ११९८

१६ समयसार भाषा

पं० हेमराज ने आचार्य कुन्दकुन्द के सभी प्रमुख ग्रन्थों का भाषान्तर किया था। समयसार भाषा की उपलब्धि अभी तक हमे राजस्थान के शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूचियाँ बनाते समय उपलब्धि नहीं हुई थी। इस ग्रन्थ की एक पाण्डुलिपि नागौर के भट्टारकीय शास्त्र भण्डार मे सुरक्षित है ऐसा उल्लेख डा० प्रेमचन्द जैन ने अपनी डेस्क्रिपटिव कैटालाग आफ मन्युस्क्रपटस् मे पृष्ट 25 पर निम्न प्रकार दी है–

"समयसार भाषा—पं० हेमराज/पत्र सख्या १६४/आकार ११½"×४½" दशा-जीर्ण/पूर्ण/भाषा हिन्दी (पद्य) लिपि-नागरी/ग्रथ सख्या १०६०/रचनाकाल-माघ शुक्ला ५ स० १७६६/लिपिकाल X।"

उक्त परिचय मे रचना काल सवत् १७६६ दिया है जो पाडे हेमराज अथवा हेमराज गोदीका के साथ मेल नहीं खाता क्योंकि उक्त दोनो ही कवियो की रचनाये संवत् १७२६ तक मिली है जिसमे ४३ वर्ष का अन्तराला है। इसलिये हो सकता है यह लिपि सवत् हो। इसकी खोज चल रही है।

हेमराज गोदीका (तृतीय)

हेमराज नाम वाले ये तीसरे कवि हैं। ये दिगम्बर जैन खण्डेलवाल थे। गोदीका इनका गोत्र था। ये अध्यात्मी पडित थे। उस समय सांगानेर क्रान्तिकारियो का नगर था। अमरा भौंसा जो तेरहपंथ के मुख्य आधार स्तभ थे, वे भी सांगानेर के ही थे तथा उनका पुत्र जोधराज गोदीका भी सागानेर निवासी थे। यह पूरा गोदीका परिवार ही भट्टारको के विरुद्ध खडा हुआ था और उसमे उन्हे आशिक सफलता भी मिली थी।

हेमराज गोदीका एव जोधराज गोदीका सभवत. एक ही परिवार के थे तथा एक ही पिता के पुत्र थे। लेकिन दोनो मे मतैक्य नही होने के कारण हेमराज को सागानेर छोड़कर कामा जाना पडा। लेकिन ये दोनो ही विद्वान् थे। यह भी संयोग की ही बात है कि दोनो ने एक ही सवत् अर्थात् स० १७२४ मे प्रवचनसार की पद्य टीका समाप्त की थी। हेमराज सांगानेर से कामा नगर आये जबकि जोधराज सागानेर मे ही अपनी साहित्यिक सेवा करते रहे।

हेमराज की अब तक तीन कृतियाँ प्राप्त हो चुकी है जिनके नाम प्रकार हैं—
प्रवचनसार हिन्दी पद्य—रचनाकाल संवत् १७२४

उपदेश दोहा शतक— संवत् १७२५

गणितसार संग्रह— —

उक्त रचनाओं का विस्तृत परिचय निम्न प्रकार है—

१५ प्रवचनसार भाषा (पद्य)

प्रवचनसार का पठन पाठन समाज में प्रारम्भ से ही लोकप्रिय रहा है। आचार्य अमृतचन्द्र एव जयसेन प्रभृति आचार्यों ने गाथाओ पर संस्कृत मे टीका लिखी है। हिन्दी भाषा मे सर्व प्रथम संवत् १७०६ मे आगरा निवासी हेमराज अग्रवाल ने गद्य पद्य दोनो मे टीका लिखी थी। हेमराज की गद्यात्मक टीका बहुत लोकप्रिय रही और उसी के आधार पर कामांगढ (राजस्थान) निवासी हेमराज खण्डेलवाल ने एक और हिन्दी पद्य टीका लिखी। जिसके पद्यो की सख्या १००५ है। हेमराज ने अपना परिचय देते हुये निम्न पंक्तियाँ लिखी हैं—

सवैया इकतीसा

हेमराज श्रावक खण्डेलवाल जाति गोत भांवसा प्रगट व्यौंक गोदीका बखानिये।
प्रवचनसार अति सुन्दर सटीक देखि कीने हैं कवित्त ते छवित्त रूप जानीयें।
मेरी यक वीनती विबुध कविवंतनिसों, बाल बुद्धि कवि को न दोष उर आनीयें।
जहां जहां छंद और अरथ अधिक हीन तहां शुद्ध करिके प्रवान ग्यान ठानीये ॥६१॥

दोहा— सांगानेर सुथांन कों हेमराज बसवान।
अब अपनी इच्छा सहित, बसें कामगढ थांन ॥६२॥
कामागढ सुखसु बसइ, इति भीत नहि थाय।
कवित बंध प्रवचन कीयो, पूरन तहां बनाय ॥६३॥

उस समय कामां में अध्यात्म सैली थी उसी में प्रवचनसार की चर्चा स्वाध्याय होती थी।

इसकी रचना संवत् १७२४ की आषाढ सुदी ८ के शुभ दिन समाप्त हुई थी। कवि ने जिसका उल्लेख अपने पद्य मे निम्न प्रकार किया है।

सत्रहसै चौबीस संवत् सुभ असुभ घरी।
कीधो ग्रंथ सुधीस देखि देखि कीज्यो खिमा ॥१००५॥

प्रवचनसार का पद्यानुवाद बहुत ही सुन्दर एवं भाव पूर्ण हुआ है। आगरा निवासी हेमराज पाण्डे का गद्य रूपान्तरण जितना अच्छा है उतना पद्य भाषान्तर नही है। उसने ४४१ पद्यो मे ही प्रवचन के रहस्य को प्रस्तुत किया है जबकि हेमराज गोदीका (खण्डेलवाल) ने प्रवचनसार पर विस्तृत पद्य रचना की है जो १००५ पद्यो मे पूर्ण होती है। दोनो ही कवि ब्रज भाषा भाषी प्रदेश के थे। कामा भी ब्रज प्रदेश मे गिना जाता है।

आ गई पुन्य पाप कोई भेद नाही ऐसा निश्चैय करि कौ ईस कथन कुं सक्षेप मे कहै है।

णहि मण्णदि जो एवं णत्थि विसेसोत्ति पुण्ण पावाण।
हिंडदि घोर मपांरं संसारं मोह सछन्नो ॥२८२॥

टीका— नहिंसन्यते य एवं नास्ति, विशेष इति पुन्य-पापयो।
हिंडति घोर मयारं, संसारं मोह सछन्नं॥

सवईया इकतीसा—

पीकै मद मोह कौ परै है भवसागर मइ,
आपनी पराइ को बिचार न करतु है।
पुण्य के उदेतइ बिषइ भोग सुख पाइयत,
तिन्ह के बिलास वै कु उद्यम धरतु है।
पाप उदै दुखी अंग होत बिषइ भोगनि सौं,
जिन्ह कुं बिलोकि भय मानि कै डरतु है।
ऐसे पाप पुण्य तें असाता साता वेदतु है।
तेई भवसागर मैं भांवरी भरतु है ॥२८३॥

दोहरा— पुण्य पाप की एकता, मानतु नांहि जु कोय ।
सो अपार संसारमइ, भ्रमत मोह सुत सोय ।।२८४।।
जइसइ शुभ अरु असुभमइ, निहुचय भेव न होय ।
त्यों ही पुन्यरु पापमइ, निहुचय भेद न कोय ।।२८५।।
बेडी लोहरु कनक की, बंधत दुवइं समान ।
त्योंही पुन्यरु पापमइं, बंधत मोह निदान ।।२८६।।

उक्त उदाहरण से यह जाना जा सकता है कि हेमराज गोदीका ने गाथा में निरुपित विषय को कितना स्पष्ट करके समझाया है। भाषा भी एकदम पारिमार्जित है तथा साथ मे सरल एव बोधगम्य है ।

उक्त पद्य रूपान्तरण हेमराज गोदीका ने अपने पूर्ववर्ती पाण्डे हेमराज अग्रवाल आगरा निवासी के प्रवचनसार भाषा (गद्य) के अध्ययन के पश्चात् किया था ।

उक्त ग्रथ की दो पाण्डुलिपियाँ जयपुर के दि. जैन तेरापथी बडा मन्दिर के शास्त्र भण्डार में सग्रहीत है। जिसमे एक पाण्डुलिपि कामा नगर मे लिखी हुई है जो सवत् १७४६ की है ।

२ उपदेश दोहा शतक

उपदेश दोहाशतक हेमराज गोदीका खण्डेलवाल की रचना है। इसके पूर्व उसने प्रवचनसार भाषा (पद्य की रचना की थी । हेमराज ने शतक मे अपना जो परिचय दिया है वह निम्न प्रकार है—

उपनो सांगानेरि कौ, अब कामागढ़ वास ।
तहां हेम दोहा रचे, स्वपर बुधि परकास ।।९८।।
कामांगढ सूबस जहां, कीरतिसिंध नरेश ।
अपने खग बलि बसि किये, दुर्जन जितेक देस ।।९९।।
सत्रहसैर पच्चीस कौ, बरतै संवत सार ।
कातिग सुदि तिथि पंचमी, पूरन भयो विचारि ।।१००।

उक्त संक्षिप्त परिचय से इतना ही पता चलता है कि हेमराज सांगानेर में पैदा हुये थे तथा फिर कामागढ़ मे जाकर रहने लगे थे। उपदेश दोहा शतक की

रचना कामां नगर मे ही की गयी थी। कामा एक सूबा था जिस पर कीर्त्तिसिंह का शासन था और उसने अपने शौर्य एवं पराक्रम से कितने ही देशो पर कब्जा कर लिया था। उपदेश दोहा शतक की रचना सवत् १७२५ कार्तिक सुदी पचमी को समाप्त की गयी थी।

'उपदेश दोहाशतक' एक आध्यात्मिक रचना है जिसमें मानव मात्र को सुपथ पर लगाने, आत्मिक विकास करने एव बुराइयो से बचने का उपदेश दिया है। जीवन मे दया व दान को अपनाने का आग्रह किया गया है। साथ मे यह भी लिखा है कि जिसने जीवन मे दान नही दिया तथा व्रत एव उपवास नही किये इसका जीवन ही व्यर्थ है क्योकि मनुष्य तो मुट्ठी बाधे आता है और हाथ प्रसार कर चला जाता है—

दिये न दान सुपत्त को, किये न व्रत उर धारि।
आयौ मूंठी बांधि कं, जासी हाथ पसारि ॥१३॥

यह मूढ आत्मा जगह २ आत्मा को ढूढता-फिरता है जबकि इसी के घर मे यह आत्मा बसता है जो स्वय निरजन देवता भी है—

ठौर ठौर सोघत फिरत' काहे अंध अबेव।
तेरे ही घर मैं बसै, सदा निरंजन देव ॥२५॥

शतक मे १०१ दोहा हैं। इसकी पाडुलिपि जयपुर के बधीचन्द जी के मदिर के शास्त्र भण्डार मे संग्रहीत है।

३ गणितसार

कविवर हेमराज गोदीका गणितज्ञ भी थे। इन्होंने गणितसार के नाम से एक लघु रचना को छन्दोबद्ध किया था। इसमे ८८ दोहा छन्द है। जिनमे गणित के विभिन्न पथो को प्रस्तुत किया है। अब तक इस ग्रन्थ की एक प्रति जयपुर के दि० जैन मदिर पाटोदियान मे तथा एक पाण्डुलिपि आदिनाथ पंचायती मन्दिर बून्दी मे सग्रहीत है। बून्दी वाली पाण्डुलिपि सवत् १७८४ की है तथा सांगानेर मे लिपिबद्ध है इसलिये हमने गणितसार को हेमराज गोदीका की कृति माना है। जयपुर वाली

पाण्डुलिपि अपूर्ण है और उसका अन्तिम पृष्ठ नहीं है। गणितसार का आदि अन्त भाग निम्न प्रकार है—

प्रारम्भ—अथ श्री गणितसार लिख्यते—

दोहरा— श्रीपति शंकर सुगत विधि, निरविकार करतार।
अगम सुगम आनन्दमय, सुर नर पति भरतार ॥१॥
चिद्विलास निरविकलपी, अजर अजम्म अनन्त।
जगत शिरोमणि दुखदमन, जय जय जिन अरिहंत ॥२॥

अन्तिम पाठ दोहरा

जाके जैसी है सकति, ताके वैसो काज।
यह विचार किंचित कह्या, करि मति सकति इलाज ॥८६॥
अरथ शब्द पद छंद करि, जहाँ होय सविरुद्ध।
कृपावंत होइ सजन जन, तहाँ समारहु शुद्ध ॥८७॥
जो पढि याको सरदहै, शिवथानक में सोई।
हेमराजमय जो अचल, ता सम अविचल होइ ॥८८॥

हेमराज (चतुर्थ)

तीन हेमराज नाम के विद्वानों एवं कवियो के अतिरिक्त एक और हेमराज का पता लगा है जो पांडे हेमराज के समकालीन थे। ये हेमराज भी तत्वज्ञानी एव सिद्धान्त ग्रन्थों के ज्ञाता थे। उस समय आगरा में जैन समाज के विभिन्न सम्प्रदायों मे पूर्ण समन्वय था इसलिये दिगम्बर ग्रन्थो की व्याख्या श्वेताम्बर विद्वान् किया करते थे। समयसार, प्रवचनसार, गोम्मटसार, पञ्चास्तिकाय जैसे ग्रन्थ श्वेताम्बर समाज मे भी लोक प्रिय थे। हेमराज ओसवाल ने जब साहू आनंदराम जी खण्डेलवाल ने गोम्मटसार के बारे में प्रश्न पूछे तो उन्होंने सहर्ष उसकी शंकाओं का समाधान किया। जीव समाज इन्ही शकाओं पर आधारित ग्रन्थ है।

इन्हीं हेमराज की छन्द शास्त्र संभवतः एक और रचना है जिसकी एक पाण्डुलिपि जैसलमेर के भण्डार मे सुरक्षित है। इसका रचनाकाल संवत् १७०६ दिया हुआ है। कवि की उक्त दोनो रचनाओ का सक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है—

जीव समास

हेमराज ने गोम्मटसार जीवकाड मे से जीव समास से सम्बन्धित गाथाओ का संकलन किया है जिसका नाम उन्होने जीव समास नाम दिया है। प्राकृत गाथाओ पर सस्कृत मे विस्तृत अर्थ किया है। ग्रन्थ का प्रारम्भ और अन्तिम भाग निम्न प्रकार है—

प्रारम्भ—अथ गोम्मटसारे शरीरावगाहनाश्रयेण जीव समासान् वक्तुमनाः प्रथम तत्सर्व जघन्योत्कृष्ट शरीरावगाहन स्वामिनौ निर्दिशगति।

अन्तिम—इति विग्रह निवारणार्थं कार्म्मणकाययोगे विग्रहगति निर्द्धारणार्थं श्रीमद्गोम्मटसारापुद्धृत हेमराजेन ॥

उक्त ग्रथ की पाण्डुलिपि जयपुर के पाण्डे लूणकरण जी के शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत है।

गोम्मटसार जीवकाड एवं कर्मकाड की गाथाओ के एव पचसग्रह की गाथाओ के आधार पर अमितगति आचार्य ने नवप्रश्न चूलिका बनायी थी इसी की हिन्दी पद्य मे बालावोध टीका हेमराज ने लिखी थी। इस नव प्रश्न चूलिका मे तीर्थंकर प्रकृति का प्रश्न साह आनन्दराम खण्डेलवाल ने उपस्थित किये थे जिनका समाधान गोम्मटसार को देख के उसका उत्तर तैयार किया था। जो ५२ पत्रो में पूर्ण होता होता है। इसकी एक पाण्डुलिपि जयपुर के दि. जैन मन्दिर पाटोदियान में सग्रहीत है जो सवत् १७८८ पौष सुदी १० को लिखी हुई है। हेमराज नाम के पूर्व लिपिकार ने श्वेताम्बर लिखा है। पाण्डुलिपि का अन्तिम भाग निम्न प्रकार है—

इह नव प्रश्न चूलिका बालाबोध किंचित्मात्र तीर्थंकर प्रकृति का प्रश्न साह आणदराम जी खण्डेलवाल ने पूछया। तिस ऊपर श्वेताम्बर हेमराज ने गोम्मटसार कौ देखि के क्षयोपक्षम माफिक पत्री मे जवाब लिखणे रूप चर्चा की वासना

लिखी है। संत जन भूल चूक कौं समुझि करि सुधारि कै पठणा सं. १७८८ पौष सुदि १०।

छन्दमाला

हेमराज की एक रचना छन्दमाला का उल्लेख डा. नेमीचन्द शास्त्री ने हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन मे किया है। इसी छन्द माला की एक ताडपत्रीय प्रति जैसलमेर के शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत है। इस छन्द माला का रचना काल संवत् १७०६ है। सूची मे भाषा गुजराती लिखा है।

इस प्रकार हेमराज नाम के चारो ही कवि हिन्दी साहित्य निर्माण के लिये वरदान सिद्ध हुये। हो सकता है अभी आगरा, मैनपुरी एव उसके आस पास के मन्दिरो मे स्थित शास्त्र भण्डारो के अवलोकन से और भी कृतियाँ मिल जावे लेकिन जो कुछ अब तक उनकी रचनायें मिली हैं वे ही उनकी कीर्त्ति गौरव गाथा कहने के लिये पर्याप्त है।

गद्य साहित्य का महत्त्व

पांडे हेमराज का सबसे अधिक योगदान प्राकृत ग्रंथों का हिन्दी गद्य में विस्तृत टीका सहित अनुदित करना है। पाण्डे राजमल्ल ने १७वी शताब्दि के मध्य मे जिस समयसार नाटक का हिन्दी में टब्बा टीका लिखी थी पाण्डे हेमराज ने प्रवचनसार पर हिन्दी गद्य मे विस्तृत एवं व्यवस्थित टीका लिखकर स्वाध्याय प्रेमियो के लिये नयी सामग्री प्रस्तुत की। वास्तव मे जैन कवियो ने जिस प्रकार पहिले अपभ्रंश कृतियो के माध्यम से और फिर राजस्थानी एवं हिन्दी पद्य कृतियों के माध्यम से जिस प्रकार हिन्दी भाषा की अपूर्व सेवा की थी उसी प्रकार हिन्दी गद्य मे भी ग्रंथो की टीकाएं लिखकर हिन्दी गद्य साहित्य के विकास में भी महत्त्व-पूर्ण योग दिया।

श्री जैसलमेर दुर्गस्थ जैन ताडपत्रीय ग्रन्थ भण्डार सूची पत्र—पत्र सं. २१८ क्रम सख्या ६३१.

प्रतिनिधि कवि के रूप में

पाण्डे हेमराज एव हेमराज गोदीका दोनों को ही हम १७वी शताब्दि के अन्तिम चरण का प्रतिनिधि कवि के रूप मे मान सकते हैं। इन कवियो ने एक ओर जहाँ आध्यात्मिक रचनाओं के पठन पाठन मे पाठको की रुचि जाग्रत की वहां दूसरी ओर लघु रचनायें लिखकर जिन भक्ति की ओर भी जन सामान्य को लगाये रखा। वे एक ही धारा की ओर नहीं बढ़े किन्तु दोनो ही धाराओ का जल सिंचन किया। जिसमे समाज रूप खेत लहलहा उठा। पाडे हेमराज ने प्रवचनसार के पद्यानुवाद मे तथा हेमराज गोदीका ने उपदेश दोहा शतक मे अपनी जिस आध्यात्मिकता एव पर हित चिंतन का परिचय दिया वह सर्वथा प्रशंसनीय है।

उपदेश दोहा शतक

(हेमराज गोदीका) विरचित

दिव्य दृष्टि परकासि जिहि, जान्यौ जगत असेस ।
निसप्रेही निरदुंद निति, बदौ त्रिबिधि गनेस ॥१॥
कुपथ उथपि थापत सुपथ, निसप्रेही निरगंथ ।
असे गुरु दिनकर सरिस, प्रगट करत सिवपंथ ॥१॥
गनपति हिदय बिलासिनी, पार न लहै सुरेश ।
सारद पद नमि कै कहौ, दोहा हितोपदेस ॥३॥
आतम सरिता सलिल जह, संजम सील बखानि ।
तहां करहि मजन सुधी, पहुचै पद निरबाणि ॥४॥
सिव साधन कौ जानिये, अनुभौ बडौ इलाज ।
मूढ सलिल मंजन करत, सरत न एको काज ॥५॥
ज्यौं ईन्द्री त्यौं मन चलै, तौ सब क्रिया अकथि ।
तातै ईन्द्री दमन कौं, मन मरकट करि हथि ॥६॥
तत मत मणि मोहरा, करै उपाय अनेक ।
होणहार कबहु न मिटै, घडी महूरत एक ॥७॥
पढै ग्रथ /ईंद्री दवै, करै जु बरत विधान ।
आपा पर समझै नही, क्यौ पावै निरबाण ॥८॥
तज्यौ न परिगह सौ ममत, मटयौ न विषै विलास ।
अरे मूंढ सिर मूडि कै, क्यौ छाड्यौ घर बास ॥९॥
पहली मनसा हाथि करि, पाछै और इलाज ।
काज सिद्धि कौं बाधीए, पानी पहली पाज ॥१०॥
ब्रह्मचर्य पाल्यौ चहै, घट्यौ न तिय स्यौ पेम ।
एक म्यान मैं द्वै खरग, कहौ समावै केम ॥११॥

असन विविधि बिंजन सहित, तन पोषित थिर जानि।
दुरजन जन की प्रीति ज्यौ, दैहै दगौ निदानि ।।१२।।
दिये न दान सुपत्त कौं, किये न व्रत उरि धारि।
आयौ मूठी बाधि कैं, जासी हाथ पसारि ।।१३।।
जौ नर जीवन जानिया, अर जानि न रख्या कीन।
बिद्ध समै मुखि लालसौ, नरभव पांणी दीन ।।१४।।
सज्जन फुनि लघु पद लहै, दुर्ज्जन कै सग साथि।
ज्यौ सब को मदिरा कहै, क्षीर कुलालनि हाथि ।।१५।।
गज पतग मृग मीन अलि, मये अष्य बसि नास।
जाकै पांचों बसि नहीं, ताकी कैसी आस ।।१६।।
लाभ अलाभादिक विषै, सोवत जागत माहि।
सुद्धातम अनुभौ सदा, तजै सुधीजन नाहि ।।१७।।
कोटि जनम लौं तप तपै, मन बच काय समेत।
सुद्धातम अनुभो बिना, क्यौ पावै सिब खेत ।।१८।।
बजी आपदा सपदा, पूरव करम समान।
देखि अधिक पर कौ विभौ, काहे कुढत अज्ञान ।।१९।।
जुम्यौ पुनि सजोग ते, दस विधि विभौ बिलास।
पुनि घटत घटि जाइगो, गिनत मूढ थिर तास ।।२०।।
जब लौं बिभौ तलाव जल, घटै न खरचत धीर।
तब लौं पूरब पुन्नि की, मिटै नही तलसीर ।।२१।।
जोग भोग हिस्या करम, करत न बंधत जीव।
रागादिक सजोग तै, वरन्यो बध सदीव ।।२२।।
लागि लागि मागत फिरत, मुक्षत दीन कुदेव।
तोहि कहा सो देहिगे, मूढ करत तू सेव ।।२३।।
राग दोष जाकै नहीं, निसप्रेही निरदद।
तासु देव की सेव सौ, कटै करम के फद ।।२४।।
ठौर ठौर सोधत फिरत, काहे अध अबेब।
तेरे ही घट मैं बसै, सदा निरंजन देव ।।२५।।

सोवत सुपिनौं साच सो, जागत जान्यौ झूंठ ।
यहै समुझि संसार स्यौ, करि निज भाव अपूठ ।।२६।।
पढत ग्रंथ अति तप तपत, अब लौं सुनी न मोष ।
दरसन ज्ञान चरित्त स्यौ, पावत सिव निरदोष ।।२७।।
निकस्यौ मंदिर छांडिकै, करि कटुंब कौ त्याग ।
कुटी माहि भोगत बिषै, पर त्रिय स्यौ अनुराग ।।२८।।
पुनि जोग तै सपदा, लहि मानत मन मोद ।
सो तौ लैजै है मुगध, परभव नरक निगोद ।।२९।।
कोटि बरस लौं धोइये, अठसठि तीरथ नीर ।
सदा अपावन ही रहै, मदिरा कुंभ सरीर ।।३०।।
फटे वसन तनहूं लट्यौ, घरि घरि मागत भीख ।
बिना दिये कौ फल यहै, देत फिरत यह सीख ।।३१।।
पाप प्रान पर पीडतैं, पूंनि करत उपगार ।
यहै मतौ सब ग्रंथ कौ, शिव पथ साधन हार ।।३२।।
खोई खेलत बाल बै, तरुनायौ त्रिय साथि ।
बृधि समै व्यापी जरा, जप्यौ न गौ जिन नाथ ।।३३।।
जा पैडं सब जग तगौ, अरजं है सब लोग ।
ता पैडं जैहै तु हूं, कहा करत सठ सोग ।।३४।।
किये देस सब आप बसि, जीति दसौ द्रगपाल ।
सबही देखत लै चल्यै, एक पलक मे काल ।।३५।।
मिलै लोग बाजा बजै, पांन गुलाल फुलेल ।
जनम मरण अरु ब्याह मै, है समान सौ खेल ।।३६।।
परम धरम सरवरि बसै, सज्जन मीन सुमानि ।
तिय बडछी सौ काढिये, मनमथ कीर बखानि ।।३७।।
ईंद्री रसना जोग मन, प्रबल कर्म्म मैं मोह ।
ए अजीत जीतै सुभट, करहि मोष की टोह ।।३८।।
होत सहज उतपात जग, बिनसत सहज सुभाइ ।
मूंढ अहमति धारि कै, जनमि जनमि भरमाइ ।।३९।।

कांपत देखै सलिल मैं, गड्यौं थंभ जल तीर।
त्यौ परजाय बिनास तैं, मानत द्रव्य अधीर ॥४०॥
सौरण समूंरत साधि सब, करत काज संसार।
मूंढन समुझै भेद यहुं, सुधरै सुधरन हार ॥४१॥
दुरजन नर अरु अगनि को, जानहुं एक सुभाव।
जाही गहर बासि है, ताही देत जराइ।४२॥
करत प्रगट दुरजन सदा, दोष करत उपगार।
मधुर सचिक्कण पोष तैं, करत मार ज्यौ मार।४३॥
लागि विषै सुख कै विषै, लखै न आतम रूप।
इह कहवति साची करी, परयौ दीप लै कूप ॥४४॥
सुजस बडाई कारणै, तजै मोक्ष सुख कोइ।
लोह कील के लेन कौं, ढाहत देवल सोइ ॥४५॥
तब लौ विषै सुहावनौ, लागत चेतन तोहि।
जब लौं सुमति बधू कहै, नैंही पिछानत मोहि ॥४६॥
ज्यौ धतूर मातौ लखै, माटी कनक समांन।
त्यौ सुख मांनत विषय सौं, सगति कुमति अग्यान ॥४७॥
पाप हरन जिन पाप करि, करुना कर न बिनास।
किते न लागे तीर तरि, तजि तजि आसापास ॥४८॥
हरै हरें सुद्धरत हरि, कर्म्म कर्म्म ते कर्म्म।
सेय चरन सिव सुख करन, इहौ बडौ जागि धर्म्म ॥४९॥
बिषै आस पासा बंध्यौ, आस पास जग जीव।
ताही विषै बिलास को, उद्यम करत सदीव ॥५०॥
करत पुन्य सो हेत जो, तजि कै पापारभ।
सो न जीति है मोह कौं, गड्यौ जगत रणथभ ॥५१॥
षट बिधि त्रस थावर बसै, स्वर्ग मध्य पाताल।
सबही जीव अनादि के, परे मोह गल जाल ॥५२॥
उपजै द्रव्य सुकष्ट तैं, खरचत कष्ट बखानि।
कष्ट कष्ट करि राखिये, द्रव्य कष्ट की खानि ॥५३॥

देव ग्रंथ गुरु मंत्र फुनि, तीरथ बरत विधान ।
जाकी जैसी भावना, तैसी सिद्धि निदान ।।५४।।

मिलि कै कनक कु धातु सौं, भयौ बहुत विधि बांन ।
त्यौ पुद्‌गल संजोग सौं, जीव भेद परवांन ।।५५।।

स्यांम रंग तै स्यामता, फटक पखान न होइ ।
त्यो चेतन जड जोग तै, जडता लहै न कोइ ।।५६।।

खीर नीर ज्यों मिलि रहे, ज्यौं कंचन पाखान ।
त्यों अनादि संजोग भनि, पुद्‌गल जीव प्रवान ।।५७।।

सिव सुख कारनि करत सठ, जप तप बरत विधान ।
कर्म्म निर्ज्जरा करन कौ, सोहं सबद प्रमान ।।५८।।

तजै अबै संपति लखै, परखै बिषै अजांन ।
ज्यो गजमोती तजि गहै, गुंजा भील निदान ।।५९।।

दुर्जन संगति संपदा, देत न सुख दुख मूल ।
करै अधिक उर जगत मैं, ज्यौं अकाल के फूल ।।६०।।

सज्जन लहे न सोभ कौं, दुर्ज्जन संगति सेत ।
ज्यो कुंजर दर्प्पन बिषै, हीन दिखाई देत ।।६१।।

सोरठा— इहै जलधि संसार, चढि मुनि ग्यान जिहान पर ।
तत छिन पंहुचै पार, प्रबल पवन तप तपत जंह ।।६२।।

दोहा सज्जन संगति दुर्जन के, दोष अदोष लहोत ।
ज्यो रजनी ससि संग तै, सबै स्यामत खोत ।।६४।।

जांहि जगत त्यागी कहत, ता सम किरपन कौन ।
सांची पूरब जनम कौ, मरत करत हू गौंन ।।६४।।

खाइ न खरचै लाछि कौं, कहै कृपन जग जाहि ।
बड़ो दानि वह मरत ही, छोडि चल्यो सब ताहि ।।६५।।

सिव साधै परिगह सहित, विषय करत वैराग ।
उरम सेइ चाहत अमी, उसमता मुखि काग ।।६६।।

बांम अंग बामा बसै, गदा चक्र करि ताहि।
अप बसि कियो न काम जै, कहै जगत पति ताहि ।।६७।।
महा मल्ल मनमथ हियो, ध्यान असनि उरि दाहि।
तूं अकाम निरमै भये, गनौ जगत पति ताहि ।।६८।।
चेतन तेरै मांन कौ, दोष प्रगट जगि जोइ।
दरसत बांकी दीठि ज्यो, चंद एक तै दोइ ।।६९।।
ग्रीषम बरखा सीत रिति, मुनि तप तपत त्रिकाल।
रतनत्रय बिनु मोक्ष पद, लहै न करत जंजाल ।।७०।।
रतनत्रय धारी अवर, केवल ग्यानी आज।
पचम कालि न पाइए, भवदधि तरन जिहाज ।।७१।।
केवल ग्यांनी के बचन, केवल ज्ञान समान।
बरतै अज परपरा, पहुंचावै निरवांन ।।७२।।
यो बरतै परिगह बिषै, सम्यक दिष्टी जीव।
ज्यो सुत अतर भेद सौं, पोखै धाय सदीव ।।७३।।
जगत भुजगम भौ सहित, विष सम विषै बखांनि।
रतन त्रय जुगपति इहै, नाग दमनि उरि आनि ।।७४।।
भए मत्त सौ मत्त जे, ते मति वाले जीव।
गही टेक छूटै न ज्यो, मरकट मूंठि प्रतीव ।।७५।।
परदरा परद्रव्य मल, लग्यो चीकनै चित्त।
मिटै न मीडै सलिल सौं, मज्जन करत सुमित्त ।।७६।।
जौ तू मन उज्जल कर्‌यो, चाहै इहै उपाइ।
पर दारा पर द्रव्य सौं, उलटि अलख गुनगाइ ।।७७।।
धोवत देह न धोइए, लगी चित्तरज गूढ।
दर्प्पण के प्रति बिंब मल, माजत मिटै न मूढ ।।७८।।
करि कछु सुकित तरुन वै, पीछै फुरै न कोइ।
व्यापत जरा तिजर्ज्जरा, अंगल पगज होइ ।।७९।।
जगत चाक त्रिय कील दिढ, मिथ्या भाव कुंभार।
माटी पिंड सुराइ भनि, भाजन बिबिध प्रकार ।।८०।।

हाड मांस विष्टा दिये भरी कोथरी चांम।
ताहि कुकवि वर्णन करै, चंद मुखी कहि नाम ॥८१॥
सुद्धातम अमृत अचै, भए संत मुनि सूरि।
तिनहिं न व्यापै जगत कौ, दुख दावानल भूरि ॥८२॥
मूंढ विषै सौं सुख कहै, विषै न सुख को हेत।
स्वांन स्वादि निज रुधिर कौ, कहै हाड रस देत ॥८३॥
मू ढ अपुनपौ देह सौं, कहै इहै सुख खांनि।
सो तौ सुर गीत हू विषै, महाकष्ट की दांनि ॥८४॥
रतन त्रय संपति अखै, ताहि न लखै गँवार।
भूमि बिकार बिलोकि कै, मानत संपति सार ॥८५॥
नरकै नरकै जान कौ, उर को उपजौ त्रास।
तौ काहे कौ सेव हौ, बहु बिधि विषैं बिलास ॥८६॥
गनै न दुख परलोक कौ, सेवत विषै गँवार।
सब ही डर कौ लौपि कै ज्यौ पय पिवत मजार ॥८७॥
ज्ञानी कौ तप तुछहू, करै मोक्ष सुख कार।
ज्यौं थोरै अक्षर सुकवि, ठानै अरथ अपार ॥८८॥
मोह बधक भव बनि बसौ, बाम बागुरा जानि।
रहै अटकि छूटै नही, मृग नर मू ढ बखानि ॥८६॥
लै विराग करवाल करि, भव वनि बसै निसंक।
जीति सकै अप बसि किये, मोहादिक अरि बंक ॥६०॥
ज्यौं बरिषा रिति जेवरी, विनु ही जल बल हीन।
त्यो विषई बनिता निरखि, चित्त वक्र गति लीन ॥६१॥
पिसुन प्रेम औसर वचन, ह्वै उतंग घटि जांहि।
सूषि छाह जुग जाम सम, बढै सु छिन २ मांहि ॥६२॥
चदन लेपादिक करै, सीतल जनत अभंग।
मिटै न ग्रीषम उषमा, विनु सज्जन कै संग ॥६३॥
कनक खात पावत कनक, मद कौ करै सुन्याय।
इह अपुब्ब मद कामिनी, चितवत चित बौराय ॥६४॥

संपति खरचत डरत सठ, मत संपति घटि जाय।
इह संपति सुभ दान की, बिलसत बढत सवाइ ।।९६।।
छंद मत्त अर अरथ की, जहा असुधता होइ।
तहा सुकवि अवलोकि कैं, करहु सुद्ध सब कोइ ।।९७।।
उतनी सांगानेरि कौ, अब कांमा गढ वास।
तहां हेम दोहां रचे, स्वपर बुधि परकास ।।९८।।
कामा गढ़ सू बसं जहा, कीरति सिंघ नरेस।
अपने खग बलि बसि किए, दुर्ज्जन जितेक देस ।।९९।।
सतहसैर पचीस को, बरतै सवत सार।
कातिग सुदि तिथि पचमी, पूरन भयो विचार ।।१००।।
एक आगरे एक सौ, कीये दोहा छद।
जो हित दै बाचै पढै, ता उरि बढै अनंद ।।१०१।।

।। इति हेमराज कृत उपदेश दोहा शतक संपूर्ण ।।

प्रवचनसार भाषा (पद्य)

रचयिता–पाण्डे हेमराज

अथ प्रवचनसार की भाषा लिख्यते ।

छप्पय

स्वय सिद्धि करतार करै निज करम सरम निधि ।
आपै कारण स्वरूप होय साधन साधै विधि ।।
सप्रदछना धरै आपको आप समर्प्पै ।
अपाराव आपतैं आपकों कर थिरथर्प्पै ।।
अधकरण होय आधार निज बरते पूरण ब्रह्म पर ।
षटविधि कारिक मय विधि रहित बिविध येक अजर अमर ।।१।।

दोहा

महातत्व महनीय मह महाधाम गुणधाम ।
चिदानद परमात्मा, बन्दूं रमता राम ।।२।।
कुनय दमन सुवरनि अवनि रमिनि स्यात पद शुद्ध ।
जिनबानी मानी मुनिय, घट मे करो हू सुबुद्धि ।।३।।

चौपई

पंच इष्ट पद के पद बदो, सत्य रूप गुण गण अभिनदो ।
प्रवचनसार ग्रन्थ की टीका, बालबोध भाषा सयनीका ।।४।।
रचो आप परको हितकारी, भवि जीव आनद बिथारी ।
प्रवचन जलधि अरथ जल लेहु, मति भाजन समान जल येहू ।५।

दोहा

अमृतचद कृत संस्कृत, टीका अगम अपार ।
तिस अनुसार कहों कछुक, सुगम अलप विस्तार ।।६।।

वर्धमान स्तुति–कवित्त

सुर नर असुर नाथ पद बदत, घातिय करम मैल सब धोये ।
भयो अनत चतुष्टय परगट, तारन तरन बिरतिहू लोये ।।
आतम धरम ध्यान उपदेसक, लोकोलोक प्रलष्य जिन जोये ।
अैसे वर्धमान तीर्थङ्कर बदे चरण भरम मल खोये ।।७।।
बाकी तीर्थङ्कर तेईस, सिद्धि सहित बदू जगदीश ।
निर्मल दर्शन ज्ञान सुभाव, कचन शुद्ध अग्नि जिम ताव ।।८।।
बदो सूर अवर उवझाय, सकल साधु मुनि बदू पाय ।
दरशन ज्ञान चरन तप बीज, पंचाचार सहित शिव कीज ।।६।।

क्षेत्रानं नमस्कार कथन–चौपाई

महा विदेह क्षेत्र है जहां, वरतमान जिन है तसु तहा ।
ते सबही बंदू समुदाय, जुदे जुदे फुनि बदू पाय ।।१०।।

पंच परमेष्ठी समुच्चय, नमस्कार कथन–छप्पय

नमति आदि अरहत सिद्ध फुनि सूरन नत पद ।
उपाध्याय फुनि नमित नमित सब साधु गलत मद ।।
यह परम पद पच ज्ञान दरशन थानक नित ।
तास रूप अवलबि सुद्ध चारित्र प्रगट हित ।।
फुनि है सराग चारित्र कै गरभित अस खाय मल ।
सो करम बध सब त्याग करि, कहू शुद्ध चारित्र फल ।।११।।
दरशन ज्ञान प्रधान जीव चारित्र चरन ध्रुव ।
सुही भेद के ढंक थिति वीतराग सराग हुव ।।
वीतराग शिव उदय करत अविचल अखड पर ।
सुर नर असुर विभूति देत चारित्र सराग घर ।।
तातै सराग ससार सार फल वीतराग सुख मोक्ष वर ।
यहु भेद भाव अवलोकि के हेय उपदेय करहु नर ।।१२।।

अडिल्ल

जो निहचे चारित्र धरम को आचरै ।
मोहादिक तें हीन साम्य भावनि धरै ।।

निहचे चारित्र धरम साम्य है एक ही।
वीतराग उपदेश बात हमहुं कही ॥१३॥

दोहा

यहु परिणामी आतमा चरणवत चारित रूप।
ता समय चारित्र सो, तनमय एक सरूप ॥१४॥
जैसे गुडिका लोह कूं, होत अगनि सजोग।
ता समय अवलोकि ही, अग्नि रूप सब लोग ॥१५॥
जैसे इंधण जोग तै, अगानि इंधनाकार।
तैसे परमातम भयो, चारित जोग अधार ॥१६॥
जीव शुभाशुभ सुद्ध सो, प्रणवत तन्मय होय।
ता समय अवलोकिये, वहु एकता सोय ॥१७॥

कवित्त

विषय कषाय असुभ रागादिक पूजा दान भगति सुभ भाव।
चारित शुद्ध शुद्ध परिणामी, जहां न अन सजोग कहाय ॥
यह तीन उपयोग लहे जिह तिह तैसी विधि करै लखाय।
सो चारित्र धरत परमातम, चारित रूप एव शिवराय ॥१८॥

दोहा

रक्तादिक सजोग तै, फटिक बरन घन होत।
त्यो उपयोगी आतमा, बहुविधि करन उद्योत ॥१९॥
जैसे करनी आचरे तैसो कथन कहाय।
करनी त्यागत आतमा निहचै शुद्ध सुभाव ॥२०॥

सवैया

बिना परिणाम अस्ति रूप न द्रव्य को।
कोऊ बिना द्रव्य परिणाम अस्ति न बखानिये ॥
द्रव्य गुन पर्याय येक ठोर होत तब।
वस्तु अस्ति रूप सदा काल परवानिए ॥

जैसे दूध दही गोरस पर्याय दूध वही घृत हीन गोरस न मानिये।
तैसे परमात्मा द्रव्य गुन पर्याय शुभाशुभ रूप सो सजोग परवानिये
॥२१॥

अडिल

पीत तादि गुन कनक द्रव्य के जानिए।
कुंडलादि पर्याय बहुविधि मानिए ॥
द्रव्य गुन पर्याय अस्ति तैं कनक है।
ईन की अस्ति न जहां कनक नवि तनक है ॥२२॥

दोहा

शुद्ध स्वरूपाचरन तैं, पावत सुख निरबान।
शुभोपयोगी आत्मा, स्वर्गादिक फल जान ॥२३॥

वेसरी छंद

विषय कषाई जीव सरागी करम बंध की परनति जागी।
अहा शुद्ध उपयोग बिदारी, ताते विवधि भाति ससारी ॥२४॥
तपत घीव सीचत नर कोई, उपजत दाह साति नही होई।
त्योंही शुभोपयोग दुख लानै, देव विभूति तनक सुख माने ॥२५॥
शुभोपयोग शक्ति सुनि भाई, इन्द्रयाधीन स्वर्ग सुखदाई।
छिन मे होई जाई छिन माहे, शुद्धाचरण पुरुष क्यो चाहे ॥२६॥

छप्पय

फटत वसन तन लटित घटित अहलहु दर दर।
अधिक क्रूर फुनि कुटिल भीम सम फिरत सुघर घर ॥
कटुक वयन दुःख दयन नयन सुख कबहु न सुत्तव ॥
सरस अन्न मरि उदर पूरि भोजन नहि नुत्तव।
अवलोकि विभव परताप पर कुट्टि बुट्टि छत्तिय भर।
यह असुभ करम परतक्ष फल धरमत पुरुष न कर ॥२७॥
कीट पतग लटादि स्याल संघादि विवधि पद।
वलय तुरग कुरग परस्पर वैर भयकर ॥
सीत धाम दुख जाय नगन तन भार पीठ धर।
चकरि पारधिय बधि देत दुख पराधीन पर ॥

यम कथन कहां लौ कीजिए अधिक भास तिरअंचगति ।
सो असुभ करम परतक्ष फल तजत पुरुष धरमज्ञ मति ॥२८॥
छेद भेद तापादि भूख तिस पीडत प्रानी ।
मारि मारि फुनि बांधि तहां सुनि एवहु बानी ॥
जनम जनम के बैर उदय देखिय बिबधि पर ।
एक समय अंतर न होय दुख बीच सहत नर ॥
यम कथन नरक बरनन करत पारन पाय अथाह गत ।
सो असुभ कर परतक्ष फल तजत पुरुष धरमज्ञ मत ॥२९॥

दोहा

नरक कुनर तिरजंच गति शुभ उदय महि जीव ।
ताके दुख पूरन न हूं, बरनन करत सदीव ॥३०॥

वेसरी छंद— अशुभ उपयोग उदै की बातै, भ्रमत जीव दुख पावत जात ।
त्याग रूप सर्वथा बखान्यो, याते उपादेय सुभ मान्यो ॥३१॥
काहू इक काहू परकाटा, शुभोपभोग चारित की धारा ।
क्रम क्रम उदय मोक्ष रस भीनो, तातै उपादेय शुभ कीनों ॥३२॥

सोरठा

अशुभपयोगी जीव चारित घातिक सर्वथा ।
है भव बास सदीव, ज्ञानवत नहीं आचरै ॥३३॥

अडिल्ल

यहै शुभाशुभ नाम विचारि विलोकिये ।
आचारिय शुभ राग अशुभ को रोकिए ॥
निहचै दोउ त्याग जगत को मूरि है ।
शुद्धातम परतक्ष दोहू तै दूरि है ॥३४॥

दोहा

सबही सुख तै अधिक सुख है आतम आधीन ।
विषयतीत बाधा रहित, शुद्ध चरन शिव कीन ॥३५॥
शुद्धाचरन विभूति सिव, अतुल अखंड परकास ।
सदा उदै इकै रस लिये, दर्शन ज्ञान विलास ॥३६॥

बेसरी छन्द

ज्यों परमातम शुद्धोपयोगी विषय कषाय परहित उर योगी।
करै न उत्तर पूरव मानै, सहज मोक्ष को उद्यम ठानै ।।३७।।

दोहा

इन्द्र नरिंद्र फणिंद्र सुख, सबै इन्द्रियाधीन।
शुद्धाचरन अखंड रस, उपमा रहित प्रवीन ।।३८।।

सवैया

जीव अजीव पदारथ ज्ञायक केवल ज्ञान सिद्धान्त बखानै।
भोग विषय अभिलाष तजे, तप संजम राग बिना उर ठानै
इष्ट अनिष्ट संजोग समान सदा निरबंध क्रिया परवानै।
शुद्धपयोग भई मुनिराजसु तीनहू लोक बडे कर मानै ।।३९।।

कुंडलिया

शुद्धपयोग प्रसादतै करम घातिया नासि।
सर्वज्ञेय ज्ञाता भये केवल ज्ञान प्रकासि।।
केवल ज्ञान प्रकासि छांडि करि पराधीन सुख।
तिहां स्वयम्भू नाम साधि षट्कार आप रुख।।
सकल सुरासुर पूजि ज्ञान दरसन रस भोगी।
पायो निरमल रूप जानि कुल सुद्धपयोगी ।।४०।।

बेसरी छन्द

करता करम करन मुनि भाई, संप्रदान बच यो सुखदाई।
अपादान अधिकरण विख्याता, निहचै षट्कारक शिवदाता ।।४१।।
निहचै षट् कारक ज्यों होई, आप शक्ति तैं साधिक सोई।
पराधीन साधिक व्यवहारी, अथिट रूप षट्कारक धारी ।।४२।।

सवैया

अतुल अखंड अविचल तिहूकाल सदा सासतो।
स्वरूप ध्रोव्य भाव परवानिये शुद्ध उपयोग के प्रसाद तै स्वभाव पाय

यह उतपाद अविनास रस मानिये।
हूते जे बिभाव परिणाम राग द्वेष मोह ।।
कीये है बिनास फेर उदै न वखानिये।
असो है स्वयंभू भूतानागत वर्तमान ।।
उत्पाद व्यय ध्रौव्य येक समय जानिये ।।४३।।

दोहा

शुद्ध स्वभाव उपजत जाहां तहां असुद्ध को नास ।
ध्रौव्य रूप परमात्मा, येक समय परकास ।।४४।।
सर्व द्रव्य परजायतै उत्पति नास वखांनि।
तातै जीवादिकन की सिद्ध होत परवान ।।४५।।
सत्ता बिन कोऊ द्रव्य, सधत न अस्ति स्वरूप ।
उतपति थिरता नासतै, सत्ता सधत अनूप ।।४६।।

छप्पय

कबहू देव नर कबहु, कबहु तिर्यंच नरक कबहु।
पुग्गल उत्पति नास प्रकट जग जीव करत सबु ।।
ककणादि आभर्ण कनक उत्पाद नास हुव ।
कुंडव कर वस राव मृतका बिवधि भेद हुव ।।
यह उदय अस्ति ससार मधि सर्व द्रव्य उर आनिए।
उत्पाद नास धुन रहित जबु तबु जग लोप बखानिये ।।४७।।

दोहा

सर्व द्रव्य परजाय करि उत्पति नास सिद्धंत ।
निज निज सत्ता सब भवन यह उपदेस करत ।।४८।।

सोरठा

उत्पति नास वखांनि काहे कूं तुम करत हो।
ध्रौव्य भाव परवान असे क्यो न कहो सदा ।।४९।।
घट कुंडव नर देव कंकण कुंडल हूव दधि ।
परते इतने भेव, उत्पादिक गुन रहित ।।५०।।

चौपाई

सिद्ध अवर संसारी जीव ज्ञान भाव करि ध्रौव्य सदीव।
ज्ञेयाकार ज्ञान परजाय उत्पादादि सधत समवाय ॥५१॥

सवैया-३१

कीयो है विनास जिन घातिया कर्म च्यार।
उदयो अनंत वर वीर तेज धरि कै॥
इन्द्रिया रहित ज्ञानानंद निज भाव वेदि।
ममता उछेदि पराधीन सुख हरि कै॥
असे भगवान ज्ञान दर्शन प्रकासवान।
आभर्ण भानि निरावर्ण दशा करि कै॥
जैसे मेघ घटातीत दीसत अखंड जोति।
त्यों ही जीव सहज स्वभाव कर्म टरि के॥५२॥

अडिल

भोजन सुख दुख भूख शरीर सम्बन्ध है।
तिनकै केवल ज्ञान व्याप अबंध है॥
उदय अतिंद्री ज्ञान सदा सुख रूप है।
अचल अखंड अभेद उद्योत अनूप है॥५३॥

दोहा

लोह असंगति अग्नि कै लगै न कबहू चोट।
त्यों सुख दुख वेदक नहीं तजत जीव तन वोट॥५४॥

अडिल्ल

केवल ज्ञान स्वरूप केवली परनए।
सर्व द्रव्य परजाय प्रगट जस अनुभए॥
अवग्रहादि जे भेद क्रिया करि हीन है॥
यह अतीन्द्रीय ज्ञान सदा स्वाधीन है॥५५॥

दोहा

जगत वस्तु आधीन को, सब इन्द्री गुन जानि।
अक्षातीत उदै भयो, निजाधीन निज ज्ञान॥५६॥

बेसरी छंद

इन्द्रिय विषय भोग के थानी, सपरस वर्न गंध रसवानी।
जुदे जुदे अपने रस चाहै, एक एक निज गुन अवगाहै ॥५७॥
तृपति न परत करत सुख सेती निज निज क्रम तै वर्त्ततेती।
छिन में उदय अस्त छिन माहै, खड खड ज्ञान अवगाहै ॥५८॥

दोहा

भ्रान अक्ष के काज को करै न अक्ष जु आन।
निज निज मर्जादा लिये, वरते अक्ष प्रवान ॥५९॥
सदा अतीतद्रि ज्ञान की जानहू शक्ति अनंत।
सब इन्द्रिन के विषय सुख, एक समय झलकत ॥६०॥

कवित्त

चेतन ज्ञान प्रवान सदा भनि ज्ञेय प्रवान ज्ञान यति जान।
लोकालोक प्रवान ज्ञेय सब तातैं ज्ञान सर्व गतमान।
ज्यो पावक गर्भित ईंधन के दरसत ईंधन ज्ञान प्रवान।
त्यो ही छहो द्रव्य जग पूरित व्यापक भयो केवली ज्ञान ॥६१॥

दोहा

पीततादि निज गुन लियें, कुंडलादि परजाय।
ईनही के गर्भित कनक, अधिकन हीन कहाय ॥६२॥
ज्ञान प्रवानन आत्मा, मानत कुमती कोई।
हीन अधिकता मत विषै, साधत आतम सोई ॥६३॥
जो लघु आतम ज्ञानतें, ज्ञान अचेतन होय।
अधिक ज्ञान तै मानिये ज्ञान पनो जह खोइ ॥६४॥
जहा अधिकता ज्ञान की, तहां जीव लघु होय।
जेतो ज्ञाननु अधिक है सपरसादि जड सोई ॥६५॥
जहां अचेतन द्रव्य है, जान पनों तहां नास।
ज्यो पावक गुण ऊनतै, परै न जारै घास ॥६६॥

जुदे न पावक उष्णता, जुदे न चेतन ज्ञान ।
अधिक हीन के मान तै, साधत भिन्न प्रवान ।।६७।।
तातै चेतन ज्ञान सो, जहां अधिकता होइ ।
सो तू मानि अचेतना, घट पटादि विधि सोइ ।।६८।।
ज्यो पावक गुन उष्ण है, त्यो चेतन गुन ज्ञान ।
अधिक हीन जो परनवै, उपजत दोष निदान ।।६४।।
अधिक हीन नही आत्मा, है गुन ज्ञान प्रवान ।
यह याको सिद्धात सब, जानहू वचन निदान ।।७०।।
सकल वस्तु जो जगत की, ज्ञान माहि झलकत ।
ज्ञान रूप को वृषभजिन, प्रगटत ज्ञेय अनत ।।७१।।

कवित

ज्यो मलहीन आरसी कै मध्य घटपटादि कहिए विवहार ।
निहचै घटपटादि न्यारे सब, तिष्टत आप आप आधार ।
त्यो ही ज्ञान ज्ञेय प्रतिबिंबित, दरसन एक समय ससार ।
निहचै भिन्न ज्ञेय ज्ञायक कहवति ज्ञान ज्ञेय आकार ।।।७२।।

अडिल

घट पटादि प्रतिबिंब आरसी माहि है ।
निहचै घट पट रूप आरसी नाहि है ।।
त्यो ही केवल ज्ञान ज्ञेय सब भासि है ।
अपने स्वतै स्वभाव सदा अविनास है ।।७३।।

कवित्त

ज्यो गुन ज्ञान सुही परमातम सो परमातम सो गुणज्ञान ।
धर्म अधर्म काल नभ पुग्गल ज्ञान रहित ए सदा अजान ।
तातै ज्ञान शक्ति परमातम ज्ञान हीन सब जड परवान ।
ज्यो गुण ज्ञान त्यो ही सुख वीरज, यो आतम अनत गुनवान ।७४।

दोहा

ज्ञान प्रवर परमात्मा है अनादि सनमंध ।
ज्ञान हीन जे जगत मैं, सबै द्रब्य जड अध ।।७५।।

छप्पय

ज्ञानी ज्ञान स्वभाव अवर जड रूप ज्ञेय सबु ।
आप आप गुन रक्त परसपर मिल तन को कबु ।
नयन विषय ज्यों नयन देखिये विवधि वस्तु बहू ।
बिना किये परवेस जानि कर गए मरम सहू ।
निहचै स्वरूप सब भिन्न भनि कथन एक व्यवहार मत ।
यह ज्ञान ज्ञेय सनमंध है दुरनिवार तिरकाल गत ।।७६।।

सवैय्या ३१

जैसे नीलमणि को प्रसग पाय स्वेत षीर ।
नील रंग भासै पन न नील रग षीर है ।
जैसे नैन वस्तु को विलोकि व्यापि रहै सब
यद्यपि तथापि भिन्न पंकज ज्यो नीर है ।
मानों ज्ञेय भावकौं उखारि ज्ञान खिलि गयो
असी ही विचित्रता अखडित सधीर है ।।७७।।
देखन जानन की शक्ति ज्ञान नैन मैं हौत ।
तातै व्यापत ज्ञेय सौं, निहचै भिन्न उद्योत ।।७८।।
जैसे दर्पण दरसि है घट पटादि आकार ।
निहचै घट पट रूप सौं, दर्पण है अविकार ।।७९।।

बेसरी छंद

जहां न ज्ञेय ज्ञान मैं आवै, तहा न केवलज्ञान कहावै ।
जो केवल सब ज्ञेय प्रकासी, तो सब ज्ञेय ज्ञान मैं भासी ।।
जब घट पट दर्पण मैं भासै, तब दर्पण सब नाम प्रकासे ।
घट पट प्रतिबिंबत नहि होई, दर्पण नाम न भासै कोई ।।

दोहा

घट पट दर्पण मैं भरा, दर्पण घट पट नांहि ।
ज्ञान ज्ञान मैं रम रह्यो, ज्ञेय ज्ञान के माहि ।।८२।।

सोरठा

ज्ञेय ज्ञान सनमंध, है काहू उपचार करि ।
निहचै सर्व अबंध, आप आप रस मैं मगन ।।८३।।

चौपाई

त्याग ग्रहणवै न परसै, केवल ज्ञान अकंपन दरसै ।
देखन जानन के गुण सेती, ज्ञायक वस्तु जगत मैं जेती ।।८४।।

दोहा

सहजि सकति है ज्ञान मैं, सर्व ज्ञेय प्रतिभास ।
त्याग ग्रहण पलटन क्रिया, ज्ञान दसा मैं नास ।।८५।।
जैसे चोखे रतन की, ज्योति अकंप प्रकास ।
सहज रूप थिरता लिये, त्यो ही ज्ञान विलास ।।८६।।
बिन इच्छा प्रतिबिंब सब, दरसै दरपण माहि ।
त्यौही केवल ज्ञान मैं, ज्ञेय मात्र अवगाहि ।।८७।।
न्यारी दरसण आरसी, न्यारे घट पट रूप ।
त्यो न्यारे ज्ञेय ज्ञायकी, यहै अनादि अनूप ।।८८।।

कवित्त

जे श्रुत भाव ज्ञान करि जानत परमातम निज रूप वसेष ।
सो परमातम सहज स्वभावनि ज्ञायक लोकालोक असेष ।।८६।।
तातै श्री जिनवर इम भावत श्रुत भावी श्रुत केवल रेख ।
केवल ज्ञान अवर श्रुत केवल दोउ वेदत आतम भेष ।।
पूरन भाव अनंत सक्ति करि वेदत प्रगट केवली ज्ञान ।
श्रुत केवल केतीक शक्ति तै क्रमवर्त्ती वेदत परवान ।।
दोउ एक ज्ञान निहचै भनि, भेद भाव आवरण बखान ।
जैसे मेघ घटा आछादित, दीसत अधिक हीन दुति भान ।।६०।।

अडिल

मतिज्ञानादिक भेद एक ही ज्ञान के ।
ज्यो बादल आवरन ह्वै रहै भान के ।।
श्रुत केवल सामान्य विसेष विवेक है ।
निहचै ज्ञायक जोति ज्ञान रवि एक है ।।६१।।

कवित्त

जिनवर कथित वचन की पकति द्रव्य सूत्र कहिए परवान ।
ते सब वचन स्वरूप जज्ञतम ताकै निमित पाय वह ज्ञान ।

सोई भाव सूत्र निहचै भनि द्रव्य सूत्र व्यवहार बखान।
ता नय धरन ज्ञान परमातम भिन्न भेद भावै भगवान ॥९२॥

दोहा

द्रव्य सूत्र पुग्गल मई जामैं बचन बिलास।
निर्विकल्प परमात्मा क्यो बनि है इक बास ॥९३॥
द्रव्य सूत्र के निमित करि, उपजत ज्ञान प्रवान।
तातै श्रुत व्यवहार नय, गर्भित ज्ञान बखान ॥९४॥
श्रुत भव गाहक ज्ञान को, लाहै यहै व्यवहार।
निहचैं उतपति ज्ञान की, ज्ञान मांहि निरधार ॥९५॥
जाणि शक्ति है जीव मैं, सोही ज्ञान बखान।
जीव जानि है ज्ञान तै, बनै ज ग्रातम जानि ॥९६॥
घट पटादि प्रतिबिंब सब, दरसत दर्पण माहि।
त्योही ज्ञान प्रकास तै, ज्ञेय भाव ग्रवगाहि ॥९३॥
ज्ञानन ग्रातम ज्ञान तै, बिना ज्ञान जड जीव।
जीव ज्ञान की भिन्नता, कुमती कहे सदीव ॥९८॥
जीव ज्ञान की भिन्नता, साधत कुमति कोय।
जाकै मन ग्रातम द्रव्य, ज्ञान हीन जड़ होय ॥९९॥
घट पट जेते जगत मैं, प्रगट ग्रचेतन द्रव्य।
समय पाय ये होयगे, चेतन रूपी सव्वै ॥१००॥

× × × × × × ×

ग्रन्तिम पाठ—

मूल ग्रन्थ कर्त्ता भए, कुंदकुंद मतिमान।
ग्रमृतचन्द टीका करी, देव भाष परवान ॥४२८॥
जैसो करता मूल को, तैंसो टीकाकार।
तातै ग्रति सुन्दर सरस, बर्तै प्रवचनसार ॥४२९॥
सकल तत्त्व परकासनी, तत्त्वदीपका नाम।
टीका सुरसत देव की, यह टीका ग्रभिराम ॥४३०॥

चौपई

वालबोध यह कीनी जैसे, यो तुम सुनहु कहु मै तैसे ।
नगर आगरे मैं हितकारी, कौरपाल ज्ञाता अविकारी ।।४३१।।
तिन विचारि जिय मैं यह कीनी, जो भाषा यह होय नवीनी ।
अलप बुद्धि भी अर्थ बखानै, अगम अगोचर पद पहिचानै ।।४३२।।
इह विचार मन मैं तिहा राखी, पाडे हेमराज सो भाषी ।
आगै राजमल्ल ने कीनी, समयसार भाषा रस लीनी ।।४३३।।
अब ज्यौ प्रवचन की ह्वैं भाषा, तो जिन धरम वधै वृष साखा ।
तातै कहू ं विलबन कीज्ये, परम भावनां अग फल लीज्ये ।।४३४।।

दोहा

अवनीपति बंधहि चरन, सुरणय कमल विहसंत ।
साहजिहां दिन कर उदय, अरिगण तिमरन संत ।।४३५।।

सोरठा

निज सुबोध अनुसार, असे हिन उपदेश सौं ।।
रची भाष अविकार, जयवती प्रगटो सदा ।।४३६।।
हेमराज हित आनि, भविक जीव के हित भणी •
जिणवर आण प्रवान, भाषा प्रवचन की करी ।४३७।।

दोहा

सत्रहसै नव उत्तर, माघमास सित पाष ।
पचमि आदितवार कौं, पूरन कीनी भाष । ४३८।।

इति श्री प्रवचनसार भाषा पाडे हेमराज कृत सपूर्ण । लिखतं दलसुख लुहाड्या लीखी सवाई जयपुर मध्य लिखी । श्री श्री श्री ।

प्रवचनसार भाषा (कवित्त बंध)

रचयिता—हेमराज गोदीका

अथ श्री प्रवचनसार सिद्धान्त कवित्त बंध भाषा लिखते/अथ परमात्मा को नमस्कार

अरिल्ल छन्द

ध्याय अगनि करि कर्म कलंक सबै दहै
नित्त निरंजन ग्यान सरूपी ह्वै रहै ।
व्यापक ज्ञेयाकार ममत्त निवारि कै,
सो परमातम देव नमो उर धारि कै ।।१।।

अथ आदिनाथ स्तुति सवैय्या—31

आदि उपदेश सिव साधन बतायौ, सोइ गावत सुरेश जाम तारन तरन है ।
जाके ग्यान माहि लोकालोक प्रतिभासित है,
साभित अनुरूप कचन वरन है ।
जुगल धरम की धरनि के निवारन कौ,
आतम धरम के प्रकास कु करन है ।
अैसो आदिनाथ हेम हाथ जोरि वदत है,
सदा भवसागर मैं सबकौ सरन है ।।२।।

अथ पंच परमेष्टी को नमस्कार—दोहरा

अरिहंतादिक पंच पद, नमहुं भक्ति जुत तास ।
जाके सुमिरन ध्यांन सौ, लहै स्वर्ग सिव बास ।।३।।

अथ सरस्वति स्तुति—मरहटी छंद

वदौ पद सारद भवदधि पारद सिव साधन कौ खेत,
निरमल बुधिदाता जगति विख्याता सेवत मुनि धरि हेत ।

सो जिनवर बानी त्रिभुवन मांनी दिव्य वचन भडार।
हौं फुनिवर पांऊ कवित्त बनाऊं पूरन प्रवचनसार ।।४।।

अथ कवित्रय नाम छप्पय छन्द

कु दकु द मुनिराज प्रथम गाथा बध कीनौ,
गरभित अरथ अपार नाम प्रवचन तिन्ह दीन्हौ।
अमृतचद फुनि भये ग्यान गुन अधिक विराजित
गाथा गूढ विचारि सहस्कृत टीका सजित।
टीका जुगाड जो अरथ भनि बिना विबुध को ना लहै
तब हेमराज भाषा वचन रचित बालबुधि सरदहै ।।५।।

वेसरी छंद

पाडे हेमराज कृत टीका पढत पढन सबका हित नीका।
गोपि अरथ परगट कार दीन्हौ सरल वचनिका रचि सुख लीन्हौ ।।६।।

चौपई

टीका तत्व दीपका नाम, हरत अग्यान तिमर सब वाम।
जामैं दरब कथन अधिकार, पढत प्रगटत ग्यान अपार ।।७।।

अथ कवि लघुता कथन—सवैय्या ३१

जैसे कोऊ बालक बिलोकि ससि बिब दुति।
करै कर ऊरध उचकि गरे बाथि हौ।
जैसे मन कायर करन कहै झूझ जहा तहा।
घन सूरि हरि हाथिन के जथि है।
जैसे कर चरन ते हीन बल खीन नर घरै,
उर उद्यम जलधि पैसि मथि है।
तैसे हैं अजान अक मात न पिछानो जांहि,
प्रवचनसार को न पार कैसो कथि है ।।८।।

अथ ग्रंथ स्तुति तथा कवि लघुताई कथन सवईया—३१

जैसे करहू पर्वत को मारग बिषम लहू
दीसत उतग शृंग सैल की सी बार है।

तहाँ एक चतुर सिलावट बनाय दई
पैडीन की पंकति सुं सुगम सुढार है।
त्यौंही प्रवचनसार परमागम अगम अति
गूढ गति अरथ सु अधिक अपार है।
पंडित सटीक करि कोमल प्रकासि दयो
मेरी हू अलप मति ताके अनुसार है ॥९॥

आगे श्री कुंदकुदाचार्य प्रथम ही ग्रंथ आरंभ विषै मंगलाचरण निमित्त नमस्कार करै है[1]

कवित छन्द

सुर नर असुर नाथ पद वंदित घातिय करम मैल सब धोये,
भयौ अनत चतुष्टय परगट तारन तरन विरद तिह्न लोये।
आतम धरम ध्यांन उपदेसक लोकालोक प्रतक्ष जिन जोये।
असे वर्धमान तिर्थंकर वंदत चरन भरम मल खोये ॥११॥

चौपई

बाकी तिर्थंकर तेइस, सिद्धि सहित वदौ जगदीश।
निरमल दरसन ग्यान सुभाव, कचन सुद्ध अगनि जिम ताव ॥१२॥

× × × × × × × ×

अन्तिम पाठ

आगे श्रवणाभास मुनि कैसा है य कथन करै है—सवैया बाईसा
जो मुनि संयम भाव अराधि करै तप साधि सिद्धंत सबै,
जौं परमागम सो परमातम भेव विचार लहै न जबै
जो दरसै जग मैं मुनि सौं फुनि सो मुसौ कहियेन कवै
तास बिनौ करि येन कछु तिन्हु ते नहि संमिक ग्यान फवै ॥१४२॥

---

1. गाथा एवं उनकी संस्कृत टीका को यहां नहीं दिया गया है। केवल कवित्त बंध भाषा को ही दिया जा रहा हैं।

आगे यथार्थ मुनि पद सयुक्त मुनि की विनायिदि क्रिया जो न करै सो चारित रहत है यह दिखावै है—

दोहरा

जो मुनिस को देखि मुनि, करै दोष दुरभाव ।
सो मुनि उदै कषाय स्यौं, चारित भग कहाव ।।६४४।।

आगे जो जाति भाव करि उत्कृष्ट है ताको जो आप तै हीन आचरै सो अनत ससारी है यह दिखावै हे—

दोहरा

जो मुनि आंन मुनीस पै, चाहै आदर भाव ।
सो मुनि भवदधि तिरन को, लहै न कबहू दाव ।।६४६।।
कहा भयौ जो मुनि भयौ हम फुनि मुनिव्रत धार ।
ऐसे मुनि के गव ते, लहै न भवदधि पार ।।६४७।।

आगे आप जति भाव करि उतकिष्ट है। जो गुणहीन की विनयादिक करै तो चारित्र का नास होय यह दिखावै है-**दोहरा**

जो मुनि गुन उतकिष्ट धर करै जघनि सौ सग ।
सो मिथ्या जुत जगत मै, कहिये चारित भग । ६४६।।
हीन सगति ते हीनता, गुर ते गुरता जानि ।
सम ते सम गुन पाइये, यह सगति परवानि ।।६५०।।

आगै कुसगति मनै करै है- **विलबित छद**

करकै मुनि आगम ठीकै, परमारथ जानते नीकै ।
तप साधि कसाय न आनै, उपयोग अकप सुठानै ।।६५२।।
ममता तजि सजय धारै, तिर आप सु औरनि तारै ।
जब लौकि को सृ ग ठानै, छिन मैं मुनि चारित भानै ।।६५३।।
जिय पावक कै सग पानी निज सीतलता तहि भानि ।
मुनि लौकिक लक्षण जैसो, बरनै जिन आगम तैसो ।।६५४।।

नोट— ६४३, ६४५, ६५१ सख्या गाथा है ।

आगै लौकिक मुनि का लक्षण कहै है—**सवैय्या २२**

जो निरग्रंथ दिक्षा धरि कै, बनवास वसै मुनि को पद धारै
संयम सील क्षमा तप आचरि जोतिक वैदक मंत्र विचारै ।
सो जग मैं मुनि लौकिक जानहु, चारित भिष्ट सिद्धांत उचारै ।
जे मुनिराज विराजत उत्तम, ते तिन्ह को परसंग निवारै ।।६५६।।

आगै भली संगति कीजिए यह दिखावैं है—

गुन समान के गुन अधिक, तासौं करिये संग ।
जासौं सिव सुख पाइये, चारित्त रहै अभग ।।६५८।।
सीतल जलधर कौ नमै, सीतलता न घटाय ।
त्योंही सग समान सौं गुन समान ठहराय ।।६५६।।
दै कपूर धरि छाह जल, अधिक सीत ह्वै जात ।
त्यों ही गुर के सग ते, मुनि गुर पद कौ पात ।।६६०।।
पावक संगति सीत जल, छिनक माझ तप जात ।
त्यों कुसग के सग स्यौं, गुन अवगुनता पात ।।६६१।।

बेसरी छंद

पहलै सुभपयोग मुनि धारै, क्रम क्रम संजम भाव विचारै ।
जब संजम उतकिष्ट बढावै, तब मुनि परम दसा को पावै ।।६६२।।

दोहा

परम दसा धरि कै मुनी, पावै केवल ज्ञान ।
जो आनंद मैं सास्वतौ, चिदानंद भगवान ।६६३।।

इति श्री शुभोपयोगाधिकार पूर्ण हुवा । आगैं पंच रत्न कहै है । पंच गाथानि करि । अथ पंच रत्न नाम कथन ।

बेसरी छंद

प्रथम तत्व संसार बखानौ, दुतिय मोख तत्व पहिचानौ ।
त्रितिय तत्व सिव साधन कीजै, सिव साधक चौथक फुनि कीजै ।।६६४।।

जो सिद्धंत फल लाभ बतावें, पंचम तत्व जिनागम गावें।
ये ही भव सिव की थिति सावें, अनेकात मत ताहि अराधें ॥६६५॥
ये ही पंच रतन जग माहि, यह गरंथ इन्ह की परछांही।
तातें पंच रत्न जयवता, होह जगत मैं जिन भाषता ॥६६६॥

अथ संसार तत्व कहै है— **कवित्त**

जिन मत विषै दरव लिंगी मुनि, धरि है नगन अवस्था जोई।
यै परमारथ भेद न जानत, गहि विपरीत पदारथ सोई।
कहै यहै ही तत्व नियत नय, यौ उरमानि रहत इहि लोई।
काल अनंत भ्रमत मुंजत फल, यहु ससार तत्व जगि होई ॥६६८॥

आगै मोक्ष तत्व को प्रगट करै है— **सवैय्या २३**

जो मुनिराज स्वरूप विषै वरतै तजि राग विरोध दसाकौं,
जो निहचे उर आनि पदारथ नीर दयो भव वास वसाकौ।
जो न मिथ्यात क्रिया पद धारत जारत है अति मोह दसाकौ।
सो मुनि पूरन ताप दई कहिये नित मोष सरूप अासाकौ ॥६७०॥

आगे मोक्ष तत्व साधक तत्व दिखाइए है—**सवैया २३**

जो चउबीस परिग्रह छडित दिव्य दिगबर को पद धारै।
जो निहचे सबु जानि पदारथ, आगम तत्व अखड बिचारै।
जे कबहु न विषै सुख राचत, राग विरोध कलक निवारै।
ते मुनि साधक है सिव के फुनि, आप तिरै अरु औरनि तारै ॥६७२॥

आगे मोक्ष तत्व का साधन है तत्व सर्व मनोवाछित अर्थनि का स्थान कहै यह दिखावै है— **कवित्त**

जो मुनि वीतराग भावनि कौ प्रस्त हवै सो सुद्ध कही जै।
जाकै दरसत ग्यान सुद्ध भनि ताही कै सिव शुद्ध लहीजै।
सो मुनि सुद्ध सिद्ध सम जानहु, जाके चरन नमत सुख लीज्यै।
मन वछित थांनक सिव साधन, करि कै भक्ति महारस पीजै ॥६७४॥

नोट—६६७, ६७१, ६७३ सख्या गाथाओं की है।

आगे शिष्य जन को सास्त्र का फल दिखाय सास्त्र की समाप्ति करै है—

कवित्त

जो नर मुनि श्रावक करि याकौ, धारत जिन आगम अवगाहै।
प्रवचनसार सिद्धंत रहसि कौ, प्राप्त होत एक छिन माहै।
भेदाभेद सरूप वस्त कौ, साधत सो आतम रस चाहै।
सो सिद्धंत फल लाभ तत्व बल पूरब कर्म कलंकनि दाहै ॥६७६॥

इति पंच रत्न कथन समाप्त।

अथ ग्रंथ कर्ता कवि स्तुति—दोहरा

मूल ग्रंथ करता भये कुंद कुंद मतिमान।
अमृतचद टीका करि देव भाषा परवांन ॥६६७॥

बेसरी छन्द

पाडे हेमराज उपगारी नगर आगरे मैं हितकारी।
तिन्ह यहु ग्रंथ सटीक बनाये, बालबोध करि प्रगट दिखायो ॥६७८॥
बाल बुद्धि फुनि अरथ बखानैं, अगम अगोचर पद पहिचानैं।
अलप बुद्धि हम कवित बनाये, बुधि उनमान सवै बनि आयौ ॥६७६॥
जीवराज जिन धर्म धरैया, सबै जीव परि क्रिपा करिया।
प्रवचनसार ग्रंथ के स्वादी, रहै जहा न होत परमादी ॥६८०॥
तिन्ह उर मै विचार यहु कीयौ, प्रवचनसार बहुत सुख दीयौ।
कवित बध भाषा जो होई, कठ पाठ करि है सब कोई ॥६८१॥
तव हमस्युं यहु बात बखानी, कवितबंध भाषा सुखदानी।
प्रवचन कवित बंध जो होई, घर घर विषैं पढै सबु कोई ॥६८२॥
इहि विधि काल बतीत करीजैं, मनिष जनम को सुभ फल कीजै।
निज पर सब ही कौ सुखदाई, करिये बेग न विलब कराई ॥६८३॥
हेमराज फुनि यहु उर आनी, अमृत सम तुम बात बखानी।
अलप बुद्धि मो माफ गुसाई, क्यों करनौं प्रवचन के तांई ॥६८४॥
मैं नहिं कवित छंद कौ पाठी, लघु दीरघ मै मो मति माठी।
छंद भंग गन अगन जु होई, अर पुनरुक्त सब्द भनि कोई ॥६८५॥
तिन्ह कौ कछु भेद नहि जानौ, कवित उचार किसी विधि ठानौ।
पंडित जन अर कविता होई, मोहि बिलोकि हसौ मति कोई ॥६८६॥

दोहरा

छंद अरथ गन पुनरुकत, होत न जहां प्रवान ।
विबुध क्षमा करि कीजियो, सुद्ध जथा तुम्ह ज्ञान ।।६८७।।
पातिसाह ऊरंग कै, नीत धरम परगास ।
देत असीस सबै दुनी, अचल राज पदवास ।।६८८।।
जिने भूप भूपर बसै, सब सेवै दरबार ।
जाकै चादर नीत की, तनी जाय दघिपार ।।६८६।।

सवैया

सोभित जेसिंघ महासिंघ सुत कूरम कै,
अवनि कै भारसौ सुभार पीठ बनी है ।
ताकै धरि कीरति कुमार ते उदार चित,
कामागढ राजित ज्यौ राजे दिनमती है ।
जहा काम करता दीवान गजसिंघ,
जाति कायथ प्रवीन सबे सभा नति सनी है ।
तहा छहो मत को प्रकास सुख रूप,
सदा कामागढ सुन्दर सरस छवि बनी है ।।६६०।।

सवैया इकतीसा

हेमराज श्रावक खंडेलवाल जाति गोत भवसा प्रगट ज्यौंक गोदीका बखानिये ।
प्रवचनसार अति सुन्दर सटीक देखि, कीये है कवित छवित रूप जानिये ।
मेरी एक वीनती विबुध कविवंत सौ, बालबुद्धि कवि को न दोष उर आनीये ।
जहां जहा छंद और अरथ अधिक हीन, तहा शुद्ध करिकै प्रवांन ग्यान ठानिये ।।६६१।।

दोहरा

सांगानेर सुथान को हेमराज वसबान ।
अब अपनी इच्छा सहित, बसै कामागढ थांन ।।६६२।।
कामांगढ सुख सुं बसइ, ईत भीत नहिं थाय ।
कवित्त बध प्रवचन कीयौ, पूरन तहा बनाय ।।६६३।।

छप्पय

वंदौ हू गुर निरग्रंथ जहां तिणमत्त न परिग्रह।
बदू धर्म सुसदा सबै सुख दानि सदा सह।
दोष अठारह रहित देव वंदू सो शिवंकर।
सुगुरु सुधर्म सुदेव परषि पुज्जै सुजानिकर।
भनि हेम जिनागम जेम गहि सो समकित धारक है उर।
जो कुबुद्धी कुनर मिथ्यामती सुनहि त्याग पुज्जहै अनर।।६६४।।
अध्यातम सेली सहित, बनी सभा साधर्म।
चरचा प्रवचनसार की, करे सबै लहि मर्म।।६६५।।
अरचा अरिहन देव की, सेवा गुरु निरग्रंथ।
दया धरम उर आचरे, पचम गति को पथ।।६६६।।

बेसरी छद

असी सभा जुरे दिन राती, अध्यातम चरचा रसि माती।
जब उपदेस सबनि को लीयौ, प्रवचन कवित्त बंध तब कीयौ।।६६७।।

दोहरा

प्रवचनसार समुद्र सरस लीन सु अरथ अपार।
लहतु सबै जे विबुध जन, मति भाजन अनुसार।।६६८।।
सुर गुरादि सब जनम भरि, करि है अरथ विचारि।
सो फुनि पारन पावहि, प्रवचनसार अपार।।६६६।।
जो नर उर यौ जानहि, मैं जान्यो सब भेद।
सो बालक बुधि जगत्त मैं करत अविरथा खेद।।१०००।।
ज्यौ पावक ईधन विषै, ज्यौ सलिता दधि छीन।
त्यौ प्रवचन मैं अरथ की, पूरतान निदानि।।१००१।।
कथन सु प्रवचनसार को, कहि कहि कहै कितौक।
तातै कवि बरनै इतौ, मति अनुसार जितौक।।१००२।।

आगे छंद की संख्या कहै है—कवित्त

उनसठि कवित अरिल्ल बत्तीस सुबेसरि छंद निबै अरतीन
दस पद्धरी चारि रोडक भनि, सब चारीस चौपई कीन।

दोहा छंद तीनसे साठा तामैं एक कीजिये हीन ।
गीता सात आठ कुंडलिया ए मरहठा जिनहू प्रवीन ।।१००३।।
बाईसा भनि चारि पांच चौईसा कहिये ।
इकतीसा बत्तीस एक पचीसा लहिए ।
छप्पय भनि तेईस छद फुनि सात विलंबित ।
जानहु दस अर सात सकल तेईसा परमित ।
सोरठा छद तैतीस सब सात सयर पचबीस हुव ।
आषाढ मास दुतीया धवल पुष्य नक्षत्र गुरवार धुव ।।१००४।।

सोरठा

सत्रहसैं चौईस संवत सुभ अर सुभ घरी ।
कीनौ ग्रंथ सुबीस देखि रोष कीजहु षिमा ।।१००५।।

इति श्री प्रवचनसार सिद्धंत भाषा कवित समाप्तानि । शुभ भवतु । सर्व श्लोक सख्या २८७० । सवत १७२६ वृषे पोस सुदि १० बुधवार सपूर्ण । श्री श्री श्री ।

नामानुक्रमणिका

ग्रंथानुक्रमणिका

नगर-ग्रामानुक्रमणिका